हिन्दी-समिति ग्रन्थमाला—६९

फ्रेंच साहित्य का इतिहास

लेखक
श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल
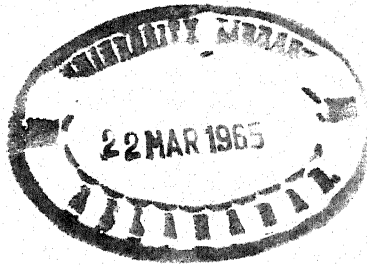
हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

यूरोपीय देशों में फ्रेंच भाषा का व्यापक प्रचार है। उसका साहित्य काफी समुन्नत है। उसे अनेक महाकवियों, दार्शनिकों, चिन्तकों, इतिहासकारों, वैज्ञानिकों आदि ने अपनी बहुमूल्य रचनाओं से समलंकृत किया है। इनमें से कितनों की ही गणना अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रमुख विद्वानों, लेखकों या विचारकों में की जाती है। इनकी हजारों महत्त्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद अन्यान्य भाषाओं में हो चुका है, जिससे करोड़ों व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं। हिन्दी के पाठकों को भी थोड़े में इनकी जानकारी हो जाय और वे फ्रेंच साहित्य की विशेषताओं, उल्लेखनीय प्रवृत्तियों, क्रान्तिकारी विचार-धाराओं से परिचित हो जायँ, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक समिति द्वारा प्रकाशित की जा रही है। इसके लेखक श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल फ्रेंच भाषा के अच्छे जानकार और फ्रेंच साहित्य के सहृदय प्रशंसक हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम और गहरी रुचि के साथ इसका प्रणयन किया है, जो उपयोगी होने के साथ-साथ मनोरंजक भी है।

ठाकुरप्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी समिति
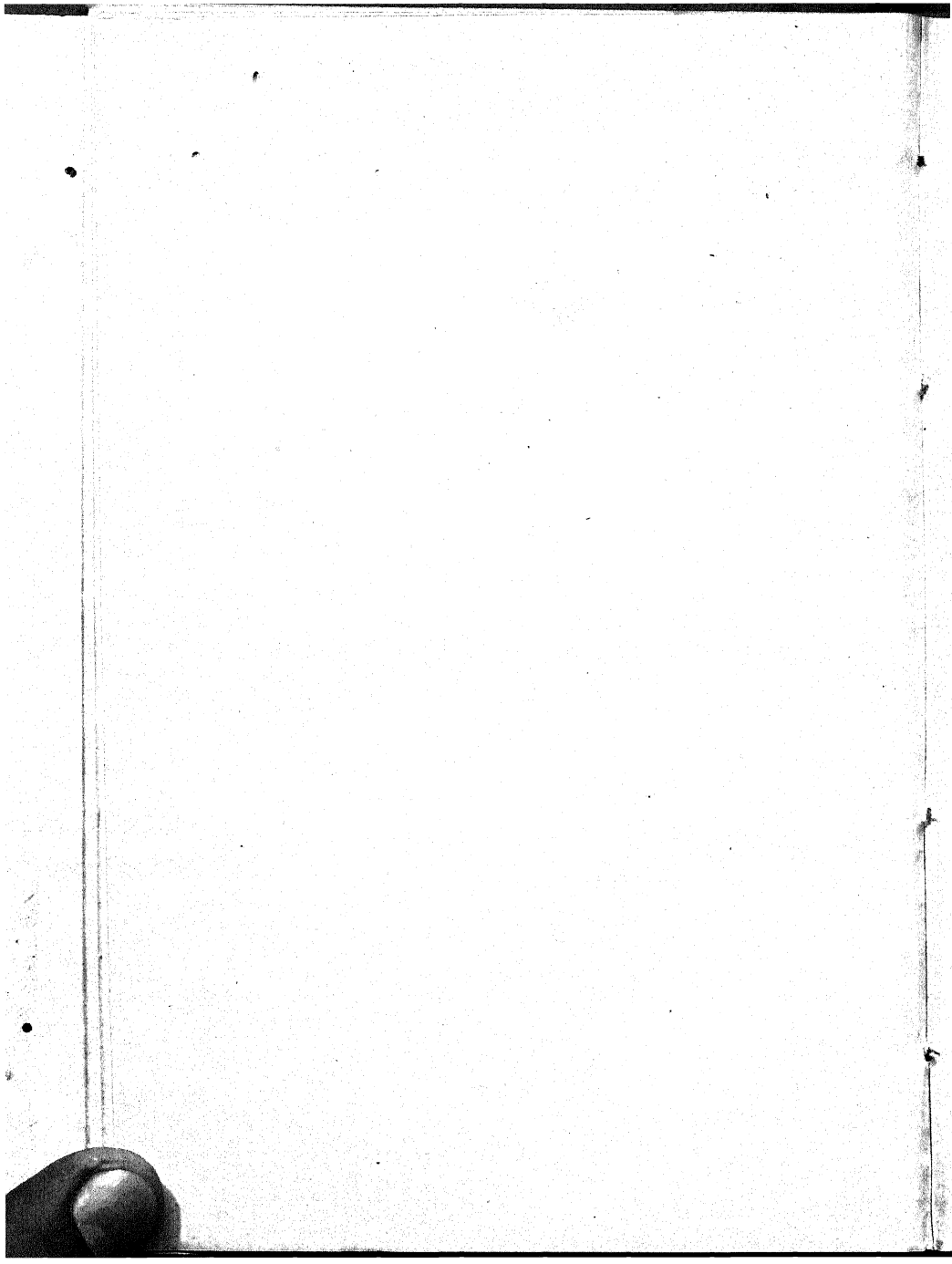
पुस्तक के संबंध में

पुस्तक के अन्तिम भाग को छोड़कर इसके खण्डों और अध्यायों की योजना हूबहू काज़ामिया के फ्रेंच साहित्य के इतिहास के अनुरूप है। परन्तु सामग्री मैंने विभिन्न पुस्तकों से ली है, इसलिए दृष्टिकोण पूर्णतः काज़ामिया का नहीं है। साहित्य के इतिहास में साहित्यिक समालोचना का स्थान अवश्य है, परन्तु काज़ामिया ने इतिहास की तुलना में समालोचना को ही अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसके विपरीत मैंने इतिहास को ही प्रथम स्थान दिया है और अनेक लेखकों की रचनाओं के कुछ नमूने भी दिये हैं, साथ ही उनके अनुवाद भी। फ्रेंच उच्चारण को हिन्दी लिपि में उतारना अत्यन्त कठिन है। इसलिए उच्चारण संबंधी कमी अनिवार्य है। इसके लिए जिस संकेत का मैंने प्रयोग किया है उसे ध्यान में रखना विशेष आवश्यक है। हिन्दी में एक नये संकेत का प्रयोग किया जाता रहा है ॉ, इसके नासिका स्वर के विस्तार के रूप में मैंने ॉं यह संकेत दिया है, जो ाँ से (जैसे चाँद) बिलकुल भिन्न है। उदाहरण के तौर पर यह संकेत उस ध्वनि के लिए है जो "मंच" शब्द के म् और च निकाल देने पर बच रहती है। कहीं कहीं मैंने सुपरिचित फ्रेंच नामों का अंग्रेजी उच्चारण ही रख छोड़ा है, जैसे "पारी" के स्थान पर पेरिस, या "नापोलेओं" के स्थान पर नेपोलियन।

इस छोटी पुस्तक में सुविशाल फ्रेंच साहित्य की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करना ही सम्भव है, फिर भी महत्त्वपूर्ण लेखकों तथा मुख्य साहित्यिक दर्शनों को मैंने पर्याप्त स्थान दिया है। पुस्तक के आयतन को सीमित रखने के लिए लेखकों की जीवनी को प्रायः छाँट ही देना पड़ा है। परन्तु सत्य तो यह है कि इन जीवनियों पर ही एक बृहत् पुस्तक लिखी जा सकती है।

हिन्दी के अधिकांश पाठकों को यदि किसी विदेशी भाषा का ज्ञान है तो वह भाषा अंग्रेजी ही है। इसलिए परिशिष्ट में मैंने सन्दर्भ-साहित्य की जो सूची दी है वह केवल अंग्रेजी पुस्तकों की है। फ्रेंच साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों के अधिकांश का अनुवाद अंग्रेजी में हो चुका है और फ्रेंच साहित्य के संबंध में भी अंग्रेजी पुस्तकों की संख्या कम नहीं है। इन अंग्रेजी पुस्तकों की भी पूरी या पर्याप्त सूची इस पुस्तक में देना सम्भव नहीं है।

फ्रेंच साहित्य के इतिहास के संबंध में काज़ामिया ने दो मूल फ्रेंच पुस्तकों के अध्ययन का सुझाव दिया है। पहली है "इस्तोआर द ला लितरातीर फ्रान्सेज" (फिलिप् व्हैन तिएगेम्,) और दूसरी है "इस्तोआर द ला लितरातीर फ्रांसेज दी सिम्बॉलिज्म आ नाँ जूर (आंरी क्लूआर)।

भूपेन्द्रनाथ सान्याल

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

तीसरा भाग

सत्रहवीं शती का पूर्वार्ध (१५९०-१६६०)

चौथा भाग

सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध—क्लासिक युग

पाँचवा भाग

बौद्धिक युग (१७१५-१७६०)

छठा भाग

पूर्व-रोमाण्टिक काल

सातवाँ भाग

रोमाण्टिक साहित्य (१८२०-५०)

आठवाँ भाग

यथार्थवाद (१८५०-८५)

नवाँ भाग

प्रतीकवाद (१८८५-१९१४)

विषय-प्रवेश

किसी भी विषय या वस्तु को खण्डों और अंशों में विभक्त कर देखना मानव-मानस का विशेष गुण है और इसी अभ्यास के अनुसार फ्रेंच-साहित्य भी विभिन्न कालों या युगों में विभक्त किया जाता है। परन्तु यह वर्गीकरण तभी सफल हो सकता है जब यह समझ लिया जाये कि किसी काल विशेष में पिछले काल का विकसित रूप मौजूद है और अगले काल का बीज भी। फ्रेंच साहित्य के चार मुख्य युग हैं—मध्ययुगीय, बौद्धिक, रोमान्टिक और यथार्थवादी। मध्ययुग में धार्मिक प्रभाव सर्वोपरि है और साहित्य का दृष्टिकोण भी धार्मिक है। साहसी योद्धा भी धर्म का संरक्षक है, परन्तु साथ ही वह अपने शौर्य से प्रेमिका के हृदय पर विजय प्राप्त करना चाहता है। योद्धा और सन्त का मेल मध्ययुग की साहित्यिक उपज है। यह काल पोप और धर्म-गुरुओं के अखण्ड राजत्व का भी काल है। सामाजिक वर्गीकरण भी ईसाई संघ (चर्च) के वर्गीकरण-जैसा है। परन्तु १४०९ ई० में जब एक की जगह तीन पोप हुए तो उन्होंने एक प्रकार से मध्ययुग के अन्त की भी घोषणा की। अटल धर्म-विश्वास में दरार पड़ गयी, सन्देह और संशय ने साहित्य में एक नये गुण का प्रवर्तन किया। बुद्धि ने धर्म का स्थान ग्रहण किया।

साहित्य का नया युग क्रम-विकास का रूप है या क्रान्तिकारी परिवर्तन यह विवादग्रस्त प्रश्न हो सकता है, परन्तु फ्रेंच मध्ययुगीय साहित्य और उसके परवर्ती काल के साहित्य के बीच महान् अन्तर है, यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। १५०० ई० से १४ वें लूई के शासन काल तक के युग को हम बौद्धिक युग कह सकते हैं, परन्तु यह क्रम-विकास का युग है, इसलिए इसके कई उप-विभाग किये गये हैं। यह युग शुरू होता है पुनर्जागरण या "रेना-

एसांस" से जब प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य ने शिक्षित वर्ग को विशेष रूप से आकृष्ट किया। अब धर्म को ताच्छिल्य की दृष्टि से देखा जाने लगा, परन्तु धर्म का विरोध नहीं उत्पन्न हुआ। लेकिन बुद्धि अब धर्म के बन्धन से अपने को धीरे-धीरे मुक्त करने लगी। धर्म-सुधार आन्दोलनों के संघर्ष से जब प्रायः अराजकता की सृष्टि हुई तो बुद्धि को भी अधिक स्वतंत्रता मिली। इसका दूसरा पहलू था सामन्तवादियों और शहर के नये मध्यम वर्ग का प्रच्छन्न संग्राम। मध्यमवर्ग की पहली विजय हुई जब १४वें लूई ने राजशासन को दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया। परन्तु यह विजय केवल इस अर्थ में है कि सामन्तवाद का गढ़ टूटा। मध्यमवर्ग के नये गढ़ बनने में अब भी कुछ देर थी। यह काल साहित्य में नये बल और दृढ़ नियमों का काल है जिसे 'क्लासिक' युग कहा जाता है। क्लासिक साहित्य में बुद्धि की दीप्ति है, परन्तु वेग नहीं। यह वेग पैदा हुआ १८वीं शती में जब विज्ञान की प्रगति ने जन साधारण को चकाचौंध कर दिया। तभी से धर्म का भी उग्र विरोध शुरू हुआ जो आज तक पूर्णतः शान्त नहीं हो पाया है। इस युग को विशेष रूप से बौद्धिक युग कहा जाता है परन्तु वास्तव में १६वीं शती से ही इसका प्रारम्भ होता है और आधुनिक युग को भी इस विशेषण से युक्त किया जा सकता है, यद्यपि इस जटिल युग के किसी एक नाम की सार्थकता नहीं है।

१८वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में फ्रांस की महान् क्रान्ति हुई जिसने बुद्धि को एक नये देवता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। परन्तु यहीं से बुद्धि-वाद की प्रतिक्रिया भी शुरू हो जाती है। धर्म का विरोध तो नहीं मिलता है, लेकिन धार्मिक भावना को पुनः बल मिलता है और धर्म पर बुद्धि का प्रलेप चढ़ाया जाता है। फ्रेंच क्रान्ति ने मध्यम वर्ग का आधिपत्य कायम किया, लेकिन साथ ही अब तक मूक जनता को भी उसने स्वीकृति प्रदान की। इनका मिला-जुला परिणाम है रोमांसवादी आन्दोलन जो जनता का नहीं है, परन्तु जनता के प्रति समवेदना-सम्पन्न है। स्पष्टतः धार्मिक न होते हुए भी इसमें मध्य युगीन धार्मिक प्रवृत्ति और गीतात्मकता भी है।

फ्रांस के इतिहास में १८७० ई० का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस

वर्ष जर्मनी ने फ्रांस पर आक्रमण किया और तृतीय नेपोलियन को अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इसी समय जन-शक्ति के प्रतीक के रूप में क्षणस्थायी कम्यून की स्थापना हुई। कम्यून टिक नहीं सकी, नेपोलियन की गद्दी कुछ दिनों सुरक्षित रही, लेकिन फ्रेंच मध्यम वर्ग की कमज़ोरी जाहिर हो पड़ी। मध्यमवर्ग के विशिष्ट प्रतिनिधि ही मध्यमवर्ग के कटु समालोचक वन गये और इससे यथार्थवादी साहित्य को प्रोत्साहन मिला। विज्ञान की नयी प्रगति ने भी इसे बल प्रदान किया। देकार्त के गणित-युक्त विश्लेषण का मार्ग त्याग कर विज्ञान ने अब प्रायोगिक विश्लेषण का मार्ग ग्रहण किया। देकार्त के वैज्ञानिक दर्शन ने क्लासिक और बौद्धिक युग को प्रभावित किया, परन्तु लाव्होआज़िए के रासायनिक विश्लेषण ने यथार्थवादियों को रास्ता दिखाया यद्यपि स्वयं लाव्होआज़िए की गर्दन क्रान्ति काल में गिलोटीन के तले कट चुकी थी।

मुश्किल से तीस पैंतीस वर्ष बीत पाते हैं कि यथार्थवाद की भी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। इसी समय विज्ञान को भी हम एक नये मोड़ पर पाते हैं। यह है फ्रॉयेड के मनोविज्ञान, बर्गसॉं के अन्तर्दर्शन और नीट्शे की शक्ति पूजा का जमाना। इस प्रतीकवादी युग के साहित्यिक पुनः मध्ययुग अभिमुखी हैं यद्यपि कुछ प्रभेद के साथ। परन्तु अब सभी प्रवृत्तियां एक साथ मिलने-जुलने लगती हैं। कहीं क्लासिक, रोमांस में जा मिलता है तो यथार्थवाद, मध्ययुगीन सरल धर्म-विश्वास में जा मिलता है। समसामयिक काल धुंधला है जिसका स्पष्ट विश्लेषण आज सम्भव नहीं। साहित्य के इतिहास को हेगेल के वाद-प्रतिवाद-समन्वय के दार्शनिक प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है। एक युग पिछले युग की प्रतिक्रिया है और परवर्ती युग दोनों का समन्वय है जिसके बाद इसी चक्र का पुनरावर्तन होता रहता है। लेखकों के संबंध में भी कुछ अंश तक यह विश्लेषण प्रयोज्य है।

एक और बात यह है कि प्रवृत्ति के अनुसार लेखकों का वर्गीकरण अवश्य किया जाता है, परन्तु प्रत्येक का व्यक्तित्व भिन्न है और व्यक्ति विशेषों में विभिन्न युगों का समावेश भी है। उदाहरणस्वरूप यथार्थवाद

को १९वीं शती में रखा जाता है, परन्तु श्लेषपूर्ण साहित्य हम मध्ययुग में भी पाते हैं और याथार्थ्य के बिना श्लेष का अस्तित्व ही सम्भव नहीं। यह पुस्तक साहित्य का दर्शन नहीं है, इसलिए इस विचारधारा की यहीं इति करनी पड़ती है।

फ्रेंच साहित्य में महिलाओं की भी विशेष देन है। महिला लेखिकाएँ तो हैं ही साथ ही साहित्यिक बैठकों का आयोजन करने वाली महिलाओं की भी बड़ी संख्या है। इनमें अग्रसर या क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहित करने वाली महिलाएँ भी हैं। रानी मारगरित ने धर्म संशोधकों को आश्रय दिया, मादाम द तेन सैं ने एन्साक्लोपीडिस्ट्स् को बढ़ावा दिया और नीना, जिसकी बैठकों में लकाँत द लील, बाँव्हिल, व्हेरलेन आदि प्रसिद्ध कवि शामिल हुआ करते थे, स्वयं ही क्रान्तिकारी बन गयी। ऐसा लगता है कि फ्रेंच लेखकों ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने का कौशल विशेष रूप से आयत्त किया है। तीस चालीस वर्षों के अन्दर आनातोल फ्रांस, आंद्रे ज़ीद, फ्रांसोआ मोरिआक और आलबेर कामी को साहित्य पर नोबेल पुरस्कार मिले। साथ ही विचित्र बात यह है अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति सम्पन्न मोलिएर—जैसे नाट्यकार और मिशले—जैसे इतिहासकार को फ्रेंच अकादमी ने अपने सदस्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। इस विषय में मोलिएर और मिशले के साथियों की संख्या नगण्य नहीं है।

पहला भाग

(मध्युगीन साहित्य, ९वीं से १५वीं शताब्दी)
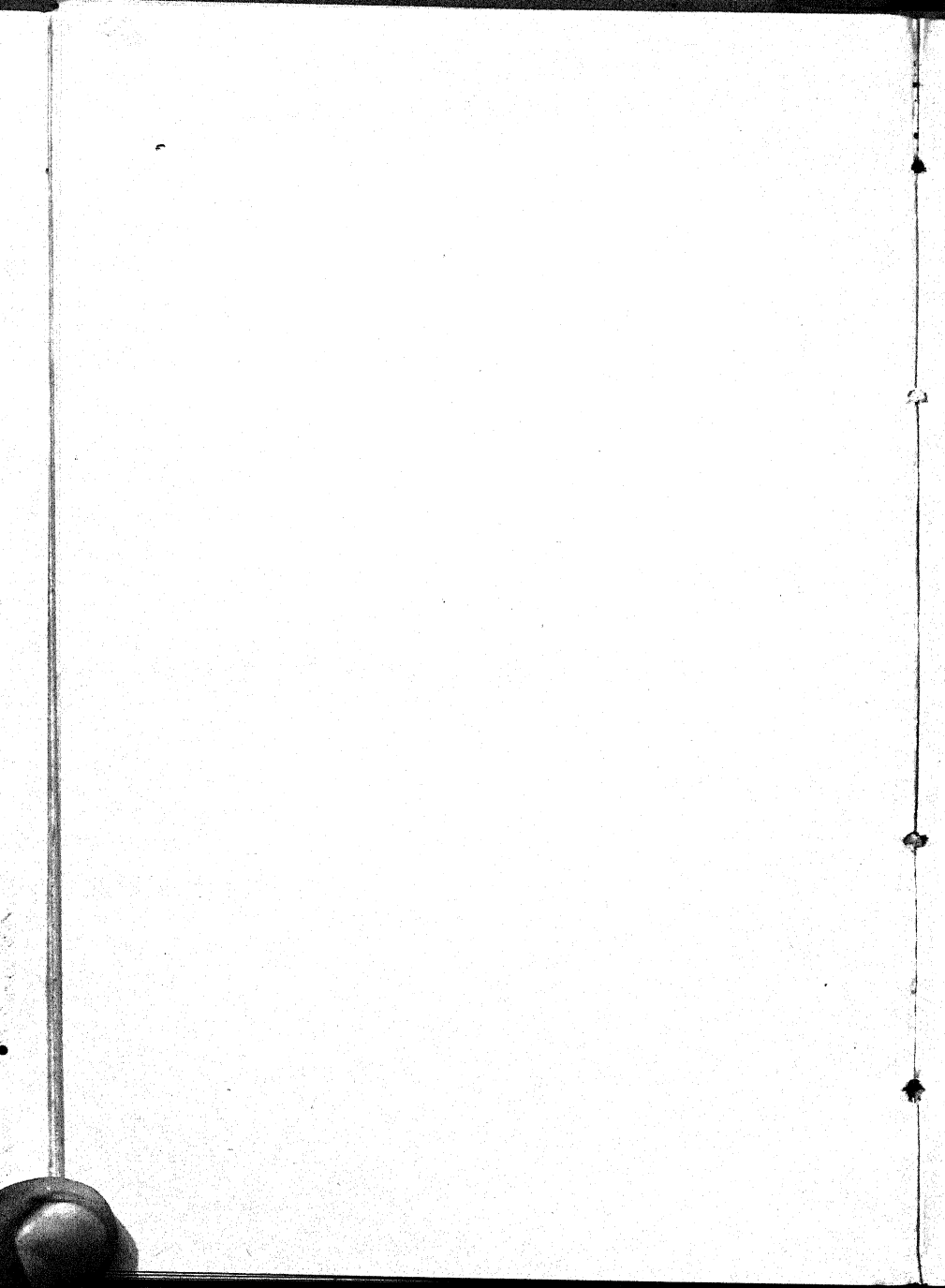
पहला अध्याय

शांसों द जेस्त

फ्रेंच साहित्य की निरवच्छिन्न, अप्रतिहत धारा में किसी काल-विशेष की महिमा इतनी अधिक नहीं है कि उसकी तुलना में अवशिष्ट काल की साहित्य-दीप्ति म्लान प्रतीत हो या ऐसा भी कोई काल नहीं है जब कि साहित्य-क्षेत्र में अकाल या सूखा पड़ा हो। साहित्य विकास-धर्मी है, परन्तु विकास के मार्ग में भी कभी-कभी गतिरोध उत्पन्न हो जाया करता है। फ्रेंच साहित्य के इतिहास में इस विकास-क्रम में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ; यह एक लक्ष्य करने की बात है। बारहवीं शताब्दी में उस साहित्य की कली निकली और बीसवीं शताब्दी में एक प्रस्फुटित पुष्प बनकर अपने सौरभ से सारे विश्व को उसने आमोदित कर दिया। आज भी उसकी प्रतिभा उज्ज्वल ही दिखाई देती है। देखा जाय तो फ्रेंच साहित्य केवल फ्रांस का नहीं, बल्कि सारे यूरोप का साहित्य है और यूरोप का कोई ऐसा विचार या भाव नहीं है जिसे फ्रेंच साहित्य में किसी न किसी समय, कहीं न कहीं स्थान न मिला हो। इस साहित्य की सार्वजनीनता के लक्षण प्रायः प्रथम से ही सुस्पष्ट हैं और फ्रांस की भौगोलिक स्थिति तथा उसके जन-संगठन में ही इसका कारण निहित है। फ्रांस न बहुत उत्तर को है और न बहुत दक्षिण को। इस नातिशीतोष्ण देश में ब्रिटेन, जर्मनी, स्कैंडिनेविया आदि उत्तरी देश तथा स्पेन, इटली आदि दक्षिणी देशों के हृदय और मस्तिष्क का संगम हुआ है। फ्रेंच साहित्य में उत्तर की तार्किक स्पष्टता और दक्षिण की भाव-प्रवणता, दोनों का समन्वय है और पृथक् धाराएँ भी इसमें विद्यमान हैं। सत्य यह है कि फ्रेंच लेखक-समुदाय में कुछ को उत्तर-भावापन्न और कुछ को दक्षिण-भावा-

पन्न कहा जा सकता है, यद्यपि विशिष्ट लेखकों पर आंशिक रूप से दोनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। जहाँ तक फ्रेंच जन-समुदाय का संबंध है वह भी विभिन्न जातियों का एक संगमस्थल है। केल्टिक आक्रमण के बाद फ्रांस के मूल निवासियों का गोलिक जातियों से सम्मिश्रण हुआ, और बेलजियन तथा जर्मन आक्रमणों के बाद कुछ जर्मन तथा बेलजियन उत्तरी भाग में बस गये। रोमन आक्रमण के परिणामस्वरूप फ्रांस रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया और इस ऐतिहासिक घटना का भी फ्रांस के जन-जीवन पर कुछ न कुछ तो प्रभाव पड़कर ही रहा। इनके अतिरिक्त, बास्क, मूर, विजीगाथ, स्कैंडिनेवियन, बर्गण्डियन आदि कितनी ही जातियों का समावेश यहाँ के जन-समुदाय में हो गया। इस सम्मिश्रण ने राष्ट्र को एक नयी उर्वरता प्रदान की और विचित्रता के बीच राष्ट्रीय एकता की सृष्टि भी सम्भव हो सकी। साहित्य राष्ट्रीय जीवन का मुकुर-स्वरूप है और फ्रेंच साहित्य में फ्रांस के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की एक अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के मार्मिक ज्ञान के लिए उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

बारहवीं शताब्दी में फ्रेंच साहित्य का प्रादुर्भाव स्वयं एक विस्मय की बात है, क्योंकि फ्रेंच कोई प्राचीन भाषा नहीं है। मूल केल्टिक निवासियों ने रोमन सैनिकों तथा फ्रांस में बसे हुए रोमन निवासियों की बोलचाल की लैटिन भाषा को रूपान्तरित किया और इस प्रकार बोलचाल का एक स्थानीय माध्यम बनकर प्रस्तुत हो गया। परन्तु कई सदियों तक इस माध्यम का जो रूप था उसे भाषा का नाम नहीं दिया जा सकता। स्थान-भेद के अनुसार बोलचाल में विभिन्नता स्वाभाविक ही थी, परन्तु धीरे-धीरे दो मुख्य जनपद-भाषाएँ संगठित हो उठीं—एक दक्षिणी और एक उत्तरी। जनपद-भाषाओं को सामूहिक रूप से 'रोमान्स' का नाम दिया जाता है। विशेष कर राजनीतिक कारणों से ही रोमान्स की उत्तरी शाखा—लांगदुई—का प्राधान्य और प्रभाव बढ़ता गया और कालक्रम से वही फ्रांस की राष्ट्रीय भाषा बन गयी। फ्रेंच साहित्य की यही भाषा है। इसका एक व्यतिक्रम बारहवीं

सदी का गीति-काव्य है जो दक्षिणी लांगदाक भाषा में लिखा गया है। इसके पहले लैटिन ही देश की लिखित भाषा थी।

जो प्रारम्भिक रोमान्स रचनाएँ मिलती हैं उनमें सबसे पहली, जिस पर साहित्यिक महत्त्व का आरोप किया जा सकता है, "कैन्टिलीन द सेन्ट युलाली" नामक कविता का तीस लाइनों का एक टुकड़ा मात्र है, जिसका रचनाकाल नवीं शताब्दी का अन्तिमांश है। सेण्ट युलाली के जीवनचरित्र के बाद अन्य सन्तों तथा शहीदों के जीवनचरित्र भी लिखे गये। ईसाई साधुओं ने लैटिन में जो जीवनचरित्र लिखे थे, उन्हीं के ये जन-बोधगम्य प्रतिरूप थे। कविता के पदों में ही ये रचनाएँ की गयीं, क्योंकि अपढ़ जनता के लिए कविता ही सर्वोत्तम माध्यम समझी जाती थी। 'सेन्ट लेज़र तथा सेन्ट आलेक्सी के जीवन' के एकरसात्मक छन्दों में बारहवीं सदी के प्रसिद्ध गीति-काव्य 'शांसों द जेस्त' (अतीत के गीत) के छन्दों का एक पूर्वाभास मिलता है।

'शांसों द जेस्त' ऐतिहासिक गाथाएँ हैं जिन्हें कथा-गायक तार-वाद्यों के साथ सार्वजनिक त्यौहारों के अवसरों पर किलों में, पादरियों के भजनालयों में और बाजारों में गाया करते थे। रचनाएँ काफी लम्बी हैं, कुछ बीस हजार पंक्तियों तक की, और कई किस्तों में ही ये गायी जाती होंगी। भिन्न-भिन्न कहानियों को जोड़कर रचना का विस्तार नहीं किया गया है, बल्कि संपूर्ण रचना में अन्तर्निहित एकता है और बृहदाकार तथा एकता की दृष्टि से उस रचना को प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य की आख्या दी जा सकती है, चाहे वह महाकाव्य आदिम प्रकार का ही हो। 'शांसों द जेस्त' के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में तीन सौ वर्ष पहले के राजा शार्लमेन की कीर्ति-गाथा है। परन्तु तीन सौ वर्ष पहले के इतिहास को तत्कालीन प्रचलित सामन्तवादी ढाँचे के अन्दर ही डाल दिया गया है। प्रथम खण्ड का सर्वोत्तम और संभवतः सबसे पुराना भाग है 'रोलां का गीत'। गीत में यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार शार्लमेन का भतीजा रोलां सेना की पिछली टुकड़ी के साथ पीछे रह गया, जब कि शार्लमेन की मुख्य सेना पीरेनीज की

पहाड़ी पार कर स्पेन में प्रवेश कर रही थी। गानेलों के विश्वासघात के कारण रोलां, सारासेन (मुसलमान) सैनिकों के द्वारा (ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार बास्क ईसाईयों के द्वारा) घिर गया, फिर भी अपने साथी ऑलिवर तथा पुरपैं के साथ आखिरी दम तक लड़ता रहा और मरा वह तभी जब कि शत्रु पीछे हटने लग गया था। रोलां की मृत्यु के साथ ही कहानी का अन्त नहीं हो जाता। शार्लमेन ने रोलां की मृत्यु का प्रतिशोध एक दूसरे युद्ध में लिया जिसका पूर्ण वर्णन गीत में किया गया है। विश्वासघाती गानेलों को चार घोड़े नोच डालते हैं, एक मूर (मुसलमान) रानी को ईसाई धर्म में दीक्षित किया जाता है और कविता के अन्त में शार्लमेन को स्वप्न में एक नये धर्म-युद्ध के लिए फरिश्ते जिब्राईल का आह्वान सुनाई देता है। वर्णन में केवल वास्तविकता ही नहीं है, कवि-कल्पना की उड़ान भी प्रचुर है। रोलां अपना अद्भुत शंख ओलिफा बजाता तो समय रहते ही शार्लमेन उसकी सहायता को लौट पड़ता। परन्तु आत्मविश्वास की अधिकता के कारण ही उसने शंख नहीं बजाया। रोलां की मृत्यु हो जाती है तो एक फरिश्ता कुछ संतों के साथ उसकी आत्मा को स्वर्ग ले जाता है। इस घटना-बहुल शब्द-चित्र में वीर और करुण रसों का अद्भुत संयोग भी है। रोलां के दो साथियों की मृत्यु होती है तो शोक से वह उतावला हो जाता है और फिर एक-एक कर उन्हें एक मरते हुए पादरी के पास ले जाता है जो अन्तिम श्वास के साथ उन्हें पापमुक्त कर अपना आशीर्वाद देता है।

'शांसों द जेस्त' के प्रथम खण्ड में है राजा की कहानी। शार्लमेन अपने परिवार सहित धर्म-युद्ध करता है। दूसरे खण्ड में है ऑरेंज प्रदेश के एक महान् दक्षिणी परिवार की कहानी। ऑरेंज का विलियम स्पेन के मुसलमानों के साथ युद्ध करता है। यह है 'जेस्त द जिलोम दोरांज' जिसमें राजाधिकार का सम्मान और राजा के प्रति अधीनस्थ सामन्तों की भक्ति का अवश्य समर्थन है, परन्तु मुख्य नायक 'ज़िलोम दोरांज़' (आरेंज का विलियम) ही है और ईसाई धर्म की रक्षा के लिए धर्म-युद्ध तथा पारिवारिक कहानी को मिला-जुलाकर ही इस गाथा का निर्माण किया गया है। तीसरा खण्ड

'दूं द मायांस' तो खुले रूप से सामन्तवादी है। अब शत्रु नास्तिक नहीं बल्कि कोई प्रतिद्वन्द्वी सामन्त है। नायक, स्वयं शार्लमेन या उसके परिवार अथवा समर्थकों के विरुद्ध किसी अन्याय के कारण विद्रोह करने को बाध्य हो जाता है। इस खण्ड में 'गोरमों ए इसेम्वार,' 'गिरार द रूसिलों,' 'राऊल द काम्ब्रे' और 'ले कात्र फीस आएमों' आदि विद्रोह-काव्यों की गिनती की जा सकती है।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी का युग धर्मयुद्ध—क्रूसेड—का युग था। एक प्रबल धर्मविश्वास ने तत्कालीन साहित्य को भी प्रभावित किया। इसमें एक और धारा आ मिली। वह थी नारी के सम्मान की रक्षा के लिए सामन्त-शाही वीरता। उस काल के साहित्य में इन दो मुख्य धाराओं के अतिरिक्त एक स्थूल यथार्थवादी तथा श्लेषात्मक प्रवृत्ति भी पायी जाती है। कथात्मक दृष्टि से इस साहित्य का विकास होना अभी बाकी है, परन्तु भविष्य के वैभव का इंगित इसकी सर्जन-शक्ति में विद्यमान है।

दूसरा अध्याय

नवीन धारा—क्रेतिआँ द त्रॉय

'शांसों द जेस्त' जिस समय लिखा जा रहा था उसी समय साहित्य में एक और धारा भी प्रवाहित हो रही थी। इस नवीन धारा के नायक धर्मयोद्धा नहीं थे और न वे राष्ट्रीय सूत्र से ही लिये गये थे। इस धारा की एक श्रेणी के नायक ग्रीक (यूनानी) और लैटिन साहित्य के नायक हैं। फ्रेंच लेखकों को कल्पना-मूलक अथवा ऐतिहासिक ग्रीक कहानियों का परिचय संक्षिप्त लैटिन संस्करणों में ही प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने ढंग से, अपनी कल्पनाओं को भी संयुक्त कर, अपनी भाषा में उन कहानियों को पुनर्व्यक्त किया। इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय था 'सिकन्दर के करिश्मे'। इस 'रोमांटिक' कृति में रमणियों के प्रति श्रद्धाशील और मुक्तहस्त एक काल्पनिक सिकन्दर (आलेक्ज़ाण्डर) रोमांचपूर्ण पूर्वी देश में, जहाँ लताओं पर जवाहिरात झूलते हैं और पेड़ भी बातें करते हैं, युद्ध करता फिरता है। मध्ययुगीन फ्रेंच लेखक दूसरी शताब्दी के कल्पनाशक्ति-सम्पन्न ग्रीक–इंगितों को उत्सुकता के साथ ले दौड़ता है। थीबिस और इनियास की रोमांचकर कहानियों में भी इसी प्रकार कल्पना की उड़ान है। यह एक आकर्षक तथ्य है कि फ्रेंच साहित्य के प्रारंभिक काल में ही कुछ फ्रेंच लेखकों ने, ख्रीष्टीय परम्परा से उद्‌भूत राष्ट्रीय संस्कृति की मुख्य धारा से पृथक् होकर, ग्रीस और रोम से ही अपने मानसिक तथा प्रकृतिगत संबंध का अनुभव किया। फ्रेंच साहित्य में दोनों धाराएँ आज तक चली आ रही हैं, जब कि वेगुई तथा क्लोडेल ने एक मार्ग पकड़ा और वैलरी तथा गिराडू ने दूसरा मार्ग पकड़ा।

इस नवीन धारा की दूसरी श्रेणी के नायक ब्रिटेन से लिये गये हैं और फ्रेंच आविष्कार सहित राजा आर्थर तथा उसके दरबारियों की कहानी फ्रेंच साहित्य में प्रतिष्ठित की गयी है। इसके मूल में है ११३७ ई० में लिखा गया सेन्ट आसाफ के विशाप जिओफ्रें (मोंसूके) का 'ब्रिटेन का इतिहास'। नाम इसका इतिहास है, लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों का इसमें पूर्ण अभाव ही है। इसी में योद्धा-नरेश आर्थर का वर्णन है जो छठी शताब्दी में लड़ते-लड़ते गिर पड़ा और उसकी चोटों के उपचार के लिए उसे आवालों के जादू-विमोहित टापू में ले जाया गया। ११५५ में नॉर्मन कवि रॉबर्ट वास ने जिओफ्रें के इतिहास को कविता में रूपान्तरित किया और उसके 'रोमां द ब्री' काव्य में कहानी का और विस्तार किया गया और 'गोलमेज़' आदि नये अंग भी उसमें जोड़े गये। राजा आर्थर की फ्रेंच कहानियों के सूत्रों का पता लगाना बहुत कठिन है, परन्तु इतना निश्चय है कि जिओफ्रें और वास ने ही पहले पहल फ्रेंच साहित्य में उसे प्रतिष्ठित किया और अधिक समय बीत न पाया कि फ्रेंच कवियों ने उसे एक ऐसे नवीन वेश में उपस्थित किया कि मूल कहानी की पहचान भीं कठिन हो जाती है। इस क्षेत्र में 'क्रेतिआं द त्रॉय' की ख्याति ही सर्वाधिक है।

क्रेतियां की जो कृतियाँ मौजूद हैं, वे त्रॉय में ११६५ और ११९० के बीच काउन्टेस मारी द शाम्पांइने के दरबार में लिखी गयी थीं। दरबार कुछ चुने हुए लोगों का एक छोटा-सा समाज था जो कला तथा मानवीय संबंधों के छिछले अध्ययन में रत रहता था। बाद को आलसेस के फिलिप में उन्हें एक और सुसंस्कृत पृष्ठपोषक मिला जिनके लिए उन्होंने 'परसीवाल' काव्य की रचना का प्रारम्भ किया था। 'परसीवाल' के अतिरिक्त उनकी तीन और कहानी-कविताओं---'एरेक ए एनीद', 'लान्सेलो' और 'इवैं'--का संबंध आर्थर तथा उसके दरबारियों से है। क्रेतिआं के महत्त्व और प्रतिभा को स्वीकृति धीरे-धीरे मिली। अपने युग की काल्पनिक कहानी तथा परवर्ती काल के उपन्यास की धारा सुनिश्चित करने और उनको विशिष्ट रूप देने के लिए जो आन्दोलन हुए उनके पुरोभाग में हैं क्रेतिआं। आकर्षण के

नये सूत्रों की खोज में उन्होंने एक नेतृत्व प्रदान किया। अष्टशब्दांशी हलकी पंक्तियों की उनकी कविताओं में कहानी फिसलती चलती है; जीवित-सदृश वास्तविकता के दृश्यों में विस्मयोत्पादक घटनाएँ भीड़ करती जाती हैं और अज्ञात प्रदेश में साहसपूर्ण यात्रा की उत्तेजना परी-लोक की चमक-दमक के साथ हो लेती है। कभी कभी कहानी के साथ एक नीति-उपदेश भी वे जोड़ देते हैं और इस प्रकार उद्देश्यमूलक उपन्यास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनकी दो एक रचनाओं में भविष्य के कलापूर्ण प्रतीकवाद का भी क्षीण आभास मिलता है। तथापि अपने युग तथा परिवेश के प्रभाव से वे मुक्त नहीं थे। जहाँ एक ओर ईसाई धर्म और संघ से साहित्य को प्रेरणा मिली वहाँ दूसरी ओर सामन्तवादियों तथा उनके दरबारों का गैर-ईसाई प्रभाव भी साहित्य पर पड़ा। दूसरे प्रकार के प्रभाव के मूल में कितनी ही उच्चवंशीय महिलाएँ थीं जिनके आश्रय तथा पृष्ठपोषकता में दरबारी प्रेम की एक नयी परम्परा चल पड़ी। यह प्रेम समाज-बन्धन-मुक्त हृदयावेग का स्रोत नहीं था बल्कि सामन्तशाही दरबारों का अनुशासनबद्ध, सुनियंत्रित, आचार-सम्पन्न प्रेम था। क्रेतिआं भी रमणी को उच्च स्थान देते हैं, परन्तु एक मानवातीत आदर्श में उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करते। उनकी नारी सुन्दर है, इन्द्रियासक्त है और कुछ सीमाओं के अन्तर्गत आकर्षक भी। साथ ही, 'स्वभाव से दुष्प्रकृति' नारी की कल्पना से वे बहुत दूर हैं। दूसरी ओर आर्थर की कहानी के गोलमेज़ के 'नाईट' (दरबारी) उनके अपने युग के सामन्तवादी दरबारियों के मूर्त आदर्श ही हैं।

नवीन धारा की तीसरी श्रेणी की झाँकी मारी द फ्रांस की कृतियों में मिलती है। उनकी छोटी कविताएँ (ले) कल्पनामूलक प्रेम की कहानियाँ हैं जिनमें निष्कलुष-मानस युवक और युवती प्रेम की मुक्त लीला के लिए अपने हृदय के द्वार खोल देते हैं, परस्पर मिलन के लिए जटिल कौशलों का आश्रय लेते हैं और दुर्गम प्रदेश में निर्भीक यात्रा करते हैं। शोकोच्छ्वास मारी को बहुत प्रिय है। जादू—बोलता हुआ हरिण, मनुष्य रूप में भेड़िया, बाज के रूप में प्रेमिक—उनके लिए सहज स्वाभाविक-सी वस्तु है। उनके

नायक-नायिका आंशिक रूप से केल्टिक वातावरण में विचरण करते हैं। उनके छन्दों में लालित्य है, परन्तु साथ ही एक कठोरता भी है। वह थी कौन? कोई निश्चय के साथ नहीं कह सकता। संभव है कि वह वही मारी हो जो ११८० ई० के लगभग शाफ्टसबरी की ऐबेस बन गयी। यह तो नितांत संभव है कि वह इंग्लैंड में ही रहती थी और जिस समय त्रोये के दरबार में क्रेतिआं अपनी रचना कर रहे थे उसी काल में मारी द्वितीय हेनरी के दरबार में जाया करती थीं। उनकी एक और रचना 'इसोपे' कविताओं में नीतिमूलक कहानियों का संग्रह है।

चौथी श्रेणी में है अनजान देशों में साहसपूर्ण करतूतों की कहानी (ऐडवेंचर स्टोरीज़)। इन कहानियों में कल्पना का हाथ तो प्रचुर है परन्तु प्रचलित आचारों तथा प्रथाओं का एक रूप और तत्कालीन जीवन के वास्तविक चित्र का आभास भी उनमें मिलता है। अधिकांश लेखकों के नाम अज्ञात हैं। परन्तु कुछ रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि वे जाँ रनार की ही कृतियाँ हैं, जिनमें से दो, 'ज़िलोम द डोल' और 'ले द लोंब्र' ख्यातिप्राप्त हैं। इसी श्रेणी में 'ओकासैं ए निकॉलेट' को रखा जा सकता है। यह एक गद्य-पद्य कहानी-संगीत है जिसमें पारी-पारी से गद्य और पद्य हैं; एक आवृत्ति के लिए और दूसरा गाने के लिए। दो प्रेमिक-प्रेमिकाओं, ओकासैं और निकॉलेट की सरल प्रेमकहानी में सुशिक्षित मन की सूक्ष्म अनुभूतियाँ ऐसी जटिलताएँ लेकर उपस्थित हो जाती हैं कि आधुनिक पाठक भी चकित रह जाता है। अत्युक्ति भी कवित्वपूर्ण है। ओकासैं, घोड़े पर सवार, झाड़ों और काँटों में अपनी प्रियतमा को खोजता फिर रहा था और पचास जगहों से या तीस जगहों से, उसकी बाँह से, बगल से और पैरों से खून की धार निकल रही थी। कहानी-लेखक अपने नायक को सीमित स्थान से निकालकर 'कहीं नहीं' के सपने में भी ले जा सकता है, यथा—

(फ्रेंच)	**"ओकासँ बो ज़ासी दू आं केल तर आं नीरों नो"**
(अनुवाद)	औकाजैं, मेरी मधुर प्रिया, किस देश को हम जायेंगे ?
(फ्रेंच)	**"दू जामी क से ज़ा मो आ न शो ऊ न ज़ालों"**
(अनुवाद)	मैं जानू क्या, मेरी बन्धुप्यारी, मुझे परवाह नहीं हम जायें कहाँ ?
(फ्रेंच)	**"आं फॉरेस ओ आं देस्त्र मे कज सो आ आवेक व्हॉ"**
(अनुवाद)	जंगलों से हो या टेढ़े मेढ़े रास्ते से, यदि हूँ मैं केवल तुम्हारे साथ।
(फ्रेंच)	**"पासां ले व्हो ए ले मोंज ए ले व्हील ए ले बोर आला मेर व्हीन्द्रां आ ल ज़ोर सी दसादां एल साब्लों ले ल रिवाज़"**
(अनुवाद)	वे पहाड़ पार करते हैं और घाटी, शहर और गाँव; समुद्र के समीप उसी दिन वे पहुँचते हैं, किनारा पकड़कर समुद्र-तट पर वे उतरते हैं।

तीसरा अध्याय

गीति-काव्य

गीत से ही गीति-काव्य है और जहाँ तक पश्चिम यूरोप का सम्बन्ध है गीत का आविष्कार दक्षिण-भाषा (लांगदॉक) भाषी गीतिकारों (त्रुबा-दूर) ने किया। हो सकता है कि स्पेननिवासी अरबों से उन्होंने यह कला सीखी हो या गिरजे के लैटिन गीतों के नमूनों के आधार पर ही उन्होंने अपने गीतों की रचना की हो। इस गीत के उद्‌गम का प्रश्न चाहे विवादग्रस्त हो, परन्तु इतना निश्चय है कि ग्यारहवीं सदी में ही दक्षिण फ्रांस में एक उन्नत संस्कृति वर्तमान थी। गीति-काव्य की रचना में अभिजात वर्ग ने भी पर्याप्त भाग लिया और वे गिरजों तथा मठों के ज्ञान-भण्डार पर उतने निर्भर नहीं थे जितने कि उत्तरी फ्रांस के गीतकार। यही काव्य न केवल फ्रांस, बल्कि इटली और स्पेन में भी प्रचलित था और दांते तथा पेट्रार्क-जैसे महान् कवि भी आर्नो दानिएल तथा गिरो द बोर्नील-जैसे गीतकारों के प्रशंसक थे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उच्च घराने के ड्यूक और काउन्ट भी गीतकार थे और चाहे पेशेदारों ने भी गीतों की रचना की हो, उस पर आभिजात्य की एक छाप विद्यमान है; छोटे-छोटे दरबारों के शिष्टाचारों से वे बँधे हुए हैं। छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित उनके छन्दोबद्ध पदों का रचना-कौशल बहुत सूक्ष्म है। काव्य का मुख्य विषय है प्रेम। अधिकांश, कवि की प्रिया की स्तुति है, जिसके हृदय पर आत्म-समर्पण और विश्वासपूर्ण प्रेम के द्वारा ही वह विजय प्राप्त करने की आशा कर सकता है। अपने को प्रिया के योग्य बनाना ही उसके जीवन का निर्देशक सिद्धान्त है। वह घोषित करता है कि दूर से ही अपनी प्रिया की पूजा करने को वह

प्रस्तुत है, केवल इस आशा से कि प्रिया उसके इस अर्पण को और उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेगी। यदि त्रुबादूर की कला वास्तव में लैटिन भजन-गीतों से ही निःसृत हुई तो मानवीय प्रेम का धर्म में लीन हो जाना सहज ही समझा जा सकता है। जो कुछ हो, इस काव्याकृति का प्रयोग तेरहवीं सदी के गिरौ, रिकियेर-जैसे कवियों के द्वारा मेरी माता के भजन-गीतों के लिए भी किया गया है। इस गीति-काव्य के छन्दों की नवीनता और पद-रचना की निपुणता जितनी निर्विवाद है, उसकी विषय-वस्तु की कृत्रिमता भी उतनी ही स्पष्ट है। यद्यपि राजनीतिक कारणों से उत्तर का आधिपत्य ही इस काव्य-परम्परा की परिसमाप्ति का प्रत्यक्ष कारण बना, परन्तु अन्तर्निहित दुर्बलता ही इस परम्परा के लोप का वास्तविक कारण है। अधिकांश काल के गर्भ में समा चुका है तथापि ज़िलोम नवम और सुप्रसिद्ध 'सुदूर की राजकुमारी' (प्रेंसेस लोआंतें) के रचयिता जोफ़्रे रीडेल-जैसे कवियों की ख्याति आज भी अमर है।

उत्तर में गीति-काव्य का उदय कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, लेकिन इतना कहा जा सकता है कि प्रति दिन की घटनाओं तथा जनसाधारण की आवेगानुभूतियों को रूप देने वाले लोकगीतों से ही उसे प्रेरणा मिली। इन लोकगीतों में श्रमगीत (शांसो द तोआल) भी हैं। इनके जो अवशिष्टांश मिलते हैं उनके सहज आकर्षण का एक उदाहरण यह टेक है—

वैंत्र लोर ए ली रैं क्रोलां;
की सांत्रे मैं सोएफ़ दोरमां।

(अनुवाद)—वेग से हवा चले, डाल डोले, प्रेमिकों की निद्रा मधुर है।

इन गीतों में राष्ट्रीय आत्मा का एक प्रकाश है; बाद के कवियों को भी इनसे प्रेरणा मिली। लेकिन दक्षिण के प्रभाव के कारण उत्तर के कवि भी पद-बन्धन की जटिलता और शैली की निपुणता में दक्षिण की प्रतियोगिता करने लगे और दरबारी प्रेम के आदर्श के अनुकरण ने लोकगीतों को विस्मृति के गर्भ में डाल दिया। प्रतिस्पर्धा में छन्द, पद और शैली के नये-नये रूप

आविष्कृत हुए, परन्तु इस कृत्रिमता में कथा और विषय-वस्तु का अभाव रह गया। दक्षिण के त्रुवादूरों के मुकाबले उत्तर के त्रुवेरों ने (दोनों का शब्दार्थ एक ही है) कविताओं के अभिनव रूपों को जन्म दिया। कथोपकथन गीत (शांसों ए पेरसोनाज़) बने, प्रेम-विषयक वादानुवाद गीत (ज़े पारती) बने, पास्तूरेल (चरवाहों के गीत) बने और उषा-समागम पर प्रेमिकों के विच्छेद-गीत (ओब) बने। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में 'रोंदों' और बैलाड (नृत्य-गीत) आये। कवियों ने कविताओं के बाह्य रूप को अलंकृत करने में ही अपनी सारी सर्जन-शक्ति को नियोजित किया, परन्तु इसका व्यतिक्रम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

श्रमोत्पादित परन्तु सौन्दर्यपूर्ण कविताओं के वाक्चतुर दरबारी कवियों के सम्बन्ध में विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। बारहवीं सदी के ऐसे कवियों में कोनों द बेथून का नाम उल्लेख योग्य है जिन्होंने कुछ हास्यरस की कविताएँ लिखी हैं और एक महान् महिला मारी द शांपांइयें का स्तुतिगान किया है। वैपरीत्य की दृष्टि से आरास प्रान्त के जां बोदेल का नाम लिया जा सकता है जिनकी ख्याति नाटककार के रूप में है, परन्तु जिनके गीतों की वैयक्तिक प्रकृति दरबारों के संकुचित, औपचारिक प्रेम से बहुत भिन्न है। यह दिशा-विरोध तेरहवीं शती के प्रतिभाशाली कवियों में भी पाया जाता है। अधिकांश का प्रतिनिधित्व करते हैं अभिजात वर्ग के कवि थीबो द शाम्पांइएं। उनके प्रेमसंगीतों की स्वच्छन्द गति ऐश्वर्यपूर्ण है और उनमें सहज सौन्दर्य की भी एक शोभा है। गीत में आवेग की अतिशयता नहीं है, परन्तु कहीं-कहीं श्लेषात्मक इंगित बड़ी चतुराई के साथ बैठा दिया गया है। इसी श्रेणी के दूसरे कवि हैं कोलें मीज़े, परन्तु वे अभिजात वर्ग के नहीं, बल्कि जनसमुदाय के ही एक हैं। वे हर एक को खुश करना जानते थे और इसलिए उनका साधन था आत्म-परिहास। इस प्रकार की कविता से फ्रेंच मानसिक प्रवृत्ति की एक आत्मीयता है और फ्रेंच कविता की आगे आनेवाली एक मुख्य परम्परा के कुछ बीज इसमें निहित हैं। परन्तु वंश-मर्यादाहीन, साहित्य क्षेत्र के घुमक्कड़, स्तब्येफ का आकर्षण सम्पूर्ण भिन्न

प्रकार का है। तेरहवीं शती के उत्तरार्ध में उन्होंने लाक्षणिक कविताएँ लिखीं, नीति-कथाएं लिखीं, स्तुति-वन्दना लिखी और एक नाटक की भी रचना की। गिरजों के भ्रातृ-समुदाय के विरुद्ध और जेहाद के पक्ष में उन्होंने लिखा। समकालीन निन्दनीय प्रवृत्तियों पर भी उन्होंने विद्रूप की बौछार की, लेकिन सब से सुन्दर कविताएँ उनकी वे हैं जिनमें व्यक्तिगत क्षोभ और दुख-दर्द को उन्होंने अनावृत्त किया है। अपने जीवन की संकटपूर्ण घड़ियों से ही उन्हें काव्य-प्रेरणा मिली और उनका श्लेष तीक्ष्णधार है। यदि एक ओर उनकी शैली की दुर्बलता है तो दूसरी ओर है वास्तविकता का रसास्वादन और वाक्य-विन्यास की उनकी क्षमता। आत्म-ग्लानि को वे हास्य-कल्लोल में छिपाना चाहते हैं, परन्तु इस प्रयत्न से ही उनकी व्यथा की तीव्रता सुस्पष्ट हो उठती है और हमारी समवेदना आकृष्ट करती है।

चौदहवीं शती में शैली का ऐश्वर्य और रूप की परिपूर्णता तो मिलती है, परन्तु ज़िलोम द माशो तथा युस्तास दे शाँप-जैसे प्रसिद्ध कवियों की बहुसंख्यक रचनाओं में भी इनके अलावा कुछ और नहीं मिलता, कविसुलभ कल्पनात्मक इंगित का लेश मात्र भी नहीं है। फिर पन्द्रहवीं शताब्दी में चलकर अनुभूति और कल्पना की चाह कुछ मिटती है। दो लेखक मिलते हैं जिनकी ख्याति तो अधिक नहीं है, परन्तु उनकी लेखनी में एक आन्तरिकता है। क्रिस्तीन द पिसां एक मर्यादा-सम्पन्न कवयित्री थी जिसने आत्म-विस्मृत होकर कविताएँ लिखीं, परन्तु कहीं-कहीं उसकी विधवावस्था का शोक उछल पड़ता है। 'जोन ऑव आर्क' की महत्ता की अनुभूति उसमें थी और नारी-छिद्रान्वेषण की चली आयी परम्परा का भी उसने साहस के साथ विरोध किया। आलैं शार्तिए का अपने युग का ओजस्वी वाङमय-पूर्ण विरोध गद्य में है, लेकिन उनकी कविताएँ भी काफ़ी आकर्षक हैं। आजिनकुर की हृदय-विदारक विषादपूर्ण घटना को शेक्सपियर ने एक अंग्रेज़ की आँखों से देखा, लेकिन फ्रांस के निवासियों के दिलों पर क्या बीती इसका वर्णन शार्तिए ने 'लिव्र दे कात्र दाम' (चार महिलाओं की कथा) में किया है। 'कात्र दाम' (चार महिलाओं) के प्रेमास्पद आजिन-

कुर की दुर्घटना में खो गये हैं। वे कभी विलाप करती हैं और कभी वादानुवाद।

सत्य यह है कि फ्रांस के शत-वर्षीय युद्ध के विकराल, उपद्रवग्रस्त दुर्दिनों में कवियों ने छन्द-रूप के उद्यान में अपने को आवद्ध रखा और सार्वजनिक चिन्ता तथा व्यक्तिगत आवेगोच्छ्वास से अपने को अछूता रखने के लिए कला का एक प्राचीर खड़ा कर दिया। यह विशेष रूप से लागू है चार्ल्स (ओर-लिआंव के) के लिए। वे थे फ्रांस-नरेश छठे चार्ल्स के भतीजे, अभिजात-वर्ग के महान् अन्तिम कवियों में से एक और मध्ययुगीन गीतिकाव्य पर-म्परा के सर्वश्रेष्ठ सुयोग्य रचयिता। आजिनकुर के युद्ध में बीस साल की उम्र में वे बन्दी बना लिये गये और पचीस वर्षों तक इंग्लैंड में उन्होंने बन्दी-जीवन विताया। जब वे बन्दी-जीवन से मुक्त किये गये, उन्होंने ब्लोआ के दुर्ग में जाकर अवकाश ग्रहण कर लिया और कवियों से अपने को वेष्टित कर लिया। परन्तु उनकी अपनी कविताओं में न तो अपने क्रियाशील राज-नीतिक जीवन का ही कोई प्रतिविम्ब है और न लम्वी क़ैद की कोई प्रति-क्रिया। परन्तु विओं की रीति विपरीत है। समाज के एक छोर पर हैं चार्ल्स और दूसरे छोर पर विलों। विओं का जीवन प्रथम से ही दारिद्रय का आवास रहा है। संयमहीन उपद्रवी विद्यार्थी-जीवन की अपेक्षा दारिद्र्य के जीवन ने ही उसे मानस और हृदय की परिपक्वता प्रदान की और अपने अनुभवों के कड़वे फलों के ढेर का उसने संग्रह किया। १४३१ ई० में पेरिस में उसका जन्म हुआ और एक क्षेत्रीय पादरी ज़िलोम द विऑ ने, जिससे उसका नाम पड़ा, उसका पालन-पोषण किया। विद्यार्थी-जीवन में ही उसे मदिरा-गृह का चसका लगा और एक अनियन्त्रित छात्र-जीवन से वह वास्तविक अपराधी जीवन में फिसल पड़ा। राहजनी और हत्या के अप-राधों में भाग लेने के कारण उसे कई बार कारा-जीवन विताना पड़ा और अन्तिम बार उसे मृत्युदण्ड भी दिया गया। प्रायः अन्तिम क्षणों में ही उसे क्षमा प्रदान की गयी, परन्तु इस शर्त पर कि १० वर्ष के लिए पेरिस से वह चला जाय। १४६३ ई० में ३० साल की उम्र में पेरिस छोड़कर वह चला

गया और फिर किसी को उसका पता नहीं चला। उसकी रचनाओं का आयतन छोटा है, परन्तु प्रत्येक का स्तर बहुत ऊँचा है। प्रत्येक पंक्ति उसके हृदय की वाणी है। वास्तविकता का यथार्थ चित्रण है। उसकी अष्टपदी कविताओं में वक्रोक्ति, स्वीकारोक्ति और घोर सन्देह की भावना की एक सहज अभिव्यक्ति है। अपने अनुभवों की व्यंजना के लिए उसने न केवल छन्दों के नये रूपों का आविष्कार किया, बल्कि प्रचलित बैलाड (नृत्य-गीत) आदि का भी ऐसा उपयोग किया कि उनमें एक नया ही रूप दिखाई देता है। उसका सर्वोत्तम काव्य-ग्रन्थ है "ग्रैण्ड टेस्टामेंट" और सर्वोत्तम कविता 'बैलाड द नॉत्र दाम', जिसमें अपनी अपढ़ माता के सरल विश्वास उसने व्यक्त किया है। इस कविता की मानवता और कोमलता उसके अपराधी जीवन की स्मृति को बिलकुल पोंछ डालती है। इस प्रतिभाशाली कवि ने तस्करों की बोली में भी कविता लिखी है, लेकिन 'दाम दी तांप ज़ादी' में आधुनिक कवि-मानस का एक विस्मयजनक पूर्वाभास भी मिलता है। उसकी प्रतिभा ने, विषय-वस्तु के प्रतिपादन और इंगितों के सहारे भावों के प्रसार, इन दो तारों पर जटिल शब्द-विन्यास के झंकार के लिए भविष्य का द्वार उन्मुक्त कर दिया।

चौथा अध्याय

श्लेषात्मक और लाक्षणिक कविता

मध्यवर्ती फ्रेंच साहित्य के उस भाग की समृद्धि सब से अधिक हुई जिसमें व्यंग्योक्ति, नीतिकथा और लाक्षणिक शैली तीनों का एकत्र समावेश हुआ। और प्रायः एक ही रचना में तीनों का संयोग हुआ भी है। कुछ फ्रेंच समालोचक तथा विदेशी समीक्षकों के अनुसार फ्रेंच मानसिक प्रवृत्ति से इन तीनों शैलियों का एक स्वाभाविक सम्बन्ध है। तार्किक विचारशक्ति, वस्तुओं एवं गुणों के निरूपण तथा पृथक्करण की क्षमता, आवेग-पूर्ण कल्पना की अपेक्षा बौद्धिक कल्पना को श्रेष्ठता प्रदान, आदि प्रवृत्तियों ने ही इन तीनों फ्रेंच शैलियों को बलशाली बनाया। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह क्षमता अकेले फ्रांस में ही नहीं है। भारतीय काव्य में भी श्लेषोक्ति को एक गौरव का स्थान दिया गया है। यहाँ तक कहा गया है कि वह कविता कविता ही नहीं है जिसमें श्लेष या वक्रोक्ति न हो। नीतिकथा का प्रचलन ग्रीस से लेकर पश्चिमी यूरोप तक था और प्राच्य में तो इसका आदर था ही। फिर भी मध्ययुग में फ्रांस के मानसिक अधैर्य और जीवटदार कल्पना-शक्ति ने इन शैलियों को निश्चय ही एक विशेषता से मण्डित किया।

प्रारम्भिक फ्रेंच साहित्य के इन अंगों की अभिव्यक्ति के दो सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं—'रोमां द रनार' तथा 'रोमां द ला रोज़'। पहली कई लेखकों की मिली-जुली रचना है, जिनमें से दो एक के ही नाम ज्ञात हैं। दूसरी रचना दो लेखकों ने की है जिनके दृष्टिकोणों में बड़ा अन्तर है। 'रोमां द रनार' का साहित्यिक पूर्वज ईसप की कहानियाँ हैं जिनके नमूने पर मारी द फ्रांस ने 'इसोपे' की रचना की। परन्तु जहाँ इन कहानियों में कई

विभिन्न पशुओं को नायक बनाया गया है वहाँ बाद की रचनाओं में केन्द्रीय नायक एक ही है। दसवीं शती की एक लम्बी लैटिन कविता में यह नायक भेड़िया है यद्यपि अन्त में सियार उसे पराजित कर देता है। बारहवीं सदी के अन्तिम भाग में पियेर द सैं क्लू की फ्रेंच रचना का मुख्य नायक सियार है। कोई बीस लम्बी कविताओं में कुटिल और चतुर सियार 'रनार' मूर्ख भेड़िया 'इसेनग्रें' और उसकी पत्नी 'दाम हरसां' से युद्धरत है। परन्तु बीच-बीच में उससे कमज़ोर प्राणी बिल्ली 'तिबेर', मुर्ग 'चान्तेक्लेर' और कौआ 'तियेरसेलैं' अपनी चतुराई से उसे भी नीचा दिखाते हैं। इस नायक-चरित्र की लोकप्रियता के कारण फ्रेंच भाषा में सियार का नाम 'गूपिल' से बदलकर 'रनार' पड़ गया है। इस चरित्रचित्रण के पीछे दो भावनाएँ काम करती हैं; विशुद्ध कौतुक-प्रियता और क्षमतारूढ़ों के विरुद्ध चतुराई से स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा। दोनों भावनाओं का काल एक नहीं है। पहले काल में पशुचरित्र मुख्यतः हास्यरसोत्पादक हैं और श्लेष का सम्बन्ध केवल मानव-चरित्र से है जिस पर पशु-वेश का एक हलका-सा आवरण मात्र है। परन्तु आगे चलकर श्लेष ही मुख्य हो जाता है, बल्कि कटु भी और प्रत्येक घटना की लाक्षणिक मर्यादा पर अत्यधिक बल दिया जाता है। पशुओं की काल्पनिक कहानियाँ मानव-समाज पर भीषण कटाक्ष बन जाती हैं। 'रनार' की बाद की कहानियों में—'रनार का सिंहासनारोहण' और 'नवीन रनार' में—यह पहलू बहुत स्पष्ट हो जाता है। रनार कहानियों के पहले क्रम में छोटे जानवरों की सियार पर विजय की सामाजिक व्याख्या यह की जा सकती है कि किसान और छोटा नागरिक, जो काम बल से नहीं कर सकता, वह छल-कपट से करता है। लेकिन गिरजा और पादरी के विरुद्ध श्लेषोक्ति स्पष्ट रूप से प्रकट है। बाद का 'रनार' कौशल से सिंह 'नोब्ल्' के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है, अपने विश्वासी समर्थकों को उखाड़ फेंकता है, धनियों को पुरस्कृत करता है, दरिद्रों का दमन करता है और जहाँ कहीं भी वह जाता है, विशेष कर रोम में, उसका शानदार स्वागत होता है। इसका व्यंग्य-पूर्ण नैतिक निष्कर्ष यह है कि अर्थ ही इस दुनिया का राजा है और सम्भवतः दूसरी दुनिया

का भी। 'नवीन रनार' (रचयिता, जार्केमार गेली, रचनाकाल १३०० ई०) में पशु प्रायः मनुष्य ही बन गये हैं। नोब्ल् (सिंह) के दरबार में टूर्नामेंट होता है, प्रेम के दावँपेंच भी चलते हैं। साथ ही पशुचरित्रों के पास ही पास लाक्षणिक चरित्र भी बैठाये गये हैं। चौदहवीं शती के 'रनार ल काफे' में शृगाल के स्वरूप का ही अन्त हो जाता है। वह एक ओर खूनी बदमाश है और दूसरी ओर अपने दुष्कृत्यों पर ही नैतिक उपदेश देनेवाला है। रचनाकार के ज्ञान-गौरव के प्रदर्शन और नैतिक निष्कर्ष के आग्रह में मूल सियार ही खो जाता है।

'रोमां दला रोज़' एक लाक्षणिक काव्य है। इसका पहला अंश जो ज़िलोम द लोरी की रचना है, प्रेम की दरबारी धारणा का सर्वाधिक सुस्पष्ट और सम्पूर्ण वर्णन है। केवल व्यक्ति के स्थान पर प्रतीक या लक्षणों का प्रयोग किया गया है, इससे यह लाक्षणिक काव्य बन गया है। कवि का कहना है कि यह कहानी एक स्वप्न है जिसे उन्होंने बीस वर्ष की अवस्था में देखा था। उन्होंने अपने को एक उद्यान में पाया जहाँ आलस्य, आमोद, कोमल दृष्टि, दुष्ट जिह्वा और तर्क-बुद्धि जैसे व्यक्ति थे। उद्यान में प्रहरी-वेष्टित गुलाब को कवि स्वयं प्रेमिक के रूप में तोड़ना चाहता है और जो व्यक्ति उद्यान में हैं उनमें से कुछ उसके इस प्रयत्न में सहायता प्रदान करते हैं और कुछ उसमें बाधा पहुँचाते हैं। गुलाब है प्रेमिका; निष्क्रिय, सुसम्पूर्ण, पहुँच के प्रायः बाहर। अनेक खाई-खन्दक पार करके ही उस तक पहुँचा जा सकता है। कवि की कल्पना के अनसार कुछ लक्षण या चिह्न वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करते हैं और कवि यह वर्णन करता है कि सच्चा प्रेम किन स्तरों से होकर अग्रसर हो कि प्रेमिक गुलाब को तोड़ सके अर्थात् अपनी प्रियतमा के हृदय पर विजय प्राप्त कर सके। शब्द-माला जैसे किसी कथात्मक चित्र की निपुण रेखाएँ खींच देती हैं। दे दुई (हर्ष) के उद्यान के बाहरी प्राचीर पर लगी हुई मूर्तियाँ, प्रेम-विहीन जीवन के विभिन्न भयंकर पहलुओं की द्योतक हैं। प्रेम-देवता को केन्द्रित कर उद्यान की हरी घास पर नृत्य का जो चित्र खींचा गया है उससे मानो वसन्त की सुरभि

आती है। प्रेमी की साधना अभी चल रही है और इसी बीच एक गढ़ जादू के बल पर प्रेमास्पद को वन्दी कर खड़ा हो जाता है। उसके एक तोरण पर एक विकराल दैत्य, खतरा, पहरा दे रहा है। कहानी की यहीं आकस्मिक समाप्ति हो जाती है। इस कहानी को समाप्त करते हैं 'जहाँ द मेओंग', प्रायः पचास वर्ष बाद। कहानी के विस्तार में, और यह विस्तार भी कम नहीं है क्योंकि लोरी की चार हजार पंक्तियों में जहाँ ने १८ हज़ार पंक्तियाँ जोड़ दी हैं, उसका मूल भाव ही प्रायः बदल जाता है। कहानी की समाप्ति यों होती है—जिस किले में दरबारी पुत्र 'वैल आकुईल' और गुलाब दोनों बन्दी हैं, उस पर घेरा डाला जाता है। कुछ उतार-चढ़ाव के बाद प्रेम-देवी 'वीनस' स्वयं उस किले पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजती है। अन्त में प्रेमिक की विजय होती है। परन्तु प्रेम यहाँ उत्साहपूर्ण बुद्धि का मादक ज्वर नहीं है, बल्कि एक प्राकृतिक नियम है जिसका पालन भ्रमपूर्ण भावावेग के बिना ही करना पड़ता है। पुनः पुनः दलील, वादानुवाद और लम्बे भाषणों के कारण कहानी का क्रम टूट जाता है और रचना की कलात्मक एकता नष्ट हो जाती है। तथापि 'जहाँ' का व्यक्तित्व बलिष्ठ, साहसी और सर्जनात्मक है और विचारशील व्यक्ति के रूप में उनका एक आकर्षण भी है। दुनिया और गिरजा को कलंकित करनेवाली बुराइयों और अन्यायों के विरुद्ध उनके विचार सजीव हो उठते हैं। "मँगता, गिरजा-भाई, जिनका प्रतिनिधि है ढोंगी 'फो सांयलां', संक्रामक रोग की भाँति हैं, टिड्डी दल की भाँति वे सर्वग्रासी हैं। रूढ़ि-जनित भय का त्याग कर समाज का सुधार होना चाहिए। सरकारें मनुष्यकृत हैं, एक विशेष प्रकार के सामाजिक सौदे से उत्पन्न विवाह करना बुद्धिमानी का काम है, लेकिन वैवाहिक अवस्था अनिश्चित है, आकस्मिक दुर्घटनाओं से परिपूर्ण। सर्वोत्तम परिस्थिति में भी नारी एक आवश्यक बुराई मात्र है।" सामन्ती दरबार के उत्सर्गीकृत प्रेम के लोरी के आदर्श का यह पाताल-अवरोहण ! कवि ने नैतिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों की जिस विशालता का प्रदर्शन किया है उसकी तुलना फ्रांस में सोलहवीं शती से पहले नहीं मिलती। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उसकी

आवाज, मनुष्य की आध्यात्मिक समानता में उसका विश्वास और महान् हृदय के अतिरिक्त और कहीं महानता की खोज से उसका इन्कार, हमारे सामने उसे आधुनिक लोकतान्त्रिक अन्तःशक्ति के अगुआ के रूप में उपस्थित करते हैं।

मध्ययुगीन फ्रेंच पद्य-साहित्य की एक और शाखा है 'फावलों।' मोटे रूप से इसे श्लेषात्मक साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, यद्यपि कुछ का रूप अन्य कहानी-कविताओं जैसा ही है और अधिकांश का उद्देश्य हास्यरस का उद्रेक करना है। पहले प्रकार का है गोतिए का 'मेरी के चमत्कार' जिसमें 'नॉत्र दाम के जादूगर' की प्रेरणा बाइबिल के रूपकों से ली गयी है। दूसरे प्रकार का एक अच्छा उदाहरण 'दुष्टशिरोमणि की स्वर्ग विजय' है। 'विभाजित गृह' में नीति-मूलक उद्देश्य भी है। 'अरस्तू पर कविता' का उद्देश्य बहुत भिन्न है। ऊँचे सिद्धान्तों के बखान के परिणामों पर इसमें कुछ प्रकाश डाला गया है। 'फावलों' का आधार यथार्थवादी है। औरतें पतियों को धोखा देती हैं और पकड़े जाने के बजाय लम्बी तीर्थ-यात्रा के लिए घर छोड़ने को उन्हें राजी करा लेती हैं। एक ओर पति प्रतारित होना नहीं चाहता। वह उस आलमारी को, जिसमें उसकी पत्नी का प्रेमी एक पादरी छिपा हुआ है, बेचने के लिए नीलाम का प्रबन्ध करता है। एक चरवाहा अपने कुत्ते को नाम लेकर पुकारता है और चोर भेड़खाने से उत्तर देता है 'मैं यहाँ हूँ।' उसका नाम भी वही रहा होगा जो कुत्ते का नाम था। फिर पादरी बुलाकर उसका भूत उतारा जाता है। नीति निष्कर्ष भी कहीं-कहीं स्थूल रूप से व्यावहारिक है, "बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करो नहीं तो बूढ़े होने पर तुम्हें भी वे भूखा मार डालेंगे।" हो सकता है कि नारी और पादरी पर जो कटाक्ष किया गया है वह उस सामाजिक दबाव की एक प्रतिक्रिया थी जो उनके प्रति जनसाधारण की स्वाभाविक श्रद्धा को बलपूर्वक एक अभ्यास में परिणत करना चाहता था।

पाँचवाँ अध्याय

गद्य-साहित्य

चौदहवीं शती तक फ्रेंच गद्य-साहित्य पद्य-साहित्य पिछड़ा हुआ था। इसका पहला प्रकाश इतिहास-रचना में ही हुआ। पहले इतिहास लैटिन में ही लिखे गये और जो फ्रेंच में लिखे गये वे कविता में, जिसका एक उदाहरण, १९ हजार पंक्तियों की आंग्ल-नॉर्मन कविता, 'इस्तोआर द जिलोम ल मारेशाल' है। यह पेमब्रोक के अर्ल विलियम मार्शल की जीवनी है। वास्तविक अर्थ में इतिहास की रचना और बाद को हुई। बारहवीं शती के जेहादों से ही यह प्रेरणा मिली और कल्पना-शक्ति को उत्तेजित करनेवाली घटनाओं को लिपिबद्ध करने की इच्छा प्रबल हुई। मध्ययुग के चार अच्छे लेखकों ने इस क्षेत्र में अपनी रचनाशक्ति को नियोजित किया।

वियेहारदुआं और जोआंविए ऐसे लेखक हैं जिन्होंने स्वयं युद्ध में भाग लिया था। जिओफ्रे द वियेहारदुआं (११५५-१२१२) ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में 'कुसतुनतुनिया विजय' लिखा। चौथे जेहाद (१२०२-४) में अपनी तथा अपने साथियों की कार्यावली के औचित्य को प्रमाणित करना भी इस रचना का एक उद्देश्य था। जेहाद यरूशलम पर से मुसलिम आधिपत्य का अन्त करने के लिए किया गया था, परन्तु इसके बजाय जेहादियों ने ईसाई पुरी बाइजेन्टियम पर विजय प्राप्त कर उस नगरी को त्रस्त, विपर्यस्त कर दिया। वियेहारदुआं ने जेहादियों के मार्ग-परिवर्तन के कारणों की व्याख्या की है, परन्तु कार्य-कारण सम्बन्ध पर प्रकाश डालने की अपेक्षा, घटनाओं के वर्णन में ही उन्होंने अपनी रचनाशक्ति का परिचय दिया है। उनकी ईमानदारी का एक सहज आकर्षण है। यदि

फ्रेंच सैनिक यरूशलम के रास्ते पर ही रुक गये तो वह भगवदिच्छा थी और जिन्होंने कुकर्म किया उन्हें उसका दण्ड मिला, यह उनका विचार है। यदि वर्णन संक्षिप्त है तो उनके दृष्टिकोण में एक व्यापकता है। घटनाएँ विक्षिप्त हैं, समग्र की अनुभूति का भी अभाव है, लेकिन दृश्य जहाँ महान् है वहाँ कल्पना की उड़ान भी ऊँची है। अनगिनत मीनारों और गुम्बजों सहित कुसतुनतुनिया का दृश्य उपस्थित होता है जिसे देखकर साहसी वीर भी अचम्भे में पड़ जाता है और थर्रा उठता है। मध्ययुगीन फ्रेंच भाषा में लिखे गये इस इतिहास का गद्य कुछ भद्दा है, लेकिन एक के बाद एक चित्र उपस्थित किये जाने के कारण पाठक के लिए इसका आकर्षण बना रहता है।

इससे कहीं अधिक जीवन का स्पन्दन और ब्यौरों का प्राचुर्य है जोआंविये (१२२५-१३१७) के 'इस्तोआर द सें लुई' में। यह है लुई नवम का इतिहास और ज़ोआंविये की वीर-पूजा। वह वीर भी पूजा के योग्य है, महत्ता का मूर्त्त रूप; राजा लुई के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अस्तित्व ने सारी पुस्तक में एक आध्यात्मिक वातावरण प्रसारित कर दिया है। लुई की ईसाई-जनोचित विनम्रता और युवक-सुलभ सजीवता स्वयं इतिहासकार के स्वाभाविक तथा सत्याश्रयी दृष्टिकोण में प्रतिबिम्बित हुई है। यह वीर लुई के मानव-हृदय का उद्गार है, जब जेहाद की यात्रा पर निकलते समय वह कहता है—"मैं इस सुन्दर महल को छोड़कर जा रहा हूँ और अपने दो बच्चों को।" जोआंविये एक रोचक कथाकार है, परन्तु त्रुटि-रहित नहीं। वियेहारदुआं की भाँति वे भी एक बड़े विषय को पूरी तरह पकड़ नहीं पाते और विच्छिन्न घटनाओं के बीच संयोगसूत्र स्थापित नहीं कर पाते। लेकिन उनके वाक्यों में स्पष्टता है और उनकी शैली भी अच्छी है। जिस समय उनका जीवन खतरे में था उस समय की घटनाओं का जो शान्त और सुसंयत विवरण उन्होंने दिया है उससे उनके साहस और कर्त्तव्य-शीलता का परिचय प्राप्त होता है। वे राजा लुई के बहुत निकट थे और एक बार एक महत्त्वपूर्ण बैठक में, सामन्तों के रोष का सामना करते हुए उन्होंने राजा को मिस्र में अपना

अवस्थान कायम रखने का परामर्श दिया। उनकी यथार्थवादिता में अप्रिय सत्य की झाँकी भी मिल जाती है, जैसे इस वर्णन में कि लड़ाई में जो लोग बच गये वे उसी नदी पर पानी पी रहे थे जिसमें फ्रेंच दरबारियों की लाशें बहती जा रही थीं।

जां फ्रोआसार (१३४७––१४०४)––का वातावरण बहुत भिन्न है और उनके वर्णन का लहजा भी। वालासिएन में एक मध्यवित्त परिवार में उनका जन्म हुआ और दीक्षा ग्रहण करने के बाद वे इंग्लैंड चले गये जहाँ तृतीय एडवर्ड की पत्नी रानी फिलिपा की संरक्षकता उन्हें प्राप्त हुई। स्कॉटलैंड, फ्रांस और इटली में उन्होंने भ्रमण किया और लौटने पर इंग्लैंड में ही उनकी मृत्यु हुई। १३२५ से १४०० ई० तक की घटनाओं को 'क्रोनीक' (इतिहास) के चार खण्डों में उन्होंने लिपिबद्ध किया है। जेहादों का जमाना बीत चुका था। शतवर्षीय युद्ध चल रहा था। वियेहारदुआं या जोआंविए की तरह वे युद्ध में भाग लेने वालों में से नहीं थे, बल्कि एक रिपोर्टर की भाँति ही उन्होंने अपने समय के इतिहास का संकलन किया है। यह संकलन भी एक गवेषक की तरह उन्होंने किया है। उदाहरण के तौर पर, चश्मदीद गवाहों के बयानों के आधार पर ही उन्होंने क्रेसी के युद्ध का विवरण लिखा। उनकी वर्णनकला वास्तव में बहुत सुन्दर है, लेकिन उनकी विचारशैली मध्य-युगीन है। वे क्षमता के प्रेमी और प्रशंसक हैं और वही उनका मुख्य विषय भी है। उनका कोई नैतिक उद्देश्य नहीं है; उनका साहित्यिक उद्देश्य पाठक को खुश करना है। उनके मन में यह प्रश्न कभी नहीं उठा कि फ्रांस या इंग्लैंड के किसानों ने अमानुषिक रोष में आकर बलवा क्यों किया, लेकिन पशुतुल्य 'कोंत द फोआ' के कसरती शरीर और सूक्ष्म दिमाग ने उन्हें मुग्ध कर दिया। प्रभावशाली कार्य या विषादपूर्ण घटनाओं के वर्णन में ही उन्हें वास्तविक प्रसन्नता होती है।

कोमिन (फिलिप द ला क्लाइट, सीर द कोमिन १४४५-१५०९) एक सम्पूर्ण भिन्न प्रकार के ही इतिहासकार हैं। अपने स्मृतिग्रन्थ में उन्होंने कूटनीति-विशारद राजा ग्यारहवें लुई के चरित्र और नीति-कौशल का

चित्रण किया है। उनके आलेख्य में समसामयिक मैकियावेली का एक क्षीण आभास मिलता है। फ़्रोआसार की तरह कथाशिल्पी वे नहीं हैं, लेकिन कार्य-कारण सम्बन्ध में इतिहासकार की जो दिलचस्पी होनी चाहिए वह उनमें है। शत्रुओं की कतार भेदकर, लिएज निवासियों का घेरा तोड़ने का अनन्योपाय प्रयत्न किस प्रकार तनिक सी बात के कारण असफल रहा, इसका विवरण कोमिन ने जिस प्रकार किया है उसमें भाग्य की विडम्बना के बोध के साथ यह बोध भी है कि किस प्रकार आकस्मिक कारणों से घटनाओं का निर्दिष्ट प्रवाह बिलकुल बदल सकता है। किसी ऐतिहासिक प्रणाली का उद्भावन तो कोमिन ने नहीं किया है, परन्तु घटनाओं के ताने-बाने के बीच राजनीतिक सिद्धान्तों के अन्वेषण का प्रयत्न उन्होंने अवश्य किया है। दुनियादारी का उन्हें पूरा अनुभव है, लेकिन उनके हृदय में अनुकम्पा की भावना भी प्रबल है। इसी से दलितों के साथ अन्याय के प्रति और राजाओं के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व की ओर उन्होंने सब का ध्यान आकर्षित किया है और क्रूर स्वार्थपरता से दूर रहने का भी परामर्श बड़ों को दिया है।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में इतिहास के अलावा कुछ अन्य साहित्य भी गद्य में लिखे गये जिनमें से दो एक में उच्च श्रेणी के जीवन की एक झाँकी मिलती है। उपन्यास का प्रारम्भ अभी नहीं हुआ था, लेकिन कुछ कहानियों का अनुवाद किया गया। मौलिक कहानी 'ल शवालिएर देलीबेरे' (ओलिविए द ला मार्श कृत) का नायक बरगन्डी के चार्ल्स द बोल्ड की एक सजीव छाया मात्र है और वास्तव में यह प्रचार-साहित्य की श्रेणी के अन्तर्गत ही है। उस काल के कहानी-लेखकों में आन्तोआं द ला साल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उस महिला की पुस्तक 'ल पति जहां द सेंत्रे' में, एक उच्च घराने की महिला की सनक के माध्यम से, मध्ययुगीन दरबारी परम्परा में वास्तववाद का प्रवेश होता है और इस प्रकार एक युग-परम्परा के अन्त की सूचना दी जाती है।

छठा अध्याय

नाट्य-साहित्य

अन्यान्य प्राचीन तथा आधुनिक देशों की तरह फ्रांस में भी नाट्य कला का सूत्रपात धर्म-साहित्य तथा धार्मिक घटनाओं का ही अवलम्बन लेकर हुआ। ईसाई धर्मानुष्ठानों में अनुभूति तथा कल्पना के उद्रेक के लिए सामग्री भी प्रचुर है। ईसा की जन्मकथा तथा मानवजाति के लिए उन्होंने जिन कष्टों और यातनाओं का वरण किया, इन दोनों को लेकर नाट्य साहित्य की रचना करना कोई कठिन काम भी नहीं था। यदि इसकी सम्भावनाएँ पूरी नहीं हो सकीं तो इसका मुख्य कारण यह है कि मध्ययुगीन फ्रांस में इसके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं। कुछ अद्भुत घटनाओं का समावेश, घटनाक्रम के विकास की अनिश्चयता-जनित एक उत्सुकता, नाट्यान्तर्गत चरित्रों अथवा नायकों के बीच संघर्ष और उन चरित्रों का उनकी पारिपार्श्विक परिस्थितियों से ही संघर्ष--ये नाटक की हमारी आधुनिक धारणा के अनिवार्य अंग स्वरूप हैं। परन्तु मध्ययुगीन यूरोप में अभी वह सांस्कृतिक या साहित्यिक उन्नति नहीं हो पायी थी जिससे नाट्य साहित्य को विशेष सफलता प्राप्त हो सकती। तथापि जिन दो सार्वजनिक प्रवृत्तियों पर किसी प्रकार का भी नाटक निर्भर है उनका अस्तित्व तो उस समय भी था। इनमें से एक है मनोहर दृश्यों की चाह और दूसरी है कहानियों को एक सक्रिय रूप देने की प्रवृत्ति जो अविकसित आदिम मानस में अधिक प्रबल होती है। यदि इसके साथ यह भी जोड़ दिया जाय कि पश्चिमी देशों को गिरजों में सामाजिक सम्मेलन का एक केन्द्र प्राप्त था और भवन भी, जहाँ नाटक खेले जा सकते थे, तो यह सहज ही

समझा जा सकता है कि नाटकों के लिए उनके साधन नितान्त सीमित नहीं थे।

पहले गिरजों में ही, ईसा के जन्म तथा यातनाओं को दृश्य रूप में उपस्थित करने की एक प्रथा चल पड़ी। तब पादरी ही अभिनय करते थे और लैटिन भाषा का प्रयोग किया जाता था। बाद को अन्यों के लिए भी अभिनय का दरवाजा खोल दिया गया और लैटिन की जगह फ्रेंच का प्रयोग किया जाने लगा। देखनेवालों की भीड़ बढ़ी तो गिरजा-घर के बाहर, परन्तु उसी से संयुक्त किसी स्थान में अभिनय किया जाने लगा। जब दर्शकों का आग्रह और भी अधिक हुआ तो सामयिक भवनों का निर्माण कर खेल दिखाये जाने लगे। रंगमंच की आधुनिक व्यवस्थाएँ तब नहीं थीं और दृश्य-परिवर्तन के लिए अभिनेता एक भवन से दूसरे भवन को चले जाते। उदाहरण के लिए भवनों का एक छोर स्वर्ग था तो दूसरा नरक। इस प्रकार प्रत्येक अभिनय के लिए काफ़ी तैयारियाँ करनी पड़ती थीं।

नाटक दो प्रकार के थे। एक का सम्बन्ध स्वयं ईसा के जीवनचरित्र से था और दूसरे का साधु-सन्तों के जीवन से। पहले का नाम है 'मीस्तेर', दूसरे का 'मिराक्ल्'। एक बहुत पुराना 'मीस्तेर' है 'आदम की कहानी' जिसमें कला का विशेष प्रदर्शन तो नहीं है, परन्तु हौवा और उसके प्रलुब्धकारी के बीच जो कथोपकथन होता है उसमें नायक-नायिका के चित्र का एक आभास मिलता है। साथ ही भक्त दर्शकों को प्रभावित करने के लिए हौवा के पतन को भयावह रूप दिया गया है। सन्त निकोलस के 'मिराक्ल्' का नाट्य रूप अधिक उन्नत है। हास्य और गम्भीर रसों के समन्वय से वास्तविक जीवन का एक चित्र प्रस्फुटित हो उठता है। चरित्रों की बहुलता और चलित भाषा की रसिकता से प्रत्येक दृश्य सजीव हो उठता है। नीति-उपदेश का अभाव नहीं है, परन्तु सम्पूर्ण नाटक से आनन्द की हिलोरें उठती रहती हैं। दुनिया की हर सम्पत्ति के अभिभावक सन्त निकोलस की सर्वत्र विजय होती है।

'मीस्तेर' और 'मिराक्ल्' के अलावा विशुद्ध हास्यरसात्मक नाटकों

की रचना भी होने लगी थी। एदम ल बॉसी की दो रचनाओं, 'जो दला', 'फोईए' और 'रोबैं ए मारिओं' में मौलिकता, स्वतन्त्रता और यथार्थवादिता है तथा इस प्रकार भविष्य की सम्भावनाएँ भी उनमें निहित हैं। 'रोबैं ए मारिओं' की ग्रामीण पृष्ठभूमि में एक ताजगी भी है। परन्तु कला और कवित्व का अभाव इन रचनाओं में भी उतना ही है जितना कि 'मीस्तेर' और 'मिराक्ल्' में।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में 'मिराक्ल्' की लोकप्रियता बनी रही परन्तु प्रसार 'मीस्तेर' का ही अधिक हुआ। शतवर्षीय युद्ध की पीड़ाओं के विस्मरण की इच्छा में ही अति प्राकृतिक विस्मयों के आकर्षण के कारण का अनुमान किया जा सकता है और इसी से 'मिराक्ल् द नॉत्र दाम' की लोकप्रियता की व्याख्या भी की जा सकती है। अशिक्षित अभिनेताओं के दलों ने 'मिस्तेर' के आकर्षण को बढ़ाया, परन्तु इसी प्रयत्न में इन्द्रिय-परितुष्टि की भावना को प्राधान्य मिला और भड़ैती भी अभिनय का अंग बन गयी। आर्नूल ग्रेवां के 'मिस्तेर द ला पासिओं' में इस श्रेणी के नाटक का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। ३४ हजार लाइनों की इस रचना को १४५० ई० में जब पेरिस में खेला गया, तो प्रदर्शन पूरा करने में चार दिन लगे। खेल इतना सरल रहा कि बाद के लेखकों ने इसके कलेवर को और भी परिवर्धित किया। जांमिकेल के परिवर्धित नाटक में हास्य रस को और अधिक बल मिला है, लेकिन कहीं-कहीं करुण रस के उद्रेक से अभिव्यक्ति अत्यन्त शक्तिशालिनी है। माता मेरी ईसा से कहती है,—"तुम जो काँटों का ताज पहनने जा रहे हो, मेरा मातृत्व उसे स्वीकृति नहीं दे सकता", लेकिन एक कोमल गाम्भीर्य के साथ ईसा अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहता है।

तेरहवीं शती के अन्तिम भाग में एडम ल बॉसी (या एडम द ला हाल) ने दो हास्यरसात्मक नाटकों की रचना की, परन्तु उसके बाद सम्पूर्ण चौदहवीं शती में नाटक का यह अंग बिलकुल अदृश्य-सा हो गया। हाँ, उस शताब्दी के अन्तिम भाग में हास्यरसात्मक नाटक खेलनेवालों की कुछ समितियाँ बनीं,

जैसे 'मीस्तेर' के अभिनेताओं के कुछ संघ बन गये थे। समितियाँ भिन्न-भिन्न थीं, परन्तु अभिनेताओं का एक साधारण नाम पड़ गया था 'सॉत्' (मूर्ख)। ये 'सॉत्' फ्रांस में सर्वत्र पाये जाते थे। गधे के कान वाली रोएंदार टोपी और हरे-पीले रंग की पोशाक उनकी साज-सज्जा की एक विशेषता थी। हर कम्पनी में एक मूर्खराज और मूर्ख-माता हुआ करती थी। धर्मभाव की अवज्ञा करनेवाले युवकों में से ही इन दलों में भरती की जाती थी। पेरिस में दो प्रसिद्ध कम्पनियाँ थीं 'आंफां सां सूसी' (चिन्तारहित बालक) और 'वासोशियां' (वकालत पेशा वाले)। उनके खेलों में अनुशासनहीन विद्यार्थियों की उच्छृंखलता की भावना समायी हुई थी। इन खेलों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है यद्यपि व्यावहारिक क्षेत्र में यह विभाजन बहुत स्पष्ट नहीं था। 'सोती' मानवजाति की साधारण मूर्खताओं के प्रति एक व्यंग्य थी। कभी-कभी व्यक्तिविशेष भी इस व्यंग्य का लक्ष्य होता था, जैसा कि ग्रिगोर के 'सोती दी प्रैंस दी सॉत' में पोप के विरुद्ध एक व्यंग्य था। 'मोरालिते' में नीतिमूलक उद्देश्य की प्रधानता थी जिसके लिए लाक्षणिक चरित्रों का प्रयोग किया जाता था। नीति-उपदेश में धार्मिक उपदेश भी हुआ करता था, परन्तु अधिकतया पिता-माता की आज्ञाओं की अवहेलना अथवा लोभ-लालच जैसे साधारण दोषों के विरुद्ध ही चेतावनी दी जाती थी। 'प्रहसन' इन दोनों से सम्पूर्ण भिन्न प्रकार का था, व्यंग्य इसका उद्देश्य नहीं था। समसामयिक चरित्रों को कुछ विचित्र परिस्थितियों में डालना ही इसका अभिनय-कौशल था। 'फाबलो' की परम्परा से इसका एक मेल है। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर सोलहवीं शती के मध्य तक यह खूब फला-फूला। जहाँ मध्ययुगीन नाट्य साहित्य की अन्य परम्पराएँ उसी युग में समाप्त हो गयीं वहाँ प्रहसन की परम्परा परवर्ती युग में भी बनी रही। प्रसिद्ध प्रहसन-रचयिता मोलिएर के नाटकों में अज्ञातनाम मध्ययुगीन प्रहसनकारों की रचनाओं की एक झलक मिल जाती है। सुप्रसिद्ध नाट्यकार रासीन के एक नाटक में 'ला फार्स द मेइत्र पाथेलैं' के स्वरों की प्रतिध्वनि मिलती है। 'पाथेलैं' में कुछ छोटे-छोटे दृश्यों में वकीलों की धूर्तता

और वणिकों की मूर्खता का परिहास किया गया है। थीबो लानिएले एक सरल चरवाहा है, लेकिन उसकी सिधाई भ्रमोत्पादक है और अन्त में वकील और वणिक दोनों को वह पछाड़ देता है। परन्तु मध्ययुग में, कुछ सामान्य सफलताओं को छोड़कर, नाट्यकला का कोई स्थायित्व नहीं था और इसकी समृद्धि के लिए एक भिन्न काल तथा बलिष्ठ लेखकों की अपेक्षा थी।

भाग २

(पुनर्जागरण १४९१-१५९०)
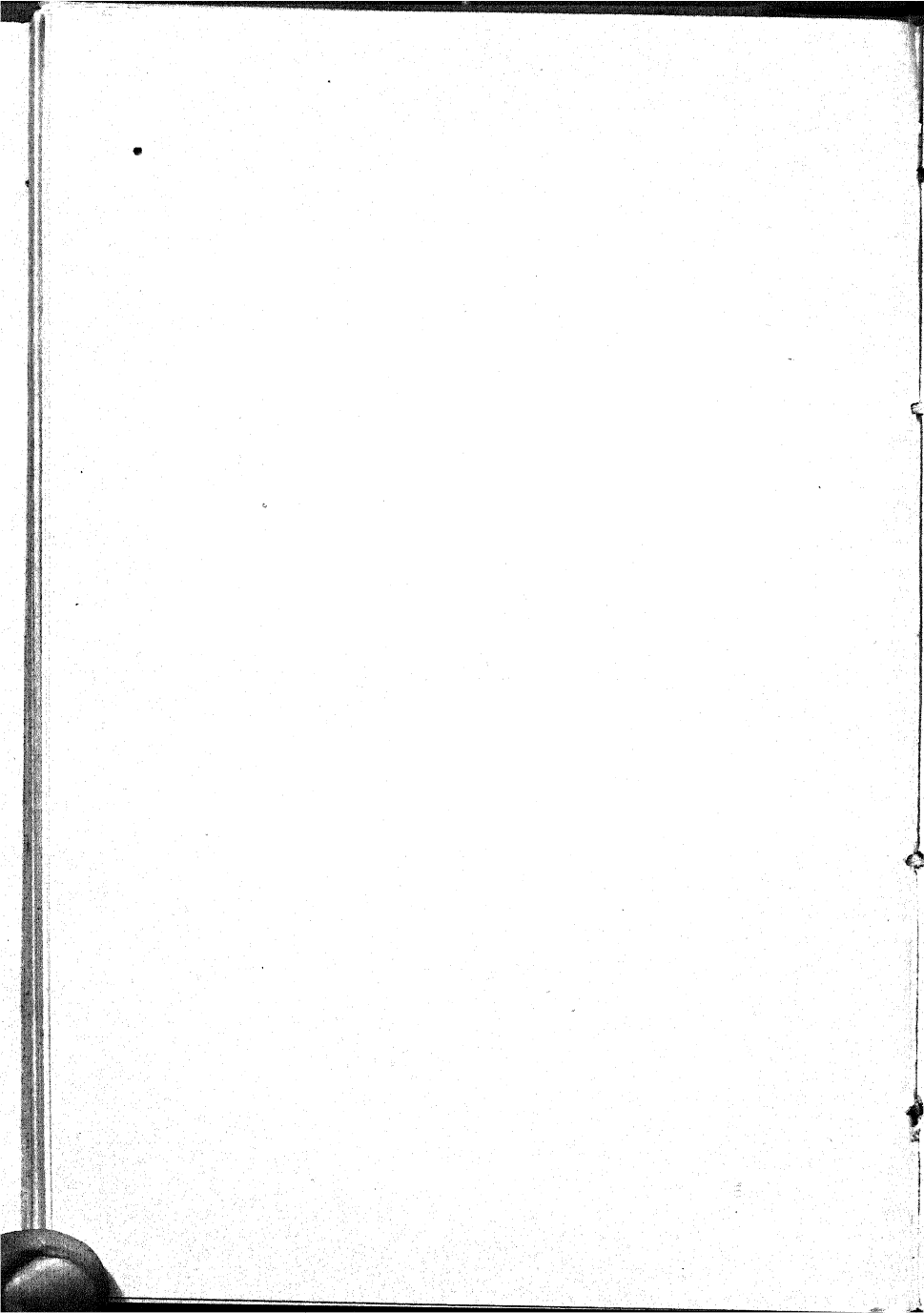
सातवाँ अध्याय

नव-प्रभात

सोलहवीं शती फ्रांस का 'नवप्रभात' युग है। पन्द्रहवीं शती में ही इसके अंकुर ऊगने लगे थे और परिवर्तन का प्रारम्भ चौदहवीं शती में ही हो गया था। चौदहवीं शती में सामाजिक परिवर्तनों के कारण फ्रांस की मध्ययुगीन व्यवस्था को धक्का पहुँचा। सामन्तशाही व्यवस्था को दोतरफा संघर्ष में प्रवृत्त होना पड़ा—एक ओर मध्यम वर्ग से, जिसका प्रभाव संख्या और सम्पत्ति की वृद्धि के साथ बढ़ रहा था और दूसरी ओर राजा से, जो सामन्तों को अपने अधीन कर अपने राज्य को राष्ट्रीय रूप देना चाहता था। उधर शतवर्षीय युद्ध ने फ्रांस की समृद्धि की नींव को हिला दिया था और सम्पूर्ण जनता की स्थिति दयनीय हो गयी थी। साथ ही १३५० ई० की महामारी में कई हजार लोग मृत्यु-मुख में पतित हुए। जन-मानस में एक अस्थायित्व की भावना फैलने लगी, भविष्य के सम्बन्ध में लोगों में चिन्ता होने लगी और कल्पना तथा अनुभूति किसी अनिश्चित भय से कुण्ठित हो उठीं। व्हिओं की कविताओं में हम मृत्यु-भय की छाया पाते हैं और मेओंग की समालोचना में आध्यात्मिक असन्तोष के बीज। आँतोआं द ला साल के 'पती जहां द सैंत्रे' में दरबारी आदर्श की कृत्रिमता के विरुद्ध विद्रोह की सूचना हमें मिलती है। 'ले कैंज जोए आ मारियाज' (विवाह के सौ आनन्द) तथा 'सैं नूवेल नूवेल' (सौ नवीन कहानियाँ) में भी, पतियों की विडम्बना और नारियों की दुर्बलताओं पर प्रकाश डाले जाने के साथ, मध्ययुगीन आदर्शों के लोप होने का संकेत हमें मिलता है। साथ ही कोमिन के 'संस्मरण' से नवयुग की किरणें निकलती दिखाई देती हैं। परन्तु इस

निराशाजनक स्थिति में फ्रांस की जीवनीशक्ति केवल कुछ दबी हुई-सी थी, उसका लोप नहीं हुआ था। परवर्ती युग के अनुकूल वातावरण में वह शक्ति अनेक दिशाओं में प्रस्फुटित हो उठी।

शतवर्षीय युद्ध के कारण फ्रांस की माली हालत गिर गयी थी, उसकी नैतिक अवनति हो रही थी। पन्द्रहवीं शती के अन्त में फ्रांस उस युद्ध के प्रभाव से मुक्त होने लगा था और उसकी समृद्धि बढ़ने लग गयी थी। यूरोप में सर्वत्र ही वातावरण में एक परिवर्तन हो रहा था। कोलम्बस आदि पर्यटकों की खोजों ने मानो पृथिवी की परिधि का विस्तार कर दिया और वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य के मानस की परिधि बढ़ा दी थी। परन्तु सबसे बड़ी बात यह थी कि सभ्यता के एक नये स्तर का ही विकास होने लगा था। स्वाभाविक नियमों के अनुसार ही सभ्यता के जीवन में ऐसे काल आते हैं जब कि बौद्धिक वृत्तियों का अभूतपूर्व प्रसार होता है। यह प्रसार गतिशील होता है। इसके बीज एक युग में बोये जाते हैं और किसी दूसरे युग में जमीन फलफूलों से भर जाती है। यह तभी सम्भव होता है जब कि सामाजिक प्रभाव इसके अनुकूल हो, कम से कम प्रतिकूल न हो। सोलहवीं शती में फ्रांस की आन्तरिक शक्ति का उभार हो रहा था। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण यूरोप का व्यक्तित्व ही उस पिंजड़े को तोड़कर बाहर निकल रहा था जिसके अन्दर ईसाई संघ ने उसे अपरिणत अवस्था में ही बन्द कर रखा था। ईसाई संघ के प्रति विरोध और प्राचीन काल के श्रेष्ठ आदर्शों के प्रति आकर्षण, विशेष कर इन्हीं दो रूपों में यूरोप तथा फ्रांस के नवप्रभात का उदय हुआ। उद्योग, वाणिज्य, प्रशासन, दर्शन, विज्ञान, कला, सभी क्षेत्रों में नव जागरण का स्पन्दन होने लगा।

साहित्य इस नव जागरण का एक कारण भी था और कार्य भी। फ्रांस में इस नव जागरण की लहर इटली से आयी। इटली के नव जागरण का यह युग "ह्यूमेनिज्म" (मानवता) का युग कहा जाता है। "ह्यूमेनिज्म" जीवन की एक नयी धारणा थी जो मध्ययुगीन धारणा की तुलना में अधिक स्वतन्त्र, अधिक व्यापक, अधिक युक्ति-संगत और अधिक आनन्ददायिनी

थी जिसमें मानवीय अनुभूतियों के प्रकाश, सौन्दर्यबोध और बुद्धि की क्रियाशीलता के लिए द्वार उन्मुक्त थे। प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य के प्रसार के साथ ह्यूमेनिज्म का भी प्रसार हुआ। पेट्रार्क ने चौदहवीं शती में रोमन साहित्य की पुनःप्रतिष्ठा की। उनके लिए रोमन साहित्य आत्मोन्नति का ही एक साधन था। ग्रीक भाषा भी वे सीखना चाहते थे, लेकिन ग्रीक साहित्य की पुनःप्रतिष्ठा का श्रेय उनके शिष्य बोकेशिओ को मिलनेवाला था। यह बोकेशिओ की ही प्रचेष्टाओं का फल था कि मेनुएल क्रिसोलोरस के माध्यम से इटली में ग्रीक भाषा और साहित्य का प्रचार होने लगा। पन्द्रहवीं शती में कई विख्यात यूनानियों ने इस काम को और भी आगे बढ़ाया। लैटिन का प्रचार और प्रसार भी उतनी ही तेजी के साथ हो रहा था। उसी समय मुद्रण-यन्त्र का भी प्रचलन होने लगा था। प्राचीन ग्रीक और रोमन साहित्य के प्रचार में मुद्रण-यन्त्रों से काफी सहायता मिली। यहाँ यह भी लक्ष्य करने की बात है कि नव जागरण के इस युग ने शिक्षा-प्रणाली को एक नयी दिशा प्रदान की। नये प्रकार के शिक्षकों में विटोरिनो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे मानटुआ के राजकुमार के शिक्षक नियुक्त किये गये थे, परन्तु वहाँ उन्होंने एक बिलकुल नये ढंग का स्कूल खोल दिया। उनका उद्देश्य शिक्षार्थियों की बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक, सारी शक्तियों को ही विकसित करना था, जिससे वे समाज के उपयोगी सदस्य बनने के साथ-साथ सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत जीवन में अपनी श्रेष्ठता का परिचय दे सकें।

इटली के इस नव जागरण ने इटली के बाहर भी बहुत दूर तक अपने प्रभाव का विस्तार किया। उत्तर में इसके वाहक के रूप में इरासमस ने काफी ख्याति लाभ की है। हालैंड के इस विद्वान् ने सारे यूरोप में इस नवीन शिक्षा का द्वार उन्मुक्त किया। पेरिस में भी वे १५०० से १५०५ ई० तक थे। उत्तर के लोग भी इटली गये और वहाँ से नयी प्रेरणा ले कर आये। फ्रांस के ईसाई धर्म-संशोधन के अग्रदूत जाके ल फेब्र देताप्ल ने इटली जाकर, एंजेलो मिराण्डोला आदि के चरणों के पास बैठकर शिक्षा

ग्रहण की थी। नयी शिक्षा ने स्वतन्त्र मत को प्रोत्साहित किया अतः प्रचलित धर्ममत से इसका संघर्ष होना अनिवार्य था। सामान्य प्रतिवाद के कारण ही ल फ़ेब्र को ईसाई संघ के रोष का सामना करना पड़ा और राजा फ्रांसोआ प्रथम की कृपा से उन्हें मुक्ति मिली। फ्रांस के अन्दर ग्रीक साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा दी जिलोम बोदे ने, जो इरासमस के ही समसामयिक थे। यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल था कि राजा फ्रांसोआ ने पादरी-अधिष्ठित पेरिस विश्वविद्यालय के मुकाबले फ्रैंच कालेज (कॉलेज द फ्रांस) की स्थापना की। नवप्रभात काल के फ्रैंच विद्वानों में ल फ़ेब्र देताप्ल के अतिरिक्त प्रसिद्ध मुद्रक तथा भाषा-विज्ञानवेत्ता एतिएन दोले, धर्मगुरु कैलविन के मुख्य शिष्य थियोडोर द बेज, मोतेंई तथा कुछ प्लीआद कवियों के स्कॉच गुरु जॉर्ज बुकानान और प्रख्यात कवि रॉनसार के गुरु दोरा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य में पुनर्जागरण था प्राचीन का पुनर्जन्म, कला की अनुभूति का जन्म इतिहास में यह राष्ट्रीयता के जन्म का द्योतक है और मानवजीवन में व्यक्तिवाद के जन्म का द्योतक, व्यक्तित्व के अधिकार और मर्यादा के प्रति एक गंभीर विश्वास। भूगोल में यह नयी दुनिया का आविष्कार है। ह्यूमेनिज्म, कला, व्यक्तिवाद,—पुनर्जागरण के ये लक्षण-स्वरूप हैं। प्रसिद्ध फ्रेंच इतिहासकार मिशले के शब्दों में, इस नये आन्दोलन का निचोड़ है दुनिया का आविष्कार और मनुष्य का आविष्कार। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सामन्तशाही, धार्मिक पोथी-विद्या और आत्मनिपीड़नकारी तपस्या का अन्त हुआ तथा हर वस्तु की स्वतन्त्र परख के अधिकार की स्थापना हुई। ग्यारहवें लुई के एक प्रिय दरबारी फिलिप पो ने पार्लमेंट के अपने आसन से कहा—"सब शक्ति जनता से आती है तथा जनता को ही सब शक्ति लौट जाती है और जनता से मेरा अर्थ सम्पूर्ण जनसमूह से है, राज्य के एक भी निवासी को मैं इससे अलग नहीं करता। जनता ने ही राजा को राजा बनाया है और राजा जनता की ओर से ही शासन करता है। राजा न रहे तो शक्ति राष्ट्र की हो जाती है।" इस उक्ति में नव जागरण के मिजाज

का आभास मिल जाता है। इरासमस की एक उक्ति में भी इसी प्रकार का आभास मिलता है। यह उक्ति सार्वजनिक रूप से नहीं बल्कि निजी तौर पर उन्होंने की थी जब कि फ्रेंच कालेज का अध्यक्ष-पद स्वीकार करने के लिए राजा फ्रांसोआ प्रथम ने उन्हें निमंत्रित किया था। कहा जाता है कि उन्होंने यह कहा था कि "कुछ बुद्धिमान् लोगों ने इस गरुड़ पक्षी को ही बादशाह का योग्य प्रतिनिधि ठहराया है। इसका न सौन्दर्य है न संगीत, लेकिन यह मांसाहारी है, शिकारी है, चोर है, लुटेरा है, सर्वनाशकारी है और एकाकी है। यह सभी का घृणित और सभी का अभिसम्पात स्वरूप है; इसमें हानि पहुँचाने की भी क्षमता प्रचुर है और क्षमता से अधिक इसकी लालसा है।" (एक शिकारी चिड़िया ही फ्रांस-नरेश का प्रतीक थी।)

आठवाँ अध्याय

कालवैं, रॉबले, मोंतेई

नयी शिक्षा का महत्त्व विद्वत्ता की दृष्टि से इतना अधिक नहीं था जितना इस दृष्टि से कि उसने जीवन की गम्भीर समस्याओं पर साधिकार प्रकाश डाला। सदा की भाँति उस समय भी मुख्य समस्या थी मनुष्य और उसके परिवेश के सम्बन्ध की समस्या। मध्ययुगीन तात्त्विकों ने इस प्रश्न का उत्तर अपने ढंग से दिया था। उनके अनुसार अधिकारों के विभिन्न स्तर थे और सर्वोच्च स्तर पर थे पोप और उनके विशप तथा राजा। जब ईसाई संघ की आंतरिक फूट के कारण पोप का अधिकार डाँवाडोल होने लगा और प्रशासन की सामन्तवादी धारणा की राजनीतिक वास्तविकताओं से कोई संगति नहीं रह गयी तो नयी तात्त्विक व्याख्याओं की प्रयोजनीयता दिखाई दी। श्रेष्ठ प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन ने इस प्रयोजन की पूर्ति की। इस अध्ययन ने ऐसे विचार-जगत् का द्वार खोल दिया जो मध्ययुग के जगत् की धारणा से स्वतन्त्र और भिन्न था। यह ह्यमेनिज्म (मानवतावाद) का जगत् था। मध्ययुगीन जगत् में दैवी शक्ति और फरिश्तों के बीच मनुष्य का स्थान नगण्य था। ह्यूमेनिस्ट जगत् की मुख्य धुरी मनुष्य ही था; उसी के आसपास, ऊपर और नीचे अन्यान्य शक्तियों को स्थान प्राप्त हुआ। ह्यमेनिज्म कैथलिक-धर्मविरोधी तो नहीं था, परन्तु इससे स्वभावतः गैर-ईसाई मूल्यों को महत्त्व प्राप्त हुआ और स्तर-बद्ध अधिकारों की कल्पना के प्रत्याख्यान के कारण प्रोटेस्टेन्ट धर्म-सुधार से इसका नाता जुड़ गया। मौलिक गवेषणाओं से मौलिक मतों की उत्पत्ति हुई और व्यक्तिगत विवेक का उद्भव हुआ। जब ईसाई धर्म-ग्रंथ बाइबिल की समालोचना उसी

प्रकार होने लगी जैसी कि प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों की समालोचना की जा रही थी, तो प्रोटेस्टेन्ट मतवाद और ह्यूमेनिज्म मिलजुल-से गये। सार्वभौम जिज्ञासा वृत्ति वाले नव-प्रभात-युग के लोगों को दोनों में पार्थक्य रखने का कोई युक्तिसंगत कारण नहीं दिखाई दिया। कम से कम फ्रांस में प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन और धर्म-सुधार दोनों एक ही आन्दोलन के परस्पर पूरक अंग बन गये।

सरकारी दृष्टिकोण पहले इस सुधार के प्रति सहानुभूति-सम्पन्न ही था। राजा प्रथम फ्रांसोआ इस सुधार का निमित्त बन सकते थे। उनकी बहन, नावार की रानी मारगरित का समर्थन उन्हें प्राप्त था और राज्य के कितने ही बड़े लोग, पादरी और गैर-पादरी भी, उनके समर्थक थे। पेरिस विश्व-विद्यालय के धर्म-विभाग (और वही फ्रांस का सर्वोच्च धार्मिक न्यायालय भी था) के विरोध के बावजूद स्वयं फ्रांसीसी ईसाई संघ में भी एक सुधार आन्दोलन चल रहा था। परन्तु १५३४ ई० में सुधारकों के एक अति साहसी प्रतिवाद ने, जिसे राजाधिकार के विरुद्ध एक चुनौती समझा गया, राजा के रुख को बदल दिया। मृदु सुधारकों (इवेंजे लिकाेस) के प्रति भी राजा की नीति कठोर हो उठी। दो साल बाद फ्रेंच धर्म-सुधार आन्दोलन नेता कालव्हें ने अपनी लैटिन पुस्तक 'ईसाई धर्म-संस्था' में अपने धर्म-विश्वासों को प्रकाशित किया, परन्तु उन्हें जेनीवा भाग जाना पड़ा। १५४१ ई० में इसी ग्रन्थ का अनुवाद उन्होंने फ्रेंच में भी किया। कालव्हें फ्रेंच प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन के एक नेता थे और इस दृष्टि से उनके धर्मग्रन्थ का महत्त्व तो है ही परन्तु तार्किक शैली और भाषासौष्ठव की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। बाइबिल के प्रसिद्ध वाक्यांशों के प्रयोग में उनकी कल्पना-शक्ति का भी एक परिचय हमें प्राप्त होता है। फ्रेंच गद्य-लेखक के रूप में उन्हें ऊँचा पद प्राप्त है। तर्क-प्रिय फ्रेंचजन की आत्मा तो उनमें मूर्त है ही, साथ ही भाषा के परिवर्तन की आवश्यकता के सम्बन्ध में भी वे पूर्णतः सचेत हैं। 'ईसाई-धर्मसंस्था' के फ्रेंच अनुवाद के परवर्ती संस्करणों में वे युग की आवश्यकताओं से कदम मिलाकर चलते हैं। प्रथम संस्करण की

भाषा जितनी प्राचीन थी १५६० ई० के संस्करण की भाषा उतनी ही नवीन है। यह काल्व्हैं के ही प्रयत्नों का फल था कि बॉसुए और पासकल-जैसे उच्चकोटि के धर्मग्रन्थ-लेखकों को एक मँजी हुई भाषा हाथ के पास ही मिल गयी। परन्तु बॉसुए की लैटिन-वाङमयपूर्ण शैली की तुलना में काल्व्हैं की शैली वहुत सरल है। ग्रन्थ में उन्होंने ईश की विभूतियों का वर्णन किया है, जिस प्रकार कि शास्त्रों ने उनकी व्याख्या की है। अपनी मंगलमय शक्ति के बावजूद भगवान् ने मनुष्य का पतन होने दिया है क्योंकि अहंकार और आज्ञा की अवहेलना के द्वारा उसने पापकर्म किया है। परन्तु ईसा पवित्र भूत के माध्यम से मनुष्य को इस मूल पाप से मुक्त करता है। फिर भी इसके लिए चुने वे ही जाते हैं जिन्हें भगवत्-कृपा प्राप्त है। मुक्ति कार्य से नहीं, विश्वास से मिलती है। किसी को अनन्त दण्ड मिलता है तो वह भी भगवत्-इच्छा है। यह निर्मम भाग्य-निर्णय ही काल्व्हैं का सिद्धान्त है। परन्तु यही पहली फ्रेंच पुस्तक है जिसमें तर्क-युक्ति को प्रमुख स्थान दिया गया है और साहित्यिकों में काल्व्हैं की गणना का यही मुख्य आधार है। उनका कहना यह है कि जो धर्म-मत उन्होंने व्यक्त किया है वही ईसाई धर्म है; ईसाई धर्म की उनकी अपनी व्याख्या नहीं, तथापि सत्य यह है कि धार्मिक क्षेत्र में व्यक्तिगत मत-स्वातन्त्र्य की स्थापना उन्होंने की है। इस दृष्टि से मूल ह्यूमेनिस्ट धारा से वे अविच्छिन्न हैं, परन्तु दूसरी ओर धार्मिक कठमुल्लापन के कारण उस धारा के वे विरोधी भी हैं।

राबले (१४९०——१५५३ ई०)——फ्रांसोआ राबले एक पूर्णतया भिन्न प्रकार के लेखक हैं। दो बार वे ईसाई साधु-संघ के सदस्य बने और फिर संघ छोड़कर चिकित्सक बन गये। लिओं नगरी में नगर-चिकित्सक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई और वहाँ उन्हें कार्डिनल दी बेले का पृष्ठपोषण प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तिगत चिकित्सक और सेक्रेटरी के रूप में कई बार उन्होंने इटली का पर्यटन किया। पेरिस-विश्वविद्यालय के धर्म-विभाग (सोरबोन) की अत्यन्त कटु समालोचना का परिणाम यदि उन्हें भुगतना नहीं पड़ा तो केवल इसलिए कि दि बेले आदि का संरक्षण उन्हें प्राप्त था।

प्राचीन विद्या में उन्होंने व्युत्पत्ति प्राप्त की थी और अपने पेशे में भी वे योग्य गिने जाते थे। भेषज-विद्या में उन्हें पारदर्शी कहना सही न होगा क्योंकि उनकी पीढ़ी में विशिष्ट शिक्षा का कोई प्रचलन नहीं था और ज्ञान की सभी शाखाएँ परस्पर सम्बद्ध थीं। एक विशाल ज्ञान-भण्डार का भण्डारी बनना उनका निजी आदर्श भी था।

चार खण्डों में प्रकाशित 'गारगान्टुआ और पान्टाग्रुएल' हास्य-रस परिपूर्ण एक अति रोचक अद्भुत रोमांचकारी कहानी है। फेरीवालों की सस्ती कहानी की पुस्तकों से ही उन्होंने अपनी कथावस्तु का संग्रह किया है, परन्तु जो रूप उन्होंने दिया है वह वास्तव में विस्मयकर है। ऊपरी दृष्टि से इस पुस्तक में कौतुक और जीवन-रस का प्राचुर्य सा दिखाई देता है, परन्तु श्लेष और व्यंग्य भी इसमें कम नहीं है और अनुभव की ताजगी तथा ज्ञान की विशालता में यह ह्यूमेनिज्म का प्रतीक स्वरूप है। साहित्यिक विद्वत्ता इसमें कम है, परन्तु विषय-वस्तुओं की व्यापकता में यह ग्रन्थ अतुलनीय है। विज्ञान,जिसमें चिकित्सा विज्ञान को प्राथमिकता प्राप्त है, कानून, चाहे नागरिक हो या धार्मिक, प्रशासन, रीति, भूगोल, पर्यटन, कला-कौशल या उद्योग-धन्धा सभी विषयों का इसमें समावेश है। और शब्दशिल्पी के रूप में तो लेखक का आसन अति गौरवमय है। शब्दों की उन्होंने बाढ़ ला दी है। शब्द विद्वानों के भी हैं और जन-साधारण के प्रचलित भी हैं, प्रादेशिक शब्द हैं और चलती बोली के शब्द हैं, विदेशी शब्द हैं, टेकनिकल शब्द हैं और कृत्रिम रूप से सृष्ट शब्द भी हैं। शब्द-स्रोत का अपार आनन्द वे मानो स्वयं भी लूटते जाते हैं। अगणित विशेषणों और पर्याय शब्दों की बहुलता से पृष्ठ के पृष्ठ भरे हुए हैं तथापि प्रत्येक कदम वे बड़ी सावधानी से उठाते हैं, उनकी उत्सुकता के पीछे एक शान्त युक्ति वर्तमान है। नव-जागरण का यह प्रतिनिधि अपने युग की भूलों और ज्यादतियों के प्रति विशेष रूप से सचेत है। कठमुल्लापन, मतवाद के पीछे पागलपन और आडम्बरपूर्ण विद्वत्ता-प्रदर्शन के वे कठोर आलोचक हैं। उनका दृष्टिकोण निर्द्वन्द्व निश्चय का नहीं, बल्कि एक समालोचक का है। हास्य और कौतुक में ही वे अपने मन को

खोलकर रखते हैं। ज्ञान-सूत्र, वाक्चातुरी, शब्दाडम्बर और कलाबाजी पर वे व्यंग्य-बाणों की वर्षा करते हैं। यदि पूर्ववर्ती युग का धार्मिक शुष्क तर्क उन्हें अग्राह्य है तो काल्व्हैं की असहिष्णुता भी उनके लिए अप्रिय है। परन्तु सबकी महौषधि है हँसी, जिस पर मानव का सदा से अधिकार है।

'गार्गान्टुआ और पान्टाग्रुएल' के अध्याय, एक के बाद एक जीवन और दुनिया की हँसी के ही अध्याय हैं। एक नमूना लीजिए। पान्टाग्रुएल का दुष्ट साथी पानर्ज समुद्रपथ पर यात्रा कर रहा है। उसका सहयात्री दिनदेनोल भेड़ का व्यापारी है। दिनदेनोल पानर्ज को अपमानित करता है तो पानर्ज उससे एक भेड़ खरीद लेता है। उस भेड़ को वह समुद्र में बहा देता है। तब बाकी भेड़ें एक के बाद एक समुद्र में कूदने लगती हैं, क्योंकि भेड़ की यही प्रकृति है कि जो एक करती है वही बाकी भी करने लगती हैं। हैरान होकर दिनदेनोल एक मोटी ताजी भेड़ को पकड़ लेता है, इस आशा से कि बाकी भेड़ें अब जहाज पर ही रह जायँगी। लेकिन वह भेड़ उसी को ले डूबती है। दिनदेनोल का एक अन्य साथी एक और भेड़ को पकड़ रखता है, लेकिन उसकी भी वही हालत होती है। अब पानर्ज डाँड़ पर जा बैठता है, इसलिए नहीं कि कि डाँड़ के सहारे डूबते हुए लोग अपनी जान बचा सकें, बल्कि इसलिए कि वे जहाज के पास न फटकने पायें, और पानर्ज अपनी जगह से उन्हें सदुपदेश देता रहता है, दूसरी दुनिया के जीवन का एक आकर्षक चित्र खींचता है। व्यंग्य और हास्यरस के सम्मिश्रण से पाठक लोट-पोट हो जाता है। लेकिन हास्यकौतुक ही रॉबले का सब कुछ नहीं है। दैत्य गार्गान्टुआ ने अपने पुत्र पान्टाग्रुएल की शिक्षा की जो व्यवस्था की है वह एक आदर्श शिक्षा है। शिक्षक पोनोक्रेट ने पाठ्यक्रम बनाया है। विद्यार्थी को दिन भर पढ़ना है, प्रत्येक घण्टे का उचित उपयोग करना है। परन्तु मूल पाठ ही शिक्षा का विषय होगा, टीका-टिप्पणियों की भरमार नहीं। फिर भी वह पुस्तकों की अपेक्षा क्रियाओं से, और दुनिया के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण से ही, ज्ञान आहरण करेगा। प्राथमिकता सिद्धान्तों को नहीं, प्रयोगों को दी गयी है और आवि-ष्कार के आनन्द को। परन्तु वह केवल किताबी कीड़ा न बनने पाये इसलिए

कुछ धन्धे भी उसे सीखने पड़ेंगे। साथ ही शारीरिक विकास पर भी उतना ही ध्यान दिया जायेगा जितना कि मानसिक विकास पर।

जीवनादर्श के प्रति राँवले की देन है "थेलीम का मठ", राँवले का कल्पना जगत। 'थेलीम' जिस मूल ग्रीक शब्द का रूपान्तर है उसका अर्थ है इच्छा-शक्ति। मठ की विशेषता यह है कि वहाँ कोई भी जो जी चाहे कर सकता है। आध्यात्मिक उत्कर्ष को कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं है। सबकी समानता के स्वप्न का भी उस मठ में कोई स्थान नहीं है। चुने हुए लोग हैं, सुवंश-जात हैं और सुसंस्कृत हैं। परन्तु अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुसार ही वे काम करते हैं। महिलाएँ भी इस मठ में हैं और उनका स्थान पुरुषों के समान है। मठ मनोहर है और विलास की सामग्रियों से पूर्ण है। कोई प्राचीर नहीं, कोई घड़ी नहीं, कोई नियम भी नहीं। स्वतन्त्रता ही जपमन्त्र है और वही राँबले के अनुसार सही जीवन का आधार है। मठ में उन्होंने नारी को पुरुष के समान ही स्थान दिया है, परन्तु उनकी नारी-विरूपता कहीं-कहीं छिप नहीं पाती, तब तो नारी का स्थान घर के अन्दर ही है। राँवले की कृति नव जागरण के परिपूर्ण मानव के आदर्श को ही प्रतिबिम्बित करती है और उसमें सृष्टिकर्ता के लिए भी एक उच्चासन है। परन्तु वह आसन विश्वास का नहीं, बुद्धि का आसन है; "ईश्वर बुद्धि का एक वृत्त है जिसका केन्द्र सर्वत्र है, परन्तु परिधि कहीं नहीं।" महिमान्वित कल्पना की दृष्टि से यह विचार आकर्षक भी है।

मोंतेईं (१५३३--१५९२)--मिकेल ईकेम सेनिओर द मोंतेईं का जन्म गैस्कनी प्रदेश के मोंतेन स्थान में हुआ। बोर्दो में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और स्कॉच ह्यूमेनिस्ट जॉर्ज बुकानान भी उनके शिक्षकों में थे। वहीं उन्होंने कानून का भी अध्ययन किया और उस नगर की पार्लमेंट के एक पारिषद भी वे बने। १५८०-८४ तक वे बोर्दो के मेयर भी रहे। मेयर के पद पर उन्हें ख्याति प्राप्त हुई थी, परन्तु ताऊन पड़ने पर भाग जाने के कारण उनकी कुछ विरुद्ध आलोचना की गयी थी, जिसके उत्तर में उन्होंने कहा कि ऐसे समय नगर से बाहर रहकर ही मैं उसकी अधिक सेवा कर

सकता था। जर्मनी और इटली में, जहाँ वे रोमन नागरिक भी हो गये थे, उन्होंने दूर-दूर तक भ्रमण किया। १५८८ ई० में वे पेरिस पहुँचे तो मामोआसेल गूर्ने को उन्होंने पालित कन्या के रूप में ग्रहण कर लिया। कुमारी गूर्ने ने ही बड़े यत्न के साथ उनके निबन्धों को सम्पादित किया। १५७० के बाद वे अपने मोंतेई के पैतृक गृह में ही आराम का जीवन बिताते रहे और उसी समय उन्होंने प्रचुर अध्ययन भी किया तथा अपने निबन्ध भी लिखे। अपने समय के गृहयुद्ध से वे बिलकुल अलग रहे और चतुर्थ हेनेरी की वफादार प्रजा बने रहे। उनके जीवन की रोमांचकारी घटना कोई प्रेम-संबंध नहीं, बल्कि ला बोएती से उनका प्रसिद्ध बन्धुत्व है। ला बोएती को इतना प्यार वे क्यों करते थे, यह प्रश्न उन्होंने स्वयं उठाया और स्वयं ही इसका एक अति मनोहर उत्तर भी दिया है—"इसलिए कि वह वह थी और मैं मैं था।" थोड़े ही दिनों बाद १५६३ ई० में ला बोएती की मृत्यु हो गयी।

मोंतेई की प्रसिद्ध पुस्तक "एसे" (निबन्ध) के तीन खण्ड हैं। १५८० ई० में प्रथम दो खण्ड प्रकाशित हुए। दोनों खण्डों की कलेवर-वृद्धि के साथ तीसरा खण्ड १५८८ ई० में प्रकाशित हुआ। जीवन के अन्तिम वर्षों में मोंतेई अपनी पाण्डुलिपि के कशीदों पर जो व्याख्याएँ या मन्तव्य लिख रहे थे उन सबको जोड़कर तीनों खण्डों को मामोआसेल गूर्ने ने १५९५ ई० में प्रकाशित किया। निबन्धों के विषय जीवन के विभिन्न पहलुओं की भाँति ही अनेक प्रकार के हैं, विभिन्न और विचित्र हैं। अपनी रचना के सम्बन्ध में मोंतेई ने स्वयं ही कहा है कि यह भिन्न-भिन्न पेंबंदों का एक जोड़ है। मोंतेई शब्द-सम्पत् के धनी हैं और उन शब्दों में उनकी मिट्टी का रस भरा हुआ है। उनके शब्दों की तरह उनकी शैली में भी एक निरालापन है जिसकी तुलना सम्पूर्ण फ्रेंच साहित्य में नहीं मिलती। उनके वाक्यों में संगठन का अभाव है। उनका गद्य जटिल, छन्दहीन और असंयुक्त वाक्यों या शब्द-समूहों से भरा हुआ है। इन सब बातों के होते हुए भी उनकी गद्यशैली में एक अद्भुत आकर्षण है। सत्य और कवित्व की अनमोल झलक, शक्ति-

शाली उपमा एवं विदग्धता और कल्पना के समावेश से शैली की सारी कमियों की पूर्ति हो जाती है। वे लिखते क्या हैं मानो वाक्यालाप करते जाते हैं। उस कथनोपकथन में कहीं घनिष्ठता है और कहीं अपूर्व वैभव। उनके क्षेत्र में "शैली—वह मनुष्य स्वयं है, पुस्तक वही है और पुस्तक का विषय भी वही है।" ग्रन्थकार स्वयं कहता है—"मेरी आत्मा और मेरी शैली दोनों साथ-साथ आवारा घूमते फिरते हैं।" अपनी शैली का विश्लेषण स्वयं करते हुए वे कहते हैं कि वह "हास्यास्पद और व्यक्तिवादी है, सूत्ररूप और क्रमविच्छिन्न है, हिलती-डोलती और आत्मकेन्द्रित है, स्थूल और शुष्क है, कर्कश और घिनौनी है, सरल और मजी हुई नहीं है।" लेकिन देश-देशान्तर में उनकी रचनाओं को ख्याति मिली, अच्छे-अच्छे लेखकों को उनसे प्रेरणा मिली।

मोंतेईं ने स्वयं अपने को ही अपनी रचनाओं का विषय चुना। पासकल ने इसे एक मूर्ख योजना कहा है, लेकिन पासकल के लिए तो स्वयं अहं ही घृणित है। मोंतेईं को सम्पूर्ण मानव-समाज ही अपने अन्दर दिखाई देता है—"ज़ पोर्त आं मोआ ला फोर्म आंतीएर द ल्यूमेन कॉन्दीशिओं" (मैं अपने में सम्पूर्ण मानवीय अवस्था के रूप को वहन करता हूँ)। नव-प्रभात की अथक जिज्ञासा और पृथक् व्यक्तित्व तो उनमें है ही बल्कि सत्रहवीं शती की सार्वभौमिकता की ओर भी उनकी निगाहें हैं, क्योंकि विभिन्न युगों और देशों के मनुष्यों के विभेदों को नहीं, उनकी समानता को ही वे देखते हैं। इसलिए सोलहवीं सदी में, उचित कार्य के लिए, उनके पथ-निर्देशक हैं प्लूटार्क, सेनेका और ल्यूक्रीटियस (प्रसिद्ध कविता—"वस्तुओं की प्रकृति" के रचयिता)।

मोंतेईं को सन्देहवादी, अनिश्चयतावादी, कहा गया है, परन्तु उन्हें आपेक्षिकतावादी ही कहना अधिक उचित होगा। वास्तव में उनके जीवन-दर्शन के तीन स्तर देखे जाते हैं। प्रारम्भ में उनका दर्शन स्टोइक है— "शान्तचित्त होकर, साहस के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करो। व्यथा और वेदनाओं के कारण चित्त व्याकुल न होने दो।" मृत्यु संबंधी उनके विचारों को

इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। प्रसिद्ध निबन्ध लेखक बेकन ने भी मृत्यु पर लिखा है। निम्नलिखित उद्धरण से दोनों के विचारों की तुलना की जा सकती है। मोंतेईं लिखते हैं (एसे १-१९)–"लोग आते हैं, उछलते हैं, नाचते हैं, मृत्यु पर एक शब्द किसी की जबान पर नहीं है। यह सब बहुत अच्छा है, लेकिन मौत जब आती है और अकस्मात् खुले खजाने उन पर, उनकी पत्नियों पर, उनके बच्चों पर या उनके मित्रों पर हमला करती हैं तो कितनी यन्त्रणा, कितनी गुहार-पुकार, कितनी उन्मत्तता और कितनी निराशा उन्हें अभिभूत कर देती है। इतना भय, इतना परिवर्तन, इतनी अस्तव्यस्तता तुमने कहीं देखी है? मृत्यु के आगमन को तो पहले से ही देख लेना चाहिए। यदि किसी समझदार व्यक्ति के मन में पशुवत् निर्लिप्तता छा भी गयी हो, जिसे मैं असम्भव मानता हूँ, तो उसकी कीमत बहुत महँगी पड़ी होगी। यदि मृत्यु कोई ऐसा शत्रु होती जिससे लोग भाग निकल पाते तो कायरपन के हथियारों को उधार लेने का परामर्श मैं दे सकता था। लेकिन चूँकि यह सम्भव नहीं, इसलिए दृढ़ता के साथ खड़े होकर इससे जूझने का उपाय हमें सीखना चाहिए।....मौत हमें कहाँ मिलेगी, यह हम नहीं जानते; कहीं भी मौत मिले, हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। मृत्यु पर पहले से विचार कर रखना, अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के सम्बन्ध में ही पहले से विचार कर लेना है। जिसने मरना सीखा है उसने दासता के पाठ को भुला दिया है। जिसने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि जीवन खो देना कोई बुराई नहीं है, उसके लिए जीवन में कोई अमंगल हो ही नहीं सकता। यह जानना कि मरना कैसे चाहिए हमें अधीनता के पाश से मुक्त कर देता है।"

स्टोइक दर्शन के स्तर को पार कर आगे वे दार्शनिक संशयवाद के स्तर पर पहुँचते हैं। संशय का कारण यह है कि बुद्धि का निर्णय अंतिम निर्णय नहीं है। अपनी पुस्तक "आपोलोजी पुर रेमोंद से बोंद" में वे कहते हैं कि मनुष्य को किसी वस्तु का अन्तिम ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सत्य, न्याय या नैतिकता निरपेक्ष नहीं है। अपनी ही उक्ति "मैं क्या जानता हूँ?" के अनुसार सहिष्णुता को वे आवश्यक प्रमाणित करते हैं। कठमुल्लापन, उग्र

सिद्धांत-वादिता, उनके लिए घृण्य है। परन्तु स्वयं वे कट्टर कैथलिक ही बने रहे।

उनका अन्तिम दार्शनिक स्तर है एपिकूरियन "अपनी प्रकृति के अनुसार चलना और जीवन में आनन्द का उपभोग करना।" इसी दर्शन का अनुसरण कर वे कहते हैं—"जीवन से प्रेम करो, प्रकृति का अनुसरण करो।" इस दृष्टि से उन्हें प्रकृतिवादी भी कहा जा सकता है। इस विषय में रॉबले से उनका एक मेल है—"प्रकृति का अनुसरण कर हम भूल नहीं कर सकते।"

परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, वे स्वयं ही अपने विषय हैं। अब देखिए कि अपने ही अन्दर विश्व-मानव की अवस्था का अध्ययन उन्होंने किस प्रकार किया—

(अनुवाद) "सिसेरो के माध्यम से अपने को देखने की अपेक्षा मैं अपने ही अन्दर से अपने को समझना चाहता हूँ। यदि मैं पाठ अच्छा सीखने वाला हूँ तो अपने अनुभव में ही मुझे ऐसी सामग्री दिखाई देती है कि मैं अपने को बुद्धिमान् बना सकूँ। जो अपने अतीत क्रोध की उन्मत्तता का स्मरण करेगा और याद करेगा कि वह बुखार उसे कहाँ तक ले गया वह अरस्तू के बजाय अपने अन्दर ही रोष की कदर्यता को देख सकेगा और अधिक उचित रूप से इससे घृणा कर सकेगा। जो यह याद करता है कि कौन-सी बुराइयाँ उसने कीं और किन बुराइयों ने उसे घेर लिया था या किन छोटी-छोटी घटनाओं के कारण उसकी मानसिक परिस्थिति बदल गयी, वह इस प्रकार भविष्य के परिवर्तनों के लिए अपने को तैयार कर लेता है और यह भी जान लेता है कि वह कहाँ है। हमारे अपने जीवन जितने शिक्षाप्रद हैं, सीज़र का जीवन उतना नहीं है।...जब दूसरे की युक्ति से मुझे विश्वास हो जाये कि मेरी कोई राय गलत है तो मुझ से जो नयी बात कही गयी उससे मैं विशेष कुछ सीखता नहीं हूँ (क्योंकि एक विशेष विषय के अज्ञान से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता) सिवाय इसके कि मैं गलती कर सकता हूँ, मेरी बुद्धि मुझे धोखा दे सकती है और इससे अपनी सम्पूर्ण सत्ता का सुधार मैं कर सकता हूँ। मैं जो दूसरी ग़लतियाँ करता हूँ उनसे भी यही सीख लेता हूँ और अपने

जीवन में मुझे यह नियम बड़ा उपयोगी जान पड़ता है। विचार-निष्कर्ष मेरे अन्दर सबसे बड़ा स्थान रखता है। यह मेरी बुभुक्षाओं को, घृणा और मैत्री को भी—अपने प्रति अपनी मैत्री को भी—स्वेच्छानुसार अपने रास्तों पर चलने देता है, परन्तु वह निष्कर्ष स्वयं इनसे कलुषित नहीं होता। यदि मेरा विचारजनित मत मेरे अन्य अंगों का सुधार अपने अनुसार नहीं कर सकता तो कम से कम वह स्वयं उन बुभुक्षाओं आदि के ढाँचे में पड़कर विकृत नहीं हो जाता—वह अपना काम पृथक् रूप से करता जाता है।"

मोंतेई की ख्याति शीघ्र ही इंग्लैण्ड में फैल गयी। फ्लोरियों ने १६०३ में उनके निबन्धों का अनुवाद किया।

इस अनुवाद की एक प्रति शेक्सपियर के पास थी। बहुतेरे लेखकों ने, और जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, बेकन ने भी, उन निबन्धों से सामग्रियाँ ली हैं। उनके निबन्धों ने सत्रहवीं शती के दो बड़े विचारकों, देकार्त और पासकल का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें फ्रांस का प्रथम मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है।

नवाँ अध्याय

प्लीआद–पूर्व कविता

मध्ययुग के अन्तिम भाग की, छन्द-पद-शैली-मात्रा सुशोभित, परन्तु अन्तःसार-शून्य, काव्य-परम्परा को भेदकर, व्यक्तिगत अनुभूतियों को काव्य रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने में कुछ समय लग गया। फ्रांस में नव-जागरण का प्रवेश इतने धीरे-धीरे हुआ कि १५०० ई० से आगे की एक पूरी पीढ़ी तक कविताओं का वही ढाँचा वना रहा जो कि उसके पहले तक प्रचलित था। इस बीच जां ल मेर के तारों पर कुछ नयी झंकार सुनाई देती है, भावुकता और व्यक्तिगत आन्तरिकता के नये सुर बज उठते हैं। कवित्व के पुराने रूप में वे अभी बँधे हुए हैं, लेकिन इटली से एक नयी सुरभि भी वे लाते हैं। उनके नवीन त्रैमात्रिक पदों में दीप्त सरलता का रूप निखर उठता है। 'लामा बेर' (हरा तोता) में लालित्य और चपलता के उनके प्रयत्न में कवि मारो के कुशल-मधुर स्पर्श का अभाव है,लेकिन "तांप्ल द वेनी" (रति का मन्दिर) में एक ओर वे हमें जीलोम द लोरी के रूपक और दृश्यों के माधुर्य की याद दिलाते हैं और दूसरी ओर जँ द मेओंग तथा रॉवले के यथार्थवाद, श्लेष और शब्द-सम्भार को भी पीछे रखकर आगे निकल जाते हैं। इस कविता में त्रैमात्रिक (टर्सेट) के पास ही पास द्वादशमात्रिक आलेक्जा-न्ड्रीन का भी प्रयोग उन्होंने किया है और अनुप्रास की तो भरमार है।

क्लेमां मारो (१४९६–१५४४)——मारो में इटली के नवजागरण का प्रभाव और भी सुस्पष्ट है यद्यपि उस नवजागरण के अन्तःप्रदेश तक वे पहुँच नहीं पाये थे। यद्यपि उनके तत्काल बाद के ही प्लीआद कवियों ने उनके नाम पर एक परदा-सा डाल दिया है और रसानुभूति की आधुनिक क्रांति

ने उनके और वर्तमान के बीच एक खाई-सी बना दी है तथापि साहित्य का इतिहास उनकी प्रतिभा की उपेक्षा नहीं कर सकता। क्लेमां मारो के पिता जां मारो भी एक छोटे-मोटे दरबारी कवि थे और यह उन्हीं की शिक्षा का फल था कि मध्ययुगीन कविता के अलंकृत रूपों को क्लेमां मारो ने पूर्णतः अपने आयत्त कर लिया था। उनकी कुछ श्रेष्ठ कविताएँ रोंदो, बैलड या गीत के छन्दों में लिखी गयी हैं। 'रोमां द ला रोज़' और बिलों की कविताओं का उन्होंने सम्पादन किया और यह मध्ययुग के प्रति उनकी रुचि का ही परिचायक है। उनके जीवन की घटनाएँ उस अर्ध शताब्दी के ही अनरूप हैं जिसमें कि वे घटित हुईं। १५८४ में वे फ्रांसिस (राजा फ्रांसोआ प्रथम) के साथ इटली के युद्ध में शामिल हुए और पाविया में कैद कर लिये गये। साल भर बाद फ्रांस लौटकर वे फ्रांसोआ की बहन मारगरित के दरबार में शामिल हुए जहाँ ह्यूमेनिज्म और धर्मसंस्कार दोनों का जोर था और वहीं प्रोटेस्टेन्टिज़्म, धर्म-संस्कारक लथर और कैलबिन की ओर उनका झुकाव बढ़ा। इसी झुकाव के कारण कई बार उन्हें कारागृह जाना पड़ा, परन्तु प्रायः प्रत्येक बार ही मारगरित के अनुग्रह से उन्हें छुटकारा भी मिला। अन्त में मारगरित के प्रभाव से भी कुछ न हो सका और उन्हें फ्रांस छोड़ देना पड़ा। १५३९ में पुनः फ्रांस लौटने की अनुमति उन्हें मिली और वापस आने पर उन्होंने बाइबिल के कुछ बन्दना-गीतों का अनुवाद फ्रेंच में किया। पुनः धर्मगुरुओं की उन पर नज़र पड़ी और इस बार वे पहले जेनीवा गये, फिर वहाँ से टूरिन (इटली) चले गये जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी।

मारो की कविताएँ बड़ी नहीं हैं। भिन्न-भिन्न समयों और भिन्न-भिन्न मानसिक परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की कविताओं की रचना उन्होंने की है। मध्ययुगीन रीतियों का अवलम्बन कर जो गीत, बैलड आदि उन्होंने लिखे हैं, दी बेले ने उन्हें बिसातखाने के माल की संज्ञा दी है। उन्होंने ग्राम्य-गीत भी लिखे हैं। उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं, "एपित्र" (कवि के पत्र) और जैसाकि पहले कहा जा चुका है, उन्होंने भजन-वन्दनाओं का भी अनुवाद

किया है। ये श्रेणियाँ मध्ययुग, नव-प्रभात और धर्म-संस्कार युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रथम श्रेणी की कविताओं में, जिन पर मध्ययुग का प्रभाव सब से अधिक परिलक्षित होता है, सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ है "तांप्ल कीपीदीक" (रतिपुत्र का मन्दिर)। उनके प्रारम्भिक काल की इस कविता में भी रूपक, यथार्थवाद और प्रकृतिवाद का मधुर सम्मिश्रण है—

द कीपिदाँ ल दियादेम
ए तं रोज़ अं शापेले
क बेनी किए ली एल् मीम
ददां सों जारदें वेर दे ले
ए सीर ल प्रैंताप नूवेले
ल त्रांसमी आ सू शे रांफां
की दबों कीर लव्हा कोआफ़ा;
पुई दोना पुर से रोज़ बेल्
आ सा मेर अं शार त्रिप्रोंम्फांत
कोंदुई पार दूज़ कोलोम्बेल।
दव्हां लोतेल दो सीप्र सिंगुलिएर
ज़ व्हे फ्लोरीर सू ओदेओर आम्बास्मे
ए म दितँ के सेतोआंब्ले पिलिएर
दिग्रां ओतेल द ओत रनॉम।
लोर मिल बाज़ो दीन लोगं रामे
विआंद्रों वोले सीर से वेर्त कुर्तीन,
प्रेस्त द शांते शांसोनेत दिवीन।
सी दमांदे पुरकोआ ला सं वेनी;
मे ज़ं म दी, आमी, स सॉ मातिने,
किल वियानां दीर प्रां लोन्येर द वेनी।

"क्यूपिड (रति-पुत्र) का मुकुट गुलाबों की एक माला है, जिन गुलाबों को वीनस ने स्वयं अपने हरे-भरे बगीचे से तोड़ा है और वसन्त समागम पर

अपने प्रिय पुत्र को भेजा है और क्यूपिड ने सहर्ष उस माला को अपने सिर पर बाँध रखा है। उन गुलाबों के बदले में उसने अपनी माता को एक विजय-रथ भेजा है, जिसे द्वादश कपोत खींचते हैं। वेदी के सामने दो अनोखे देवदार के वृक्ष हैं और उनके श्वास-प्रश्वास से सुरभि आती है। उन्होंने मुझ से कहा कि ये देवदार ऊँची ख्याति की ऊँची वेदी के दो स्तम्भ हैं। तदनन्तर, दूर बगीचे से हजार चिड़ियाँ उड़कर उस हरे शामियाने पर स्वर्गीय संगीत सुनाने को आ बैठीं। मैंने पूछा ये चिड़ियाँ क्यों आयीं और उन्होंने कहा, बन्धु, तुम नहीं जानते, ये वीनस के सम्मान में प्रातः वन्दना करने को यहाँ आयी हैं।" इस रूपक में मारो प्रेम-देवता की खोज में उस देवता की पूजा की वेदी के पास आ पहुँचे हैं।

प्रसिद्ध व्यक्तियों को पत्रों के रूप में लिखी गयी उनकी कविताओं में नवजागरण का एक स्पन्दन है। इस श्रेणी की उनकी एक विख्यात कविता है "एपित्र ओरोआ पुर आवोआर एते दे रोवे" (लुण्ठित होने के कारण राजा को पत्र)। इसमें मृदु इंगित के द्वारा कहा गया है कि लूट की क्षति-पूर्ति के लिए राजा क्या करे—

स नियां मोआं स क ज व्हू ले मांद,
नेस पुर व्हू फ़ेर उ रेक्लेस उ दमांद
ज़ न वेओ पोंआ ता द जां रसाम्बले
की न सूसी ओत्र क दासाम्बेले,
तां कि ल विव्हे ों ईल दमांद्रो ओ
मे ज़ कमांस आ दवनीर ओंत्यो
ए न वो प्ली आ व्हू दें मारेस्ते।
ज न दी पा सी व्हूले रियां प्रेस्ते।
क न ल प्रान। इल नेस ओंप्रा प्रेस्त्योर
(सिल व्हू प्रेस्त) की न फ़ास अँ देब्त्योर।
ए सावे व्हू (सीर) कॅमां ज़ पे?
नील न ल से सी प्रमिएर न लेसे;

व्हू म द भ्रे (सी ज पुई) द रतूर,
ए व्हू फ़रे आंकोर अं बों तूर,
आ से ल फैं कील निए फ़ोल्त नील,
ज व्हू फ़रे उईन बेल से दुईल,
आव्हू पेए (सां उशुर, दूल सांतांद)
कां तों वेरा तू ल मोंद कों तां,
ऊ सी व्हूले आ पेए स सेरा
कां वोत्र लो ए रनों सेसेरा ।।

"यह सूचना मैं दे रहा हूँ, कोई प्रार्थना करने को नहीं और न कृपा-भिक्षा के लिए; मैं उन लोगों की तरह नहीं जिन्हें संग्रह करने के अतिरिक्त और कोई चिन्ता नहीं और जो जब तक जीवित रहेंगे, भीख ही माँगते रहेंगे। लेकिन मुझे तो लज्जा आती है और आप के दान पर ही (केवल) निर्भर मैं नहीं रहना चाहता। मैं नहीं कहता कि आप उधार देना चाहें तो मैं लूँगा नहीं। कोई उधार देनेवाला नहीं, जो उधार देना चाहे तो कोई उधार करने वाला उसे न मिले। और आप जानते हैं, प्रभु, कि मैं उऋण कैसे हूँगा ? कोई कह नहीं सकता जब तक कि वह प्रयत्न न करे। मैं आपका जितना ऋणी हूँ उससे अधिक ऋणी आप होंगे (यदि यह सम्भव हो), और मैं भी आपके प्रति भलाइयाँ करता रहूँगा ताकि मेरा कोई ऋण रह न जाये। मैं आपको ऋण-पत्र लिख दूंगा (अवश्य ही बिना सूद) कि मैं पावना तब दूँगा जब कि हम सभी को सुखी देखेंगे, या आप चाहें तो आप का पावना तब मिलेगा जब कि आप की ख्याति और प्रशंसा का अन्त हो जायेगा।"

धर्म-संस्कार आंदोलन का प्रभाव उनके भजन-गीतों (साम्स के अनुवाद) पर पड़ा है। उनके अपने जीवन-काल में तो इनका बहुत ही आदर रहा यद्यपि आज उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में इनकी गिनती नहीं की जाती। परन्तु उस समय तो राजा और पारिषद वृन्द के घर-घर इनका प्रचार रहा। राज-कुमार हांरी को पसन्द था "एंजी काँ नोआ ल सर्फ ब्रुईर" (हरिण जैसे नदी-जल के लिए तृषित होता है), मादाम द वालान्तिवोआ को पसन्द था "दी

फोंद मां पांस" (मेरे हृदय के अन्तस्तल से, हे प्रभु), रानी को पसन्द था "न बोईल पा, पो, सीर" (प्रभु मेरी भर्त्सना न करो)। शातेले में अपने बन्दी-जीवन का एक सबल जीवित चित्र उन्होंने "लांफेर" में दिया है। इस कविता पर दो विरुद्ध प्रभाव पड़े हैं; एक ओर दांते का और दूसरी ओर लमेर के 'हरे तोता' का। "एकलोग ओ रोआ सू ले नॉम द पा एं रोबें" में उन्होंने आत्मजीवन पर प्रकाश डाला है।

छोटी और हलकी कविताओं में उनकी क्षमता अद्भुत है। ला फोंतेन से लेकर "बेरांज़ेर तक इस श्रेणी के फ्रेंच कवि मारो के प्रचुर ऋणी हैं। व्यंग्य और चपलता के कलकल प्रवाह में फ़ावलो की चतुराई है परन्तु उनकी स्थूलता नहीं है। नीचे की पंक्तियाँ उन्होंने एक किशोरी को लक्ष्य करके लिखीं जो किसी दावत में अधिक मिष्टान्न खाने से बीमार पड़ गयी थी—

मां मिनिऑन्
ज़ व्हू दॉन्
ल बाँ जूर।
ल सज़ूर
सेस प्रिजां
गेरिज़ं
रकूव्हे
पुई उव्रे
वोत्र पोर्त

वोत्र पोर्त
ए कां सोर्त
विस्तमां।
कार क्लीमां
ल व्हू मांद
व्हां फ़िआद
दी व्हू दो आ
सांते बोन
मां मिनिओन।

(मेरी कोमल प्रिया, लो नमस्कार,
कमरा तेरा कारा समान,
हो अच्छी, निकलो तुरन्त,
ठहरो न तुम एक भी दिन।
क्लेमां है जो कहता है
दुष्ट प्रिया हो लोभी तुम॥

....

ईश करे तुम्हें अच्छा,
जल्द और सच्चा,
सुने वह मेरी,
सुनो किशोरी ।।)

मारो कोई विद्वान कवि नहीं थे। उनका भावावेग उनकी इच्छा-शक्ति से अधिक प्रबल था। धर्म-संस्कारकों के प्रति उनके झुकाव के बाव-जूद उनकी धार्मिक प्रवृत्ति में कोई दृढ़ता नहीं थी। वेनिस होकर फ्रांस लौटते समय उन्होंने लिओं में खुले आम अपने पिछले धर्म-विचारों को तिलांजलि दे दी, परन्तु विद्रोहसूचक व्यंग्य के प्रति उनका आकर्षण बराबर बना रहा। उनके छन्दों में गहराई न हो, लेकिन उनकी शैली में उपादेयता, सहज भाव और लालित्य है। उनकी अपनी कोई नवीन सृष्टि न हो, परन्तु उनकी व्यंजना के वृत्त में सम्पूर्ण सृष्टि समाविष्ट है। मारो के अन्तर में एक कवि का निवास था, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। मारो के प्रशंसकों ने एक कविगोष्ठी की स्थापना की थी जिसमें मलैं द सैं गेले का नाम उल्लेखनीय है। वे दरबारी कवि के ही प्रतिरूप थे, परन्तु इटली की ताजी हवा से भी उन्होंने प्रेरणा ली थी और पेट्रार्क का अनुसरण कर चतुर्दशपदी गीतों को उन्होंने जन-प्रिय बनाया था।

लिओं के कवि––इटली और फ्रांस के मार्ग पर अवस्थित लिओं नगरी से ही पेट्रार्क के विचार और आदर्श फ्रांस में आये और उसी नगरी के कुछ कवियों ने उन विचारों और आदर्शों को फ्रेंच साहित्य में प्रतिष्ठित किया। इस कविगोष्ठी के अग्रणी थे मॉरिस सेव्ह (१५००-६०)। "सर्व-गुण-आकर देली" में उन्होंने अपनी प्रेयसी की प्रशंसा में प्रतीकवादी कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं के सम्बन्ध में प्रतीकवादी शब्द पूर्णतः प्रयोज्य नहीं है और वास्तविक प्रतीकवादी कविताएँ वैलेरी के समय से ही लिखी जाने लगीं। परन्तु अबोध्यता या दुर्बोध्यता और कल्पनाप्रसूत आदर्शवादी प्रेरणा के संयोग में उन कविताओं का यही रूप व्यक्त होता है। सेव्ह ने पेट्रार्क की प्रेम-पूजा और अफलातून का आदर्श प्रेम, दोनों प्रवाहों को एक

में मिला दिया है। इस रचना के ४४९ दसपदी स्टेनज़ाओं में आदर्श प्रेयसी देली का, जो स्पर्शातीत और बोधातीत है, गुणगान किया गया है। देली की व्याख्या, लीदे (शुद्ध विचार) के रूप में की गयी है। परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि उनकी आदर्श प्रेयसी, उनकी ही एक शिष्या तरुणी कवि परनेत दी गीले थी। यह जो भी हो, अपनी रचना में उन्होंने पति-प्रेम के आदर्श की ही स्थापना की है और उसकी व्यंजना में प्लीआद का एक पूर्वाभास मिलता है। कुछ चुने हुए शब्दों में, कल्पनाओं के कुछ चित्रों में, उनकी अनुभूति का आवेग इतना प्रवल हो उठता है कि पाठक के मन में उसकी प्रतिध्वनि हुए विना नहीं रह सकती—

> आं ला क्लार्ते द में देज़ीर फीनेब्र
> ले सेक फ्लेओर आं लेओर ओदेर विव्रों,
> ती म सरा ला मर् इनकोरप्तिब्ल
> कोंत्र ले वेर द मा मोरतालिते॥

"कवि का प्रेमादर्श है सुरभिपूर्ण अमर वृक्ष जिसे विकृति स्पर्श नहीं कर सकती; कवि की मृत्युलोक की कविता उस तक पहुँच नहीं सकती। कवि-कल्पना में विषण्ण वासना फूटकर निकलना चाहती है और शुष्क पुष्प में भी प्राणपूर्ण घ्राण है।"

'लिओं कविगोष्ठी' की विशेषता ही है रहस्यपूर्ण प्रेम और इसी विशेषता का अनुसरण कर परनेत की कविताएँ और भी दुर्बोध्य हो उठीं। गिल कोरोजे ने अफलातून के आदर्श प्रेम का ही अनुसरण किया है, लेकिन 'नाईटिंगैल की कहानी' में अभिव्यक्ति आपेक्षिक रूप से अधिक सरल है। युवक फ्लोरां, योलांद के प्रेम में अभिभूत है, लेकिन योलांद कहती है, 'प्रेम नीच वासनाओं की पूर्ति नहीं है, वह है मनुष्य की देवत्व-प्राप्ति का साधन, जिसके दो दार्शनिक नाम हैं, नैतिक गुण और प्राकृतिक गुण। योलांद उसे ज्ञान प्राप्त करने का निर्देश देती है। तीन वर्ष अरस्तू, सिसेरो, प्लिनी और अफ़लातून का अध्ययन कर फ्लोरां पुनः योलांद के पास लौट आता है।

लेकिन उसका एक अनुरोध और है—नाइटिंगेल अपनी प्रेयसी से पृथक् होकर कहाँ जाता है ? फ्लोरां पुनः पुस्तकों में मग्न हो जाता है, लेकिन उसे कोई उत्तर ढूँढ़े नहीं मिलता। अन्त में एक अनुभवी वृद्ध बताता है कि पुरुष और नारी—नाइटिंगेल एक हरी डाल पर मिलते हैं; परन्तु मिलन के बाद पुरुष नाइटिंगेल एक सूखी डाल पर जा बैठता है और नहा-धोकर प्रकृतिस्थ होता है। फ्लोरां यह सूचना देता है और योलांद उससे निष्कर्ष निकालती है कि 'फ्लोरां यह याद रखे कि योलांद के प्रति उसके प्रेम ने उसे बुद्धिमान् और अच्छा बनाया है, लेकिन नाइटिंगेल की भाँति प्रेम-वासना से प्रलुब्ध होकर उसे हरी डाल से गिरकर सूखी डाल पर जा बैठना न पड़े।' कोरोज़े 'लिओं कविगोष्ठी' के अन्तर्भुक्त नहीं हैं, परन्तु अफलातून के आदर्श प्रेम का प्रभाव गोष्ठी के बाहर भी बहुत दूर तक फैला हुआ था।

'लिओं मणिमाला' की मध्यमणि थी लूई लाबे (?-१५६५)। एक अन्य रमणी को उत्सर्गीकृत अपनी रचना (कृतियाँ) के प्रारम्भिक भाग में ही उन्होंने योग्यता और संस्कृति में महिलाओं के अधिकार का समर्थन कलात्मक, परन्तु स्पष्ट शब्दों में किया है। नव-जागरण की श्रेष्ठ कविताओं में भी परम्परा का एक सुर ध्वनित होता है। बाह्य रूप में वे जकड़ी हुई हैं। परन्तु लूई लाबे के शोक-गीतों में यह कृत्रिमता नहीं दिखाई देती है; उनमें हृदय के उद्गार ज्यों के त्यों सुनाई पड़ते हैं। उनकी चतुर्दश-पदी कविताओं में भी प्रबल हृदयावेग का वही सरल सुर है। उनके गद्य में तो मोती की झलक है। 'देबा द फोली ए आमूर', प्रेम और मूर्खता का वाद-विवाद, की भाषा और शैली लोचदार है, उसके चातुर्य और सौंदर्य के नीचे अर्थ-गाम्भीर्य है और जीवन तथा अनुभूति की जटिलताओं का एक प्रखर बोध है। उनकी कृतियों का सैद्धान्तिक आधार साहसपूर्ण है क्योंकि सदियों के दरबारी प्रेम के विरुद्ध उन्होंने विवाहित प्रेम को ही एक परिपूर्ण आदर्श घोषित किया है।

आंतोआं हेरोए (१४९२-१५६८)—का जन्म पेरिस में हुआ था। लिओं से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल इतना ही है कि उनकी रचना

'पारफैक्ट आमी' लिओं में मुद्रित की गयी थी। लेकिन लिओं के कवि-दल से उनका एक आध्यात्मिक सम्बन्ध है क्योंकि प्रेम के आदर्शवादी और नैतिक रूप को ही उन्होंने प्रकाशित किया है, जिसका उद्गम प्लेटो (अफलातून) के आदर्श प्रेम से हुआ है। यद्यपि इस रचना में यह स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु इसके पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि नायिका एक विवाहिता वधू है जिसके प्रेम की परिणति में एक सम्पूर्ण जीवन-काल लग जाता है। हेरोए के आन्तरिक दृष्टिकोण में पेट्रार्क और उनके साथी तथा अनुयायी केवल अमूर्त पृथक्कृत गुणों का प्रदर्शन मात्र करते हैं और इस प्रकार अवास्तविकताओं का जाल रचते हैं, परन्तु दो आत्माओं और दो शरीरों का मिलन एक अति वास्तविक अनुभव है। इसमें अति प्राकृतिक तत्त्व का भी वे समावेश करते हैं परन्तु इसका संग्रह वे अफलातून से आगे चलकर ईसाई धर्म से करते हैं। उनकी रचना में रमणी ही नायिका है और वही प्रेम को भाषा प्रदान करती है। गल्प साहित्य की नायिकाओं का यह पूर्वाभास है।

मारगरित द नावार (१४९२-१५४९)—राजा प्रथम फ्रांसोआ की बहन तथा क्रमानुसार आलान्सों के ड्यूक आर नावार के राजा की पत्नी मारगरित (मारगारेट) अपने समय की महामहिमान्विता नारी थी। फ्रेंच नवजागरण की वह एक अति सुसंस्कृत और गुणी महिला थी और उसमें मानो नवजागरण की मुख्य धाराओं का संगम हुआ था। वह लेखकों और चिन्तकों की मित्र तथा आश्रयदाता थी और स्वयं भी उसने बहुत कुछ लिखा और उस युग के दार्शनिक तथा धार्मिक आन्दोलनों में गहरी दिलचस्पी भी ली।

कवि के रूप में उसकी कृति परिपूर्ण है, परन्तु कलापक्ष की न्यूनता के कारण उच्चांग साहित्य में उसे कोई विशिष्ट स्थान नहीं मिल सका। उसमें एक क्रियाशील मानस के निरालेपन और जीवन के गहनतम अनुभवों से परिपूर्ण हृदय की अभिव्यक्ति है। एक गुण की कमी उसमें है; उसके शब्द-विन्यास या वाक्यविन्यास में संगीत की झंकार नहीं है और न कल्पनाओं

के उद्भावन की क्षमता। अवशिष्ट सभी गुणों, विशेष कर, नारीसुलभ गुणों की वह अधिकारिणी थी; कला-कौशल, रमणीयता और शालीनता। उसके जीवनकाल में प्रकाशित कविताओं को मारो की परिपाटी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मारो के पद्य-पत्रों का उत्तर भी उसने सुललित छन्दों में ही दिया। इन हलके पदों में भी कभी-कभी आध्यात्मिक तथा भक्तिभाव पूर्ण गम्भीर ध्वनि सुनाई देती है, जिसकी आशा उसकी -जैसी स्थिति वाले व्यक्ति से साधारणतः नहीं की जाती है।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में तथा उसके वाद, उसकी अनेक नयी रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं। और अब यह कहा जा सकता है कि आत्मनिष्ठ काव्य-रचना में वह अग्रणियों में से एक थी, जिसने अपने चिन्तनशील मन की सूक्ष्मतम कार्यप्रणालियों को प्रकट कर दिखाया है और दुनिया के सम्बन्ध में निराशा की तथा, जो शान्ति एक मात्र ईश्वर में मिलती है उसके सम्बन्ध में, अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना अत्यन्त आन्तरिकता के साथ की है। 'ल नाविर' और 'ले प्रिज़ों' उसकी लाक्षणिक कविताएँ हैं, जिनके कुछ अंशों में, उसके प्रायः समसामयिक डॉन की तल्लीन बुद्धिवादिता का स्मरण हो आता है, यद्यपि डॉन की भयावह दीप्ति उसमें नहीं है। अपने भावों और विचारों को सीधे-सादे छन्दों में प्रकट करने में ही वह सन्तुष्ट थी। उसके सबसे सफल गीत—'आध्यात्मिक गीत'—और छोटे हैं तथा उनके संगठन में परस्पर-सम्बद्धता अधिक है।

मृत्यु के बाद, 'हेस्टामेरन' की लेखिका के नाते ही उसे विशेष रूप से ख्याति प्राप्त हुई। यह गद्य में ७० से अधिक कहानियों का संग्रह है। यद्यपि धनी तथा साधारण पाठकों का अवकाश के समय मनोरंजन ही इनका घोषित उद्देश्य है तथापि इनके पीछे एक गम्भीर उद्देश्य भी दिखाई पड़ता है। मनोहर अथवा कुख्यात जो व्यक्तिगत घटनाएँ दरबार की एक विदुषी महिला के कानों में पड़ीं, उन्हीं से कहानियों की सामग्री ली गयी है, परन्तु पृष्ठभूमि में लेखिका का सजीव नैतिक व्यक्तित्व होने के कारण कहानियों में एक तीखापन आ गया है। सोलहवीं शती की सुसंस्कृत

गोष्ठियों में भी कथनोपकथन का जो लहजा था और जिसके सम्बन्ध में मारगरित का एक निर्लिप्त, सहनशील दृष्टिकोण था, वह हमें कुछ चकित-सा कर देता है। रक्त-मांस के शरीर की दुर्बलताओं के प्रति उसका आमोदपूर्ण दृष्टिकोण नहीं बल्कि एक उदार दृष्टिकोण था जिसमें निराशा का भी रंग लगा हुआ था। कहानियों में कई जगह धर्मसुधार के प्रति झुकाव बहुत स्पष्ट है और साधुओं की कामुकता को तो प्रमुख स्थान दिया गया है। जो एक दर्जन लोग बारी-बारी से बोलते हैं और जिनमें लेखिका भी शामिल है, उनका ऐतिहासिक अस्तित्व प्रायः छिप नहीं पाता। कहानियों की शैली सरल है, परन्तु भाषा समृद्ध नहीं है। कथावस्तु अति साधारण है, परन्तु मारगरित-युग की रीति, नीति और रुचि का चित्र उन कहानियों में मिलता है।

इस प्रकार प्लीआद से पहले फ्रेंच काव्य नगण्य नहीं है। इसमें मौलिकता और अन्तर्निहित अर्थपूर्णता के लक्षण हैं। अभाव कलापूर्ण उद्देश्य का है जिससे काव्य-रूप को प्रेरणा या पथनिर्देश मिलता है। मारो तथा उसके दल के काव्य में रचना-कौशल है, लेकिन वह अतीत के ढाँचे में ही ढला हुआ है। जिस नवोत्साह का अभाव था उसकी पूर्ति प्लीआद ने की। यद्यपि अनुकरण की आवश्यकता पर उसने अत्यधिक बल दिया, परन्तु साथ ही श्रेष्ठ साहित्य की उच्चाकांक्षाओं तथा कृतियों के लिए भी उसने निश्चयात्मक रूप से द्वार उन्मुक्त कर दिया। यदि उसकी विजय स्थायी हुई होती तो आधुनिक गीति-काव्य का, जिसके आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी विकास के लिए सोलहवीं शती में ही बीज बो दिये गये थे, आविर्भाव कई सौ वर्ष पहले हो गया होता।

दसवाँ अध्याय

प्लीआद कवि

सोलहवीं शती के प्रायः बीचोबीच फ्रेंच साहित्य में नये आन्दोलन की सृष्टि हुई, जिसका जोड़ तीन शताब्दियों के बाद केवल फ्रांस में ही मिलता है। इस आन्दोलन के पुरोभाग में सात कवियों की जो गोष्ठी थी उसे ही प्लीआद का नाम दिया जाता है। रॉनसार ही इस गोष्ठी के निर्विवाद नेता हैं, परन्तु इस आन्दोलन को सबसे पहले जाक पेलेतिये और डोरा जैसे शिक्षकों से प्रेरणा मिली। पेरिस के कालेज द कोकेरे में डोरा ग्रीक पढ़ाते थे। उन्होंने रॉनसार, दी बेले और वेइफ़ जैसे अपने शिष्यों में प्राचीन साहित्य को पुनः प्रकाश में लाने का एक उत्साह भर दिया। इन तीनों के साथ लिओं गोष्ठी के पॉन्टस द तियार, कॉलेज द वांकूर के जोदेल आर रेमी बेले आ मिले और शिक्षक डोरा को मिलाकर सात व्यक्तियों की एक गोष्ठी की स्थापना हुई। इस गोष्ठी ने जो आन्दोलन खड़ा किया उसका मुख्य उद्देश्य फ्रेंच भाषा तथा उसके मुख्य साहित्यिक रूपों को प्राचीन ग्रीक और लैटिन साहित्य के स्तर पर लाना था। उन्होंने यह घोषणा की कि फ्रेंच भाषा तथा साहित्य को आधुनिक विश्वविद्यालय में आदरणीय स्थान मिलना चाहिए और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे ग्रीक तथा लैटिन के माध्यम से सुसमृद्ध करना होगा। ग्रीक या लैटिन साहित्य को फ्रेंच में रूपान्तरित करना इस आन्दोलन का उद्देश्य नहीं था। वे केवल गुणों का अनुकरण करना चाहते थे जिससे फ्रेंच भाषा या साहित्य की मौलिकता नष्ट न हो। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर दी बेले ने 'देफेन्स ए इलस्त्राशिओं द लांग फ्रांसोआ' शीर्षक निबन्ध प्रस्तुत किया जिसे प्लीआद का घोषणा-पत्र कहा जा सकता

है। रॉनसार के तरुण दल का पहला कार्य यह दिखलाना था कि पुरानी कविता मर चुकी थी और उस रिक्त स्थान की पूर्ति वे श्रेष्ठतर सामग्रियों से कर सकते थे। उन्होंने शब्दाडम्बरपूर्ण प्रथागत काव्य की निंदा की, शाही दरबार के कवि मेलैं द सैं गेले की उत्साहहीन इटलीआना पर वार किया और मारो की गोष्ठी को भी, जिसका अभी तक बोलबाला था, अधीरता के साथ एक ओर ढकेल दिया। तकनीकी क्षेत्र में रोंदो और बैलड-जैसे मध्ययुगीन रूपों को उन्होंने प्राय: मिटा-सा ही दिया और उनके स्थान पर सॉनेट (चतुर्दशपदी) और ओड (सम्बोध कविता) की स्थापना की। उस गोष्ठी के सदस्यों की व्यक्तिगत कृतियों के पृथक् विवेचन से ही तत्कालीन आन्दोलन का रूप और स्पष्ट हो सकता है।

पीएर द रॉनसार (१५२४—१५८५)—लोआर नदी के तट पर अवस्थित वांदमोआ प्रान्त में उनका जन्म हुआ। उनके पिता राजा फ्रांसिस के दरबारियों में थे और दस वर्ष की अवस्था में ही वे भी दरबारी जीवन में शामिल हो गये। फ्रेंच राजदूतों के साथ उन्हें ग्रेट ब्रिटेन घूमने का भी मौका मिला। परन्तु स्वल्पावस्था में ही कठिन रोग से आक्रान्त होने के कारण उन्हें दरबारी जीवन छोड़ना पड़ा। स्वास्थ्य लाभ करने पर भी वे बधिर हो गये और मानो इस क्षति की पूर्ति के लिए ही उन्होंने साहित्य पर अपनी पूरी शक्ति न्योछावर कर दी। कोकेरे कालेज में वे अतिशय अध्ययनशील विद्यार्थी थे और अपने सहपाठी दी बेले के साथ पहले से ही उन्होंने प्राचीन लेखकों के अनुकरण और अध्ययन के द्वारा फ्रेंच भाषा तथा साहित्य का सुधार अपना उद्देश्य बना लिया था। दीबेले के 'फ्रेंच भाषा का समर्थन तथा उदाहरणात्मक प्रयोग' के रूप में गोष्ठी का घोषणापत्र १५४९ ई० में प्रकाशित हुआ और तदन्तर्गत सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रदर्शन के रूप में रोनजार के ओड का प्रकाशन १५५० ई० में हुआ। ओड, विभिन्न मात्रा वाली उच्च भाव-पूर्ण छोटी गीत-कविता का नाम है। किसी को सम्बोधित कर ही ओड लिखा जाता है। "फ्रेंच के उदाहरणात्मक प्रयोग" का मोटा सिद्धान्त यह है कि उस समय में प्रचलित

रोंदो तथा दशपदी छन्द अत्यन्त सहज हैं, उनकी भाषा सबुक्कड़ी है और उनकी रचना में गाम्भीर्य तथा कला का अभाव है। 'डेफेंस' के रचयिता के अनुसार होरेशस की 'ओड' के प्रकार की कविताओं को 'शांसों' का स्थान लेना चाहिए, चतुर्दशपदी गीतों को दशपदी और अष्टपदी छन्दों का स्थान लेना चाहिए और नियमबद्ध दुःखान्त तथा सुखान्त नाटकों को 'मोरालिते' तथा 'प्रहसनों' का स्थान लेना चाहिए। दी वेले ने यह प्रमाणित करने का पूरा प्रयत्न किया कि साधारण और स्वाभाविक भाषा उच्चांग, अमर काव्य की रचना के लिए काफी नहीं है। रोनजार ने 'ओड' की रचना कर इस प्रमाण को पुष्ट किया। 'ओड' के प्रारम्भिक संकलन की भूमिका में रोनजार ने और 'लोलिव' के दूसरे संस्करण की भूमिका में दी वेले ने उपर्युक्त सिद्धान्तों का और भी स्पष्टीकरण किया। १५५९ ई० में रोनजार ने 'आमूर द कासान्द्र' की रचना की और १५५३ ई० में 'हिम्,' 'ल बोकाज रोयाल,' 'ले जामूर द मारी' तथा चतुर्दशपदी गीतों आदि की रचना की, जिन सब को मिलाकर चार खण्डों के एक संग्रह के रूप में सन् १५६० में प्रकाशित किया गया। रोनजार राजदरबार के एक प्रिय कवि थे और नवम चार्ल्स के सिंहासनारोहण के बाद वे राजा के और अधिक प्रिय पात्र बन गये। तदनन्तर दस वर्ष तक उन्होंने अनेक दरबारी कविताएँ लिखीं और कुछ अपनी पसन्द की भी। १५७२ में उनकी सबसे महत्वाकांक्षी रचना 'फ्रांसिआद' का पहला भाग प्रकाशित हुआ। परन्तु यह काव्य अनाकर्षक ही नहीं प्रत्युत उनकी सबसे अधिक असफल रचना भी है। फिर भी तत्कालीन फ्रेंच विद्वत्-समाज में इस काव्य का और उनकी 'ओड्' का प्रचुर समादर हुआ था और उन्होंने गर्व के साथ यह अनुभव किया कि फ्रेंच साहित्य का स्तर काफी ऊँचा हो चुका है। 'फ्रांसिआद' में रोनजार ने मृत अतीत को जीवित करने की चेष्टा की और उसमें वे असफल रहे, परन्तु उनकी ओड् की कविताओं के संगीत-माधुर्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। एक सामान्य नमूना ही इसके लिए काफी है—

"ल जूर पुस ला नुई
ए ला नुई सोम्ब्र
पुस ल जूर की लुई
दीन ओव्स्क्योर ओम्ब्र।
लोताँम सुई लेस्ते
ए लाप्र राज़
दे व्हां नापोआं एते
आप्रे लोराज़॥"

(दिन रात को हटा देता है तथा रात दिवालोक को मिटा देती है और पतझड़ गर्मी के पीछे हो लेता है, जब कि क्रुद्ध आँधी के बाद हवा मानों चलती ही नहीं।)

चार्ल्स के दरबार से विदा लेकर जब वे अपने प्रान्त में जाकर अवसर-प्राप्त जीवन विताने लगे तो उनकी काव्य-प्रतिभा अपने शिखर पर जा पहुँची। उस समय लिखी गयीं 'आमूर' तथा 'सोनेत् पुर हेलेन' आदि उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। हेलेन की निम्नलिखित पंक्तियाँ तो कविता-जगत् में सदा अमर रहेंगी—

"कां भू सरे वियां विये, ओ सोआर, आ ला शान्देल,
आंसी ओप्रे द फ़ो दव्हिदां ए फ़िला।
दिरे शांता में वेर, आं भू एमरवेइयां,
रोनजार म सेलेब्रे दी तांप क जेते बेल॥"

(जब तुम वृद्धावस्था प्राप्त करोगी और आग की टेढ़ी-मेढ़ी लपटों के पास बैठी हुई मेरी कविता पढ़ती होगी तो तुम विस्मित होकर कहोगी—'जब मैं एक सुन्दरी थी, उस समय के मेरे सौन्दर्य को रोनजार ने महिमा-मण्डित कर रखा है।' इस उदास भावना का कि गुलाब, यौवन या सौन्दर्य चिरस्थायी नहीं है, परन्तु प्रेम है, यह एक सुन्दर जीवित चित्र है।) 'भिन्यॉन्, आलां, वोआर सि ला रोज' आदि पंक्तियों का वैभव अतुलनीय है।

अपने युग में रोनजार कवि सम्राट् कहलाते थे, परन्तु परवर्ती युग में मालहर्ब, बोआलो आदि कवियों ने उन्हें कविसम्प्रदाय से ही प्रायः बहिष्कृत कर दिया और तदनन्तर ह्यूगो, सैं ब्व्ह् आदि रोमाण्टिक कवियों ने उनका मानो पुनराविष्कार किया और तब से उनकी ख्याति को कभी धक्का नहीं पहुँचा। फ्रेंच साहित्य उनकी महान् देन की उपेक्षा नहीं कर सकता।

दी बेले (१५२२—६०)—प्लीआद गोष्ठी में रोनजार के बाद ही दी बेले का स्थान है। यदि रचनाओं के आयतन को छोड़कर केवल रचना-सौष्ठव को ही ध्यान में रखा जाय तो उनका स्थान रोनजार से भी ऊपर है, क्योंकि उनकी प्रत्येक रचना का स्तर बहुत ऊँचा है। 'देफेन्स ए इलस्त्राशिओं द ला लांग फ्रांसोआ' के रचयिता के रूप में उनके नाम का उल्लेख पहले ही आ चुका है। चतुर्दशपदी गीतों का प्रारम्भ तो उनके पहले ही हो चुका था, परन्तु एक दक्ष कवि के रूप में उन्हें ही फ्रेंच सॉनेट का सबसे पहला गीतकार कहा जा सकता है। रोनजार के 'आमूर द कासान्द्र्' के पदों की तुलना में उनके गीतों का पद-लालित्य और वैचित्र्य अधिक है। रोनजार के काव्य सिद्धान्तों के प्रयोग का पहला रूप दी बेले का 'लोलिव' है जो सम्भवतः विओल (मामोआस्ल द) का ही वर्णनान्तर है। लोलिव के सॉनेट पेट्रार्क के नमूने पर ही लिखे गये हैं, अतएव अफलातूनी आदर्शवाद की छाप इस पर मौजूद है। यह आदर्शवाद मस्तिष्क की ही एक प्रक्रिया है, हृदय की अनुभूति नहीं। परन्तु वेदना की चेतना के कारण, जो कवित्व का एक श्रेष्ठ उपादान है, इन गीतों में माधुर्य आ गया है। वेदना की अनुभूति कवि के जीवन में आगे चलकर और तीव्र होती गयी है। कार्डिनल दी बेले के, जिनके साथ एक समय रॉबले भी रह चुके थे, वे सम्बन्ध में भाई लगते थे। लोलिव की रचना के थोड़े ही दिनों बाद वे कार्डिनल के साथ इटली गये। वहाँ पोप के दरबार की कूटनीतिक चालों से वे अप्रसन्न हो उठे और साथ ही अपने भाई की नजरों में भी बुरे बन गये। अपने परिवार के एक शक्तिशाली सदस्य के संरक्षण से वंचित होने के कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उनके स्वल्पायु जीवन का अवशिष्ट समय दुःख में ही बीता।

इटली में रहते समय ही अपने गीत-ग्रन्थ 'रग्रेत' (अनुताप) की रचना का आरम्भ उन्होंने कर दिया था। 'रोम की प्राचीन कृतियाँ' भी उसी समय लिखी गयी थीं। इसी के आधार पर स्पेन्सर ने अंग्रेजी में 'रोम के भग्नावशेष' की रचना की। दोनों रचनाओं में विषाद की जो छाया है वह कवि की तत्कालीन मानसिक अवस्था का ही परिचायक है। बारह शब्दांशों की पंक्तियों में रचित 'रग्रेत' के नियमित छन्दों की परिधि व्यापक है, और गति स्वच्छन्द है। भाषा प्रांजल है परन्तु इससे काव्यशक्ति में कोई न्यूनता नहीं आयी है। इन पंक्तियों में कहीं-कहीं प्रतीकवाद का भी एक क्षीण आभास मिलता है। दी बेले की प्रतिभा बहुमुखी है। सॉनेट (चतुर्दशपदी गीत) के पदों में ही उन्होंने हास्य रस तथा व्यंग्य भी समाविष्ट किया है। 'जो रिस्तीक' में ग्रामीण आत्मा का एक लावण्यमय और मनोरम प्रकाश है। उनकी कवि-प्रतिभा ने कुत्ता, बिल्ली-जैसे पालतू जानवरों को भी निकटतम आत्मीय बना दिया है। "एपिताफ दं पति शियां", और "एपिताफ द शा" जैसी कविताएँ फ्रेंच भाषा में बहुत कम हैं। स्वल्पायु में ही उनकी प्रतिभा के विकास का द्वार रुद्ध हो गया, यह दुर्भाग्य की बात है।

अन्य कवि

प्लीआद "सप्त-छाप" के पाँच अवशिष्ट कवियों में डोरा का नाम पहले ही आ चुका है। कवि के रूप में नहीं बल्कि गुरु के रूप में ही उनकी ख्याति अधिक है। बेलो को इस गोष्ठी का मुख्य वर्णनात्मक तथा अनुवादक कवि कहा जा सकता है। 'आनाक्रैऑन' को उन्होंने पद्य में अनूदित किया और 'एक्लेजिआस्त', 'साँग ऑव सलोमन' तथा 'आराट्स' के 'फेनोमेना' का भी उन्होंने अनुवाद किया। 'बरजरी' में ग्राम्य जीवन और उसके आकर्षणों का वर्णन गद्य-पद्य के मिश्रित रूप में किया है। 'प्रेम और रत्नों का नवीन विनिमय' एक विचित्र प्रकार की मौलिक रचना है। उनकी एक कविता "आव्रिल" (अप्रैल मास) की लोकप्रियता रोंनजार या दी बेले की श्रेष्ठ कविताओं की लोकप्रियता से कम नहीं है। आन्तोआं द बफ ने अपने अन्य

सहयोगियों की भाँति ही षोडस-पदी गीतों में प्रेम-काव्यों से अपनी रचना का प्रारम्भ किया। 'मेटेओर', 'मीम' तथा 'आंसीनमां ए प्रोवर्ब' में उन्होंने विज्ञान, राजनीति आदि से भी प्रेरणा ली। उन्होंने शब्दों के हिज्जों में सुधार करने की चेष्टा की और प्राचीन मात्राओं को आधुनिक भाषाओं में लाने का भी प्रयत्न किया, यद्यपि इन दोनों उद्देश्यों में वे प्रायः असफल रहे। उन्हीं के सुझाव पर राजा ने (१५७० ई०) 'संगीत-काव्य अकादमी' की स्थापना की। एतिएन् जोदेल की ख्याति नाटककार के रूप में ही अधिक है। 'कांत्र आमूर' (विरुद्ध प्रेम) में उन्होंने प्रिया की स्तुति की प्रचलित रीति से विदा लेकर एक निर्दयी महिला का निन्दावाद किया। पॉन्ट्स द तियार पादरी थे। गद्य और पद्य दोनों में उन्होंने रचना की और विज्ञान तथा दर्शन में भी उन्हें विशेष रुचि थी। राजनीति में भी उन्होंने सम्मान तथा साहसपूर्ण भाग लिया। 'प्रेमी की मूर्खताएँ' तीन खण्डों में उनकी कविताओं का संग्रह है। लिओं गोष्ठी और रोनजार के दल के बीच वे सेतु स्वरूप थे।

प्लीआद की साहित्यिक विरासत देखने में बहुत बड़ी नहीं है। इस आन्दोलन के प्रथम उत्साह के बाद ही धार्मिक और घरेलू झगड़े छिड़ गये और तीस वर्षों तक कला का प्रश्न गौण बना रहा। चतुर्थ हेनरी के बुद्धिमत्तापूर्ण शासन ने देश में शान्ति की स्थापना की और साथ ही साहित्यिक विचारों तथा रूपों के सुनियंत्रण की माँग भी बढ़ गयी। प्लीआद का भी यही आदर्श था लेकिन ऊपरी तौर पर उमंग और उत्साह की अधिकता के कारण, अति उच्चाकांक्षी काव्य-रचना के प्रयत्न के कारण तथा श्रेष्ठ ग्रन्थों के अनुकरण के अतिरेक के कारण प्लीआद का प्रयत्न लोगों को क्रान्तिकारी प्रतीत हुआ। यह विचार फैलने लग गया कि रोनजार तथा उनके साथियों ने राष्ट्रीय भाषा की स्वकीय प्रतिभा के साथ अन्याय किया है। अपने क्रम पर मालहर्ब ने जब फ्रेंच काव्य का सुधार किया तो उन्होंने भाषा की अव्यवस्थित स्थिति के विरुद्ध और रुचि की अनिश्चितता के विरुद्ध अपना सिर उठाया और रोनजार की उन्होंने तीव्र निन्दा की। परन्तु निन्दा करते हुए भी

मालहर्ब ने रोनजार का अनुकरण ही किया। साहित्य की धारा के निष्पक्ष समीक्षक को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्लीआद के प्रयत्नों में जिस आदर्शवाद और योग्यता का समावेश हुआ था उसका फ्रेंच साहित्य पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। उच्च उद्देश्य, नैतिक कर्त्तव्य और सौन्दर्यबोध, इस गोष्ठी की भविष्य के लिए विरासत स्वरूप हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

सोलहवीं शती के अन्तिम भाग का काव्य

रोनजार की मृत्यु के समय प्लीआद का प्रभाव प्राय: समाप्त होता जान पड़ रहा था। परन्तु वह प्रभाव बहुत गहराई तक पैठ चुका था और फ्रेंच काव्य के विकास में वह अपना काम करता रहा। धार्मिक संघर्ष तथा गृह-युद्ध ने कुछ काल तक नव-जागरण-आंदोलन की प्रगति को रोक रखा, परन्तु धार्मिक संघर्ष से ही कुछ कवियों ने प्रेरणा ग्रहण की। स्वयं रोन-जार के ही 'हिम' तथा 'दिसकूर' और दी वार्ता तथा दोबिनिये की कवि-ताएँ इसके उदाहरण स्वरूप हैं। दी वार्ता तथा दोबिनिये प्रोटेस्टेन्ट कवि थे और मुकाबले में कैथलिक कवि भी थे।

दी वार्ता (१५४४--१५९०)--'जुडिथ', 'युरानी' तथा 'ल त्रिओ-म्प्फ़ द ला फ़ोआ' आदि वार्ता की प्रथम कृतियों में कल्पना-शक्ति, सहज वर्णन की भंगिमा और रंगीलेपन का परिचय मिलता है। शब्द-सम्पत् की प्रचु-रता है। ग्रीक तथा लैटिन शब्दों के प्रयोग की प्लीआद की प्रवृत्ति को उन्होंने चरम सीमा तक पहुँचा दिया। विशेषणों के प्रथम शब्दांश की पुन-रावृत्ति का एक नया प्रयोग भी उन्होंने चला दिया, जैसे पे-पेतिलां सू-सुफ्लां, बू-बुईलनां आदि। इन आविष्कारों से क्षति ही अधिक हुई और फ्रेंच साहित्य ने उन्हें स्वीकार भी नहीं किया। परन्तु उनकी प्रतिभा को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। उनकी सबसे प्रसिद्ध रचनाएँ हैं 'सृष्टि का प्रथम सप्ताह' और 'सृष्टि का दूसरा सप्ताह'। इनमें पहली रचना तो समाप्त हो पायी थी, परन्तु दूसरी असमाप्त ही रह गयी। पहली में ग्रह-नक्षत्रादि से लेकर पशु और मानव की सृष्टि के सात दिनों का वर्णन है। दूसरे सप्ताह की सृष्टि

के वर्णन में, कहानी को बाइबिल-वर्णित काल से और आगे बढ़ाया गया है, परन्तु आधे पर ही कहानी रुक गयी है। चन्द वर्षों में ही प्रथम ग्रन्थ के ३० संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। सिल्वेस्त्र् ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया, मिल्टन को इससे प्रेरणा मिली और गेटे ने इसकी प्रशंसा की।

आग्रिप्पा दोबिनिये (१५५१-१६३०)—दोबिनिये कवि होने के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण गद्य-लेखक भी थे। ६ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने, ग्रीक, लैटिन और हिब्रू पढ़ी थी। उनके पिता प्रोटेस्टेन्ट थे। नौ वर्ष की अवस्था में जब दोबिनिये घोड़े पर सवार होकर अपने पिता के साथ आम्बी-आस होकर गुजर रहे थे, तो उनके पिता ने उन कटे हुए मुण्डों को दिखाया जो ह्यूजनॉट (प्रोटेस्टेन्ट धर्म की एक शाखा) विद्रोहियों के थे। धड़ से अलग, ये सिर चेतावनी के रूप में टाँग दिये गये थे। उसी स्थान पर दोबिनिये से यह प्रतिज्ञा करायी गयी कि इन स्वधर्मी मित्रों का वे बदला चुकायेंगे। इस प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने पूरी तरह किया और वर्षों तक वे युद्धक्षेत्र में लड़ते रहे। उन्होंने स्वयं कहा है कि बारह बार वे जख्मी हुए। वे बीस वर्ष तक नावार के राजा हेनरी के साथी और परामर्शदाता थे। हेनरी के कैथ-लिक धर्म स्वीकार करने से, जिसके कारण वे अपने सिंहासन पर सुप्रतिष्ठित हो सके और फ्रांस में भी शांति की स्थापना कर सके, कट्टर धर्म-मत वाले दोबिनिये को विशेष अप्रसन्नता हुई। कुछ समय के बाद अपने प्रभु को तो उन्होंने क्षमादान किया, लेकिन तेरहवें लुई के राज्यकाल में वे जेनीवा चले गये। जेनीवा में उनका स्वागत बड़े सम्मान के साथ किया गया और वहीं उन्होंने अपना अवशिष्ट जीवन बिताया।

दोबिनिये केवल सिपाही ही नहीं थे। कई विश्वविद्यालयों में उन्होंने क्लासिकल शिक्षा पायी और नावार तथा फ्रांस के कई दरबारों में भी वे सुपरिचित थे। उनकी प्रथम कविताएँ रोनजार के अनुकरण में प्रेम-संगीत के रूप में लिखी गयी थीं। लेकिन १५७५ ई० से, संगीन तौर पर जख्मी होने के बाद, उन्होंने तुच्छ विषयों को छोड़कर एक विचार-काव्य 'ले त्राजीक' की रचना प्रारम्भ की। ४० वर्ष तक वे इसमें लगे रहे और १६१६ ई० में

यह रचना प्रकाशित हुई। प्रायः दस हजार पंक्तियों की, सात खण्डों में (मीज़ेर, प्रैंस, ला शाम्ब्र दोरे, ले फ़ो, ले फ़ेर, व्हांजिआंस और जीजमां) लिखी गयी यह रचना फ्रेंच प्रोटेस्टेन्ट धर्म का एक युद्ध-महाकाव्य है। दी वार्ता की "समैं (सृष्टि का प्रथम सप्ताह) और दोविनिये की 'त्राजीक' दोनों द्वादश मात्रिक छन्दों में लिखी गयी हैं और इनके वाद गम्भीर प्रकार की कविताओं के लिए द्वादश मात्रा की एक परम्परा-सी ही वन गयी है। इस काव्य में अनुभूति और कल्पना का वल प्रथम से ही पाठक को अभिभूत कर देता है और हृदयावेग की प्रवलता के कारण कलापक्ष भी गौण वन जाता है। इस काव्य में समरूपता का अभाव है, परन्तु इसकी शक्तिशाली मौलिकता की प्रशंसा किये विना कोई नहीं रह सकता। यह एक उच्चांग दार्शनिक काव्य है और महान् फ्रेंच कविताओं में इसका स्थान सदा ऊँचा वना रहेगा।

देसपोर्त (१५४६--१६०६)--देसपोर्त राजा तृतीय हेनरी के प्रियपात्र थे और चतुर्थ हेनरी से भी उनका मैत्रीपूर्ण सम्वन्ध था। उन्होंने धार्मिक दीक्षा ली थी, परन्तु ईसाई संघ के वे नियमित सदस्य न थे। वे सफल दरबारी, कूटनीतिज्ञ और दरबार की महिलाओं के प्रियपात्र भी थे। रोनजार के दो प्रमुख शिष्यों में वे एक थे। उनकी कविताएँ दो प्रकार की हैं। काल्पनिक या वास्तविक नायिकाओं को लक्ष्य करके उन्होंने प्लीआद की किस्म के जो चतुर्दशपदी गीत लिखे हैं उनमें इतालियन या स्पेनिश नमूनों का अनुसरण बहुत दूर तक किया है। अन्य प्रकार की उनकी कविताएँ भक्तिमूलक हैं। इस दूसरी श्रेणी में बाइविल के भजन-संगीतों का अनुवाद भी सम्मिलित है। देसपोर्त की रचनाओं में अनुभूति की गहराई नहीं है, परन्तु उपयोगी शब्दों का चुनाव, सहजात बुद्धि, पद-लालित्य और ध्वनि-माधुर्य आदि गुणों के कारण अपनी श्रेणी के कवियों में उन्हें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका "इकारे" सॉनेट वास्तव में मनोहर है और आगे की पंक्तियाँ हमें डेनियेल या ड्रेटन की श्रेष्ठतम पंक्तियों की याद दिलाती हैं—

"सेस पुरकोआ ज केन्द्रे द मूरीर आं नेमां,
नां पुर फूईर ला मोर, में द पेओर सोलमां,
द पेर्द्र् मे दूलेओर, सी ज परदोआ ला व्ही।"

(प्यार करते हुए मुझे मृत्यु का जो भय होता है, वह इसलिए नहीं कि मौत से भागना चाहता हूँ, प्रत्युत भय मुझे यह है कि जीवन मैं खो दूँ तो मेरा विषाद भी खो जायेगा)।

बारहवाँ अध्याय

सोलहवीं शती के उत्तरार्ध की गद्य-रचना

आमियो (१५१३--९३)--सोलहवीं शती के पूर्वार्ध के गद्य लेखकों के प्रतिनिधि थे राबले और उत्तरार्ध के मोंतेई। इस शताब्दी में धर्म सम्बन्धी लेखकों में प्रथम थे काल्व्हें और इसी प्रकार विद्वत्ता के प्रतिनिधि थे आमियो। आमियो गरीब घराने के थे। प्रसिद्ध नावार कालेज में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और १९ वर्ष की अवस्था में वे स्नातक बने। विद्वज्जनों की आश्रयदात्री नावार की रानी मारगरित ने उन्हें बुर्ज के अध्यापक के पद पर प्रतिष्ठित किया। विश्वविद्यालय में क्लासिक्स के अध्यापन के कुछ वर्षों बाद उन्होंने दो ग्रीक ग्रन्थों, 'थीजिन्स' और 'चारीक्लिया' का अनुवाद किया। ये दी बेले के घोषणा-पत्र के प्रकाशन के तीन वर्ष पहले ही प्रकाशित किये गये थे। उस समय की रीति के अनुसार उनकी साहित्यिक ख्याति के पुरस्कार स्वरूप उन्हें एक गिरजे का भार दिया गया। दो राजकुमार, नवम चार्ल्स और हेनरी के शिक्षक भी वे नियुक्त किये गये। नवम चार्ल्स ने सिंहासनारोहण के बाद उन्हें ओक्सेर का पादरी बनाया और तृतीय हेनरी ने भी अपने राज्य-काल में उन्हें सम्मानित किया।

अनुवादक के रूप में ही आमियो की विशेष ख्याति है। हेलिओडोरस के ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने डियोडोरस सिकुलस के ग्रन्थों का भी अनुवाद किया। एक ग्रीक उपन्यास 'डाफनिस और क्लो' उन्होंने अनूदित किया। ग्रन्थकारों का उनका चुनाव प्रथम दृष्टि से कुछ अद्भत-सा ही जान पड़ता है, लेकिन वह चुनाव, चाहे उन्होंने अनजान में किया हो या जान-बूझकर, उस काल के लिए पूर्णतः उपयोगी था। कल्पना-प्रसूत तथा देशाटन की

कहानी लोगों को बहुत प्रिय थी और उसके साथ प्रकृति का चित्रण तथा प्रेम-वार्ता का मिश्रण लोगों के लिए और भी आनन्ददायक था। व्यावहारिकता और नैतिकता के कारण प्लूटार्क में भी जन-समूह की रुचि थी। इन अनुवादों की सफलता का मुख्य कारण अनुवादक की योग्यता ही है। स्वयं मोंतेई ने मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की है। उनकी विद्वत्ता, उनका परिश्रम, उनके शब्दों की शुद्धता और सरलता वास्तव में प्रशंसनीय है। उन्होंने नये शब्दों की भी सृष्टि की, फलतः फ्रेंच गद्य के अग्रदूतों में उनकी गिनती सर्वथा उचित है।

डोले (१५०९-१५५४)—अनुवाद के क्षेत्र में एतिएन डोले का नाम भी उल्लेख-योग्य है। वे लैटिन के भी विद्वान् थे और ग्रन्थकार होने के साथ ही मुद्रक भी थे। सिसेरो के साहित्यिक भाषणों का अनुकरण करते हुए उन्होंने लैटिन में कई भाषण लिखे हैं। उन्होंने फ्रेंच व्याकरण पर कुछ पुस्तिकाएँ लिखीं, कुछ कविताओं की रचना की, प्रथम फ्रांसिस का एक संक्षिप्त इतिहास लिखा और प्लेटो की गोष्ठी के एक लेखक द्वारा रचित "एक्सिओकस" का अनुवाद किया जो उनकी मृत्यु का प्रत्यक्ष कारण बना। वह तीव्र धार्मिक संघर्ष का युग था और सामान्य कारण से ही उन्हें इस संघर्ष का शिकार बनना पड़ा। उस अवसर पर उन्होंने जो मृत्यु-गीत लिखा वह वास्तव में मर्मस्पर्शी है—"जब वे मुझे जला देंगे या फाँसी लगा देंगे तो नतीजा क्या होगा? मेरा शरीर मुर्दा बन जायेगा। लेकिन हाय! एक ऐसे व्यक्ति की निर्दय हत्या के लिए, जिसने कभी किसी का बुरा नहीं किया, क्या उन्हें कोई अनुताप न होगा? क्या मनुष्य की कीमत इतनी थोड़ी है? क्या वह कोई मक्खी है या कीड़ा जिसे तनिक भी सोचे बिना इतनी जल्दी विनष्ट किया जा सकता है? क्या मनुष्य को विज्ञान तथा गुण-सम्पन्न बनाना, सुशिक्षित और सुविकसित करना इतना सहज है कि घास-फूस की तरह उसे निर्मूल किया जाय? क्या एक महान् मानस की वे इतनी ही कीमत लगाते हैं?"

फोशे—साहित्यिक इतिहास का श्रीगणेश क्लोड फोशे ने किया।

पाण्डुलिपियों के आधार पर न.केवल उन्होंने मध्ययुगीन कवियों के इतिहास की ही रचना की, बल्कि एक स्वस्थ समालोचक की दृष्टि से ही इतिहास लिखा। वह इतिहास सर्वथा निर्मूल तो नहीं है, परन्तु एक अग्रदूत के रूप में फोशे का विशिष्ट स्थान है।

पासकिये (१५२९-१६१५)——एतिएन पासकिये ने छोटी अवस्था में ही कानूनी अध्ययन में आत्मनियोग किया और अन्त तक इस पेशे में वे लगे रहे। जेसुइट धर्म-सम्प्रदाय के विरुद्ध पेरिस विद्यालय की ओर से उनकी वकालत एक स्मरणीय घटना है। लेखक के दृष्टिकोण से उनकी रचनाएँ विस्तृत हैं। 'एक्ज़ोर्ताशिओं ओ प्रैंस' में उन्होंने विवेक-स्वतंत्रता की जोरदार अपील की है। उनकी मुख्य रचना है 'रेशर्श द ला फ्रांस' (फ्रांस सम्बन्धी खोज), यद्यपि उनके पत्रों का महत्त्व भी कम नहीं है। रेशर्श की रचना में सम्बद्धता का कुछ अभाव है, परन्तु अतीत की खोज में राजनीति, इतिहास, सामाजिक परिवर्तन और साहित्य के इतिहास पर भी उन्होंने दिलचस्प प्रकाश डाला है। गहन विषयों पर, बातचीत के ढंग से सजीव चर्चा के कारण उनकी शैली विशेष रूप से रमणीय हो गयी है।

हांरी एसतिएन (१५३१-९८)——मुद्रक, प्रकाशक तथा विद्वानों के एक प्रख्यात वंशधर हांरी एसतिएन में विद्वत्ता तथा साहित्यिक प्रतिभा का उसी प्रकार का मिलन हुआ था जिस प्रकार कि आमियों में। भाषातत्त्व सम्बन्धी उनकी तीन पुस्तकें फ्रेंच भाषा में लैटिन तथा इटालियन के प्रयोग और अनुकरण के विरुद्ध लिखी गयी थीं। भाषागत राष्ट्रीयता उनकी एक विशेषता है। 'आपोलोजी पुर हेरोडोट' तथा 'थेसोरस लिंगुई ग्रेसी' का एक ऐतिहासिक महत्त्व है, परन्तु साधारण पाठक के लिए उनका कोई आकर्षण नहीं है।

उस काल की अव्यवस्थित स्थिति में वातावरण वादानुवादपूर्ण था और धार्मिक तथा राजनीतिक विभेद साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हो रहे थे। एतिएन द ला बोएती ने, 'दिसकूर सीर ला सरविच्यूड' में गणतांत्रिक भावनाओं का उद्गार किया और बोर्दे ने 'ले सिस् लिव्र द ला रेपब्लिक' में निरं-

कुश राज्य और अराजकता के खतरों से बचते हुए एक बीच का रास्ता दिखाया। राजनीतिक दृष्टि से ही "मेनिपे का व्यंग्य" भी लिखा गया। यह एक विशिष्ट प्रकार की रचना है जिसे नरम दल "पोलिटीक" के सात सदस्यों ने मिलकर लिखा। इसमें कट्टर धार्मिक दल "लीग" के विरुद्ध श्लेष है। यह श्लेष प्रायः स्थूल है, परन्तु कहीं-कहीं राँबले या मोलिएर–जैसे ही सूक्ष्म श्लेष का प्रयोग किया गया है। अन्त में पिएर पियू, जो दल के नेता दोब्रे का ही प्रतिरूप है, मध्यवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में, अपने कटु तथा ओजपूर्ण लम्बे भाषणों में बताता है कि बड़ों की स्वार्थपूर्ण प्रतियोगिता के कारण और कट्टरपन्थियों द्वारा धर्म की छीछालेदर करने के कारण पीड़ित राष्ट्र को कितनी हानि पहुँच रही है। जनता और राजा दोनों ही शान्ति के लिए उत्सुक थे और इस रचना को तत्काल ही सफलता प्राप्त हुई।

ब्रान्तोम ने अपने व्यापक अनुभवों को आकर्षक रूप में लिपिबद्ध किया है। प्रख्यात पुरुषों के सम्बन्ध में, फ्रेंच तथा विदेशी कप्तानों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है और विभिन्न ग्रन्थों में प्रख्यात महिलाओं के सम्बन्ध में भी उन्होंने लिखा है। उनकी लेखनी में चमत्कार है, उनके चरित्र जीवित–जैसे लगते हैं, परन्तु उन चरित्रों के निन्दनीय रूपों पर उन्होंने जैसा प्रकाश डाला है वैसा किसी और रूप पर नहीं। विशेषतः यह इतिहास न होकर सुनी हुई कहानियों का ही संग्रह है। मोनलीक का स्मृतिग्रन्थ बिलकुल भिन्न प्रकार का है। वे एक बहादुर सिपाही थे और युद्ध सम्बन्धी घटनाओं को उन्होंने जिस प्रकार लिपिबद्ध किया है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। सैनिकों की तरह ही उन्होंने अपने शब्दों और वाक्यों को भी सुसंगठित किया है। हर एक वाक्य सीधे अपने उद्देश्य तक पहुँचता है, रास्ते में कोई गड़बड़ी नहीं हो पाती। उनके वर्णन से जटिल युद्ध का दृश्य भी ज्यामिति के नक्शे की तरह सुस्पष्ट हो उठता है।

तेरहवाँ अध्याय

नाट्य-साहित्य

जैसा कि स्वाभाविक ही था, प्लीआद का प्रभाव नाट्य-साहित्य पर भी पड़ा। दी बेले ने अपने घोषणा-पत्रों में कहा था कि फ्रेंच नाट्य-साहित्य को भी प्राचीन काल के श्रेष्ठ ग्रन्थों से पौष्टिक तत्त्व संग्रह करना चाहिए और इसके दो साल बाद ही जोदेल ने इस पुकार का उत्तर दिया। कुल बीस वर्ष की अवस्था में, १५५२ में जोदेल ने 'क्लिओपेत्र' (क्लिओपेट्रा) की रचना के द्वारा आधुनिक फ्रेंच दुःखान्त नाटक की नींव डाली। प्रायः उसी समय उन्होंने प्रथम सुखान्त नाटक 'ला रंकींत्र' की रचना की। प्लीआद की विजय से ही मध्ययुगीन नाट्य-साहित्य की समाप्ति नहीं हो गयी। वास्तविकता तो यह है कि सोलहवीं शती के मध्य तक मध्ययुगीन नाटकों की ही प्रधानता रही और १५८० में टामस ल कोक ने मिस्तेर की किस्म के एक उच्चांगी नाटक 'कैं' (केन) की रचना की। लेकिन विद्वज्जनों के उत्साह का आंशिक संचार जनसाधारण में भी हो चुका था और जनता भी एक प्रकार के नये नाटकों के स्वागत के लिए तैयार थी। प्रारम्भिक अवस्था में कॉलेज ही नयी नाट्यकला के केन्द्र स्वरूप थे जहाँ लैटिन नाट्य-साहित्य का अध्ययन होता रहा और अध्यापकों की देख-रेख में ये नाटक, पहले लैटिन में और बाद को फ्रेंच अनुवादों में खेले भी जाने लगे थे। उन्होंने, विषाद नाटकों के लिए सेनेका को, और सुखान्त नाटकों के लिए टेरेन्स को चुना। बाद को ग्रीक नाट्य-साहित्य का भी अध्ययन किया जाने लगा। फ्रेंच मौलिक नाटकों के लिए प्रेरणा इसी सूत्र से प्राप्त हुई। लेकिन ये नाटक हूबहू प्राचीन नमूने के अनुकरण पर ही लिखे गये। इस अनुकरण-

वृत्ति के कारण मौलिक नाट्य-प्रतिभा के विकास में कुछ समय लग गया।

पहले ही कहा जा चुका है कि प्रथम दुःखान्त तथा सुखान्त नियमित फ्रेंच नाटक लिखने का श्रेय एतिएन जोदेल को प्राप्त है। क्लिओपेट्रा में प्रायः पूर्णतः प्लूटार्क के विवरण का अनुसरण किया गया है; केवल आंतोआं (एन्टनी) की प्रेतात्मा में एक नये चरित्र की सृष्टि की गयी है। एन्टनी की प्रेतात्मा की एक लम्बी स्वगतोक्ति से ही प्रथम अंक का प्रारंभ होता है। इस प्रकार का लम्बा भाषण प्रारम्भिक फ्रेंच दुःखान्त नाटक की एक बहुत बड़ी त्रुटि है और प्रायः एक शताब्दी तक यह त्रुटि घटने के बजाय बढ़ती ही गयी है। एन्टनी की स्वगतोक्ति हो जाने के बाद, क्लिओपेट्रा, चारमिअम और इरास मंच पर खड़े होते हैं और रानी अपनी हताशा व्यक्त करती हुई मरने का इरादा घोषित करती है। तदनन्तर मनुष्य की स्वल्पायु पर विलाप करती हुई आलेक्ज़ाण्ड्रिया की रमणियों के सहगान से अंक का अन्त होता है। प्रेतात्मा की स्वगतोक्ति की गिनती न की जाय तो इस पहले अंक में एक ही दृश्य है और दूसरे अंक में भी एक ही दृश्य और एक ही सहगान है। इस दृश्य में आक्टेवियन, आग्रिप्पा और प्रोकुलियस क्लिओपेट्रा के भविष्य पर तर्क-वितर्क करते हैं। विजेता, एन्टनी की मृत्यु पर अनुतप्त है और क्लिओपेट्रा पर भी दया करने को प्रस्तुत है परन्तु उसके कर्मचारी उससे सहमत नहीं हैं। पर वे इस पर सहमत हैं कि क्लिओपेट्रा की देखरेख रखनी होगी ताकि वह आत्महत्या न कर पाये। तीसरे अंक में दो दृश्य और एक सहगान है। चौथे अंक में एक दृश्य और दो सहगान हैं। इस दृश्य में क्लिओ-पेट्रा मृत्यु के निश्चय पर सुदृढ़ हो जाती है। पाँचवा अंक अत्यन्त संक्षिप्त है। प्रोकुलियस रानी की मृत्यु की घोषणा करता है और उसके बाद सह-गान में एक विलाप है। सहगान ग्रीक नमूने के अनुसार हैं, जिनमें गायक-गायिका नाटक-वर्णित घटनाओं पर अपने मन्तव्य प्रकट करते हैं। इसमें काव्य-गुण के अतिरिक्त और कोई विशेषता नहीं है। प्रायः एक शताब्दी तक नये नाटक जोदेल के नमूने पर ही लिखे गये और सभी में त्रुटियाँ एक ही

प्रकार की हैं। इस युग के नाटकों में लम्बी स्वगतोक्तियों की भरमार है। एक श्रेष्ठ नाटककार गारनियेर के 'हिपोलाइट' में एक स्वगतोक्ति दो सौ पंक्तियों की है। अंकों में दृश्य-परिवर्तन प्रायः नहीं के बराबर है। नाटकीय क्रिया और नाटकीय अनिश्चय का बोध नाटककारों को नहीं है। नाटकीय चरित्र भी विकास-मुखी या जटिल नहीं है। नाटक गीत-प्रधान है और नाटककार विषाद की सृष्टि न कर करुण रस के संचार के लिए प्रयत्नशील है। सेनेका की वाग्मिता को अपना आदर्श बनाने तथा ग्रीक विषाद नाटक की एक ऊपरी व्याख्या मात्र के कारण ही इन त्रुटियों की उत्पत्ति हुई है। तथापि इस साधारण पृष्ठभूमि में कुछ नाटककार अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ गये हैं।

गारनिये के पहले, जोदेल के अनुयायियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की जाक ग्रेवैं ने, जिन्होंने नाटककार के अतिरिक्त कवि के रूप में भी ख्याति प्राप्त की है। ग्रेवैं का 'ला मोर द सीज़र' जोदेल के नाटक से भी श्रेष्ठतर है। इसके चरित्रों के संघर्ष में क्रियाशीलता की एक सूचना है। बारी-बारी से पुरुष तथा नारी छन्दों में लिखे गये इस नाटक में एक शक्ति है। सहगान करते हैं सीजर के मँजे हुए सिपाही, जो प्रचलित परम्परा से भिन्न है। इस नवीनता का समर्थन करते हुए ग्रेवैं ने लिखा है—"एक नयी दिशा में साहस के साथ अग्रसर होने की अनुमति हमें, है; विभिन्न राष्ट्रों के लिए विभिन्न क्रियाविधियाँ आवश्यक हैं।" परन्तु कार्यतः इस उपदेश का अनुसरण नहीं किया गया है। जँ द ला टेल के 'सोल फ्युरियो और' 'ले गाबाओनित' का फ्रांस में यथेष्ट समादर हुआ, परन्तु वास्तव में ये कृतियाँ उतनी श्रेष्ठ नहीं हैं। समालोचक के रूप में उन्हें काफी सफलता मिली। 'दुःखान्त नाट्य-कला' में उन्होंने होरेस के इस दृष्टिकोण का परित्याग किया है कि नीतिपूर्ण उपयोगिता कला का उद्देश्य है और अरस्तू के दृष्टिकोण को अपनाया है कि कला का उद्देश्य विशुद्ध आनन्द है। दर्शकों के हृदयावेग पर ध्यान देने तथा क्रियाशीलता की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया है। दुःखान्त तथा सुखान्त नाटकों के प्रभेद के सिद्धांतों का भी स्पष्टीकरण उन्होंने किया

है। ट्रैजेडी (दुःखान्त नाटक) का विषय महान् है। भाषा भी महान् है और अन्त भी होता है एक महान् दुर्घटना में। सुखान्त नाटक में जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन सुपरिचित शैली में होता है और अन्त इसका सुखद है।

जोडेल के नमूने को सर्वोत्कृष्ट रूप दिया है गारनियेर ने। वे रोनजार के निकटतम शिष्यों में से एक थे और रोनजार ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने आठ नाटक लिखे हैं जिनमें पहले छः और अन्तिम दोनों के बीच बड़ा अन्तर है। पहले के छः—'कोरनेली', 'मार्क-आंतोंआ' आदि सेनेका और युरीपीडिस के नमूने पर प्राचीन विषाद नाटक हैं। ये प्रायः एक ही प्रकार के हैं और जोडेल के 'क्लिओपेट्रा' से भी मिलते-जुलते हैं। शेष दो हैं 'ब्रादामान्त' और 'ले जूइव'। शेषोक्त दुःखान्त नाटक के सह-गान अतिशय सुन्दर हैं। मात्रा तथा छन्दों का वैचित्र्य अति मनोरम है। विलापों की प्रेरणा वाइविल से ली गयी है इसलिए वह दर्शकों की हृदय-तन्त्री को स्पर्श करने वाली है। नाटक में क्रियाबहुलता है और अनिश्चय भी अन्त तक कायम है। नेबुकटनेजार यहूदी राजा के विरुद्ध बदला लेने पर उतारू है। आगे चलकर वास्तविक दिलचस्पी इस प्रश्न से पैदा होती है कि अपने सेनापति नेबुजरदान, यहूदी राजा ज़ेडेकिया की रानीमाता आमिताल तथा अपनी ही रानी के अनुरोध के परिणामस्वरूप नेबुकटनेजार अपना इरादा बदलेगा या नहीं। सेनेका और युरीपीडिस के कौशल का अवलम्बन कर दो व्यक्तियों के बीच कथनोपकथन एक-एक पंक्तियों का होता है जो तलवार की भाँति एक दूसरे से टकराते हैं। शैली की शब्दावली में कोरनेइये का पूर्वाभास है और वाइविल की तूलिका से रंग-संचार, रासीन के 'एस्थर' और 'आथाली' की ओर संकेत करता है। लेकिन उनकी नाट्यकला पूर्णाङ्ग है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। रासीन और कोरनेइये में ही यह आगे चलकर परिपूर्णता लाभ करती है।

मोंतक्रेस्तियां की रचनाएँ सोलहवीं शती के अन्त और सत्रहवीं शती के प्रारम्भ की हैं। इस काल में नियमानुकूल दुःखान्त नाटक की धारणा और

श्रेष्ठ रचना की सूचना बहुत स्पष्ट हो चुकी थी। मोंतक्रेस्तियां प्राचीन नमूनों का अनुकरण न कर अपने ही पैरों पर खड़े हुए। मौलिकता उनमें गारनियेर से भी अधिक है। अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना 'एसोसोआज़' में उन्होंने मेरी क्वीन ऑव स्कॉट्स से प्रेरणा ली है। इसकी कविता उत्कृष्ट प्रकार की है, छन्दों में एक विचित्र माधुर्य है। कलाकार गुणी है, कला भी आकर्षक है, लेकिन कमियाँ अब भी मौजूद हैं जो हमें यह याद दिलाती हैं कि साहित्य का यह काल अनुकरणात्मक है, मौलिक और श्रेष्ठ रचनाओं का काल यह नहीं है।

इस युग का सुखान्त नाटक समग्र दृष्टिकोण से विषाद नाटक की अपेक्षा हीन है। फ्रेंच ह्यूमेनिस्टों ने टेरेन्स का अनुकरण किया जिसमें मृदृता अधिक है। परन्तु ब्रिटिश रुचि ने प्लाट्स को पसन्द किया जिसमें सुखान्त नाटक की रचना की शक्ति अधिक है। इस चुनाव का परिणाम अच्छा नहीं हुआ। प्रचलित जीवन की रीतियों में ही सुखान्त नाटक को एक खुराक मिलती है। यह जीवनक्रम अब लैटिन लेखकों की पृष्ठभूमि से बहुत दूर था। फिर भी विभिन्न काल के व्यक्तियों में भी कुछ मूल समानताएँ होती हैं। यदि इन समानताओं के आधार पर नाटक लिखे गये होते तो कालप्रभेद का विशेष प्रभाव उन रचनाओं पर न पड़ता। परन्तु उस काल के लेखकों में इतनी सामर्थ्य नहीं थी। इसलिए लेखकों ने प्रचलित नीति-प्रधान तथा हास्य-रस-प्रधान कहानियों का ही आश्रय लिया और परिणामस्वरूप तत्कालीन सुखान्त नाटकों में ऊपरी विरोध, असम्भाव्य मूर्खता और स्थूल कौतुक तो दिखाई देते हैं परन्तु विचारों में निहित और विचारों से उद्भूत हास्य रस का प्रवाह दिखाई नहीं देता।

इस क्षेत्र में हम पुनः जोदेल, ग्रेवैं, जां द ला टेल के नाम पाते हैं। कौतुक-विषाद-पूर्ण नाटक 'ब्रादामान्त' के लेखक गारनियेर के नाम का उल्लेख भी इन्हीं के साथ किया जा सकता है। अभी तक प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों के आधार पर या बाइबिल के विषयों को लेकर अथवा समसामयिक घटनाओं को लेकर नाटक लिखे गये थे। गारनियेर ने आरिओस्टो से अपनी कथावस्तु संग्रह

कर ब्रादामान्त में एक नया कल्पनात्मक प्रयास किया है और यह प्रयास काफी सफल भी रहा है। दुःखान्त और सुखान्त दोनों प्रकार की शैलियों को मिलाने से लेखक को आजादी भी मिल गयी थी जिसका उन्होंने पूरा उपयोग किया है। दृश्य भी अधिक संख्यक हैं और क्रियात्मक भाग भी अधिक जीवित और जटिल हैं। जोदेल का सर्वप्रथम सुखान्त फ्रेंच नाटक 'रकींत्र' (१५५३) खो गया है। 'यूजींन' (१५७४) में जोदेल का प्रयत्न दुर्बल है। घिसे-घिसाये कौशलों का ही उन्होंने अवलम्बन किया है और कदर्य परिहास को चलती किस्म की कविताओं में स्थान दिया है। ग्रेवैं के 'ला त्रेजोरिएर' और 'ले एसवाही' साधारण छन्दों में ही लिख गये हैं तथापि वे कुछ अच्छे हैं। जां द ला टेल के 'ले कोरिवो' में टेरेन्स का सफल अनुकरण किया गया है। गद्य संलाप परिचित प्रकार का है, परन्तु निम्न प्रकार का नहीं। चरित्र जीवित-से लगते हैं और हँसी की खुराक जुटाने वाले हैं। हास्यात्मक परिस्थितियों का एक सहज ज्ञान लेखक को है, लेकिन अन्त तक वे निबाह नहीं सके हैं। ओदे द तुणीब का 'ले कांतां' (१५८४) एक गुणी युवक की साहित्यिक कृति है। मौलिक विकास का संकेत इसमें नहीं है लेकिन यही इस युग की श्रेष्ठतम रचना है। इटालियन वंशोद्भूत लारिवे (१५४०-१६१२) सोलहवीं सदी के अन्तिम सुखान्त नाटककार हैं। वे मानो नाटककार की सहज प्रतिभा लेकर ही पैदा हुए। उनके नौ नाटक मिलते हैं और अधिकांश इटालियन से अनूदित हैं। लेकिन ये इटालियन नाटक भी प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों के आधार पर लिखे गये थे और इनका अनुवाद जिस प्रकार लारिवे ने किया उससे यही लगता है कि उन्होंने मानो मूल ग्रन्थों के आधार पर ही अपनी रचनाएँ कीं। उनका अनुवाद भी मौलिक रचना-जैसा ही जान पड़ता है। इसकी वाग्मिता, अनुभूति और कौतुक के मिश्रण में अठारहवीं शती के कल्पनामूलक सुखान्त नाटकों का पूर्वाभास मिलता है। मोलियेर जैसे प्रख्यात नाटककार भी एक अंश तक लारिवे के ऋणी हैं।

तीसरा भाग

सत्रहवीं शती-पूर्वार्ध (१५६०–१६६०)
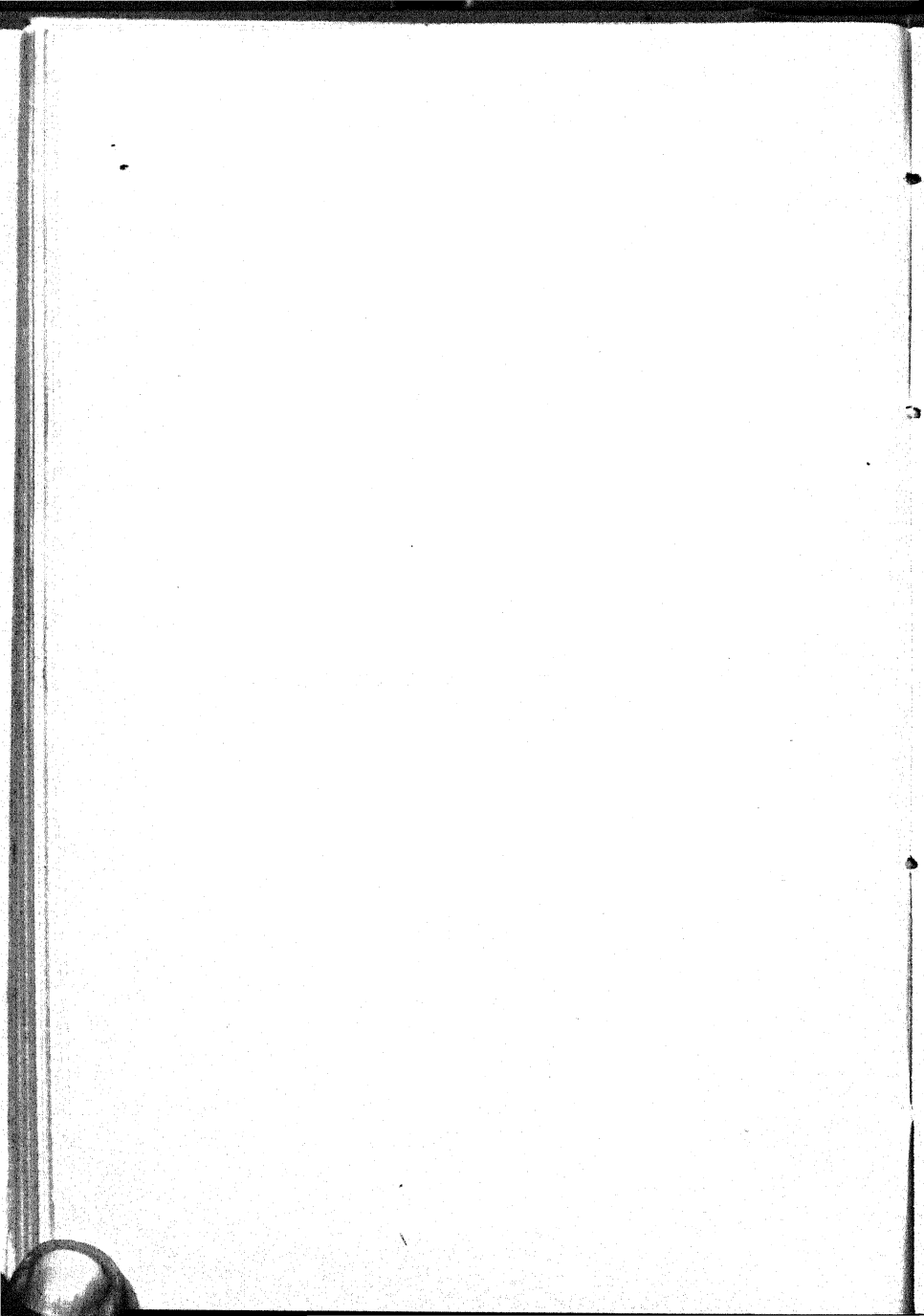
चौदहवाँ अध्याय

क्लासिक-पूर्व काल

सत्रहवीं शती के फ्रेंच साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इसका उत्तरार्ध (१६६०-१७१५) क्लासिक (श्रेष्ठतम रचनाओं का) युग के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में वही क्लासिक युग है या नहीं, यह विवादास्पद विषय है, क्योंकि फ्रेंच साहित्य की प्रतिभा बहुमुखी है और विभिन्न कालों में उस प्रतिभा का स्फुरण विभिन्न रूपों में हुआ है। उस प्रतिभा के नये पहलुओं का विकास होता आया है और संभव है कि और भी नवीनतर पहलुओं का विकास आगे चलकर होता रहे। तथापि यह निःसन्देह है कि उस युग का फ्रेंच साहित्य विशेष रूप से ऐश्वर्य-मण्डित है। इस शती के पूर्वार्ध (१५९०-१६६०) को क्लासिक युग की तैयारी का काल कहा जा सकता है।

इस परिवर्तन काल के साहित्य में हम दो प्रवृत्तियाँ मिली हुई पाते हैं; एक ओर लेखकों की स्वतन्त्र वृत्ति है और दूसरी ओर नियम-बद्धता की आकांक्षा। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि में ही इन दोनों प्रवृत्तियों को भलीभाँति समझा जा सकता है। इसलिए इस परिस्थिति का एक सामान्य उल्लेख आवश्यक है।

चतुर्थ हेनरी ने १५८४ में प्रोटेस्टेन्ट मत का परित्याग कर अपने दृढ़ तथा बुद्धिमत्तापूर्ण शासन से गृहयुद्ध तथा धार्मिक संघर्ष-जनित बुराइयों को बहुत अंश तक दूर किया, लेकिन १६१० में उनकी हत्या के बाद से पुनः अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई। राजमाता मारी द मेदिसी राजनीतिक अव्यवस्था, संघर्ष और आर्थिक अवनति को रोक न सकीं। पुनः प्रधानमंत्री

कार्डिनल रिशलू ने अव्यवस्था का दमन कर एकता की स्थापना की। १६४८ ई० में उनकी मृत्यु हुई और इसके साल भर बाद ही राजा तेरहवें लुई की भी मृत्यु हो गयी। जब तक चौदहवें लुई बालिग नहीं हुए तब तक उनकी माता आने दोत्रिश ही अभिभावक के रूप में शासन करती रहीं। कार्डिनल रिशलू ने कार्डिनल मात्सारिन को अपने उत्तराधिकारी के रूप में चुना था और आने दोत्रिश ने उनका समर्थन कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। परन्तु मात्सारिन के मन्त्रित्व काल में ही फ्रांस के आन्दोलन ने छोटे-मोटे गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया और पांच वर्ष तक तरह-तरह की ज्यादतियाँ होती रहीं जिससे फ्रांस की आर्थिक अवस्था भी बहुत गिर गयी। मात्सारिन ने पुनः इस स्थिति पर काबू पा लिया और स्पेन के विरुद्ध युद्ध में भी फ्रांस को विजय प्राप्त हुई। १६६१ ई० में जब उनकी मृत्यु हुई उस समय चौदहवें लुई बालिग हो चुके थे। उस समय लोग फ्रांस की अराजकता से तंग आकर स्थायित्व और सुव्यवस्था के लिए उत्सुक हो रहे थे और स्वेच्छा-चारी लुई भी इसके लिए कटिबद्ध थे कि फ्रांस एक महान् राष्ट्र बने और वे स्वयं उस महत्ता के प्रतीक स्वरूप बनें। इस परिवर्तनमय काल में जब-जब शान्ति बनी रही तब-तब साहित्यिक अनुशासन को भी प्रोत्साहन मिला और जब-जब आन्दोलनों से देश में उथल-पुथल होती रही तब-तब लेखकों में भी स्वतन्त्र आत्मप्रकाश की प्रवृत्ति बढ़ी।

(१) नव-जागरण-काल की दो प्रवृत्तियाँ

फ्रेंच नव-जागरण-काल ने दो प्रवृत्तियों को एक साथ आगे बढ़ाया। एक ओर उसने सौन्दर्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की इच्छा को प्रबल बनाया और इस प्रकार लेखकों में व्यक्तिगत मनोवृत्ति के अनुसरण की प्रवृत्ति बढ़ी और दूसरी ओर उसने प्राचीन नमूनों में श्रेष्ठ गुणों का पुनरावलोकन किया और इस प्रकार व्यक्ति-निरपेक्ष कुछ प्रतिष्ठित नियमों के प्रति रुचि बढ़ी। व्यक्तिगत मनोभावना की चेतना ने स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति पैदा की और नियमानुवर्तिता के प्रतिरोध के रूप में यह प्रकाश में आयी। इस प्रतिरोध

के अन्य कारण भी थे। पूर्ववर्ती-युग में धर्म-विश्वास को आघात पहुँचा था, प्रशासकीय शक्ति दुर्बल हो चुकी थी और दलीय मनोवृत्ति सक्रिय थी। प्रतिरोध इन परिस्थितियों का भी एक परिणाम था। इस प्रतिरोध को हम अन्य रूप में भी देख सकते हैं। ह्यूमेनिज्म के दार्शनिक आविष्कार उसी प्रकार शिक्षित समाज के अंग बन चुके थे जैसे कि उस समय के भौगोलिक आविष्कार। दोनों को एक ही विचारधारा में समाविष्ट करने का बीड़ा कुछ ऐसे लोगों ने उठाया जिनका इ ादा क्रान्ति लाने का नहीं बल्कि एक समझौते पर उपनीत होना था। इन लोगों ने आत्मनिष्ठ स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर तो बल दिया लेकिन प्रतिरोध को भी उग्र रूप धारण न करने दिया। इन्होंने संशयवाद (स्केप्टिसिज्म), प्रकृति परायण आनन्दवाद (एपिक्यूरिअनिज्म) और आत्मनियंत्रणवाद (स्टोईसिज्म) आदि गैर ईसाई विचारधाराओं का आश्रय लिया, परन्तु साथ ही ईसाई धर्म से इनका मेल दिखाने को भी वे प्रयत्नशील रहे। इसी पृष्ठभूमि में स्वातन्त्र्यप्रिय क्लासिक-पूर्व लेखकों की रचनाओं पर विचार करना उचित होगा।

जिलोम दी वेर (१५५६-१६२१) ने हृदयावेगों के कठोर नियंत्रण पर आधारित पुनीत जीवन के स्टोइक आदर्श और ईसाई धर्म के बीच एकरूपता दिखाने का प्रयत्न किया। मोंतेई के शिष्य और मित्र पिएरशारों (१५४१-१६०३) ने अपनी कृति 'द ला साजेस' (ज्ञान के सिद्धान्त) में विशुद्ध बुद्धिवादी और प्रयोगात्मक बुनियाद पर एक स्वयं-सम्पूर्ण नीतिप्रणाली की स्थापना का प्रयत्न किया। मोंतेई के ही संशयवाद को प्रयुक्त कर उन्होंने मानवीय ज्ञान तथा परम्परागत नैतिकता के स्थायित्व को प्रमाणित करने की चेष्टा की। लेकिन रचना उन्होंने इस उद्देश्य से नहीं की कि ईसाई संघ के विरुद्ध वे हथियार बनें, फिर भी कट्टर धर्म-धुरन्धरों ने उनकी निन्दा की। स्वातन्त्र्य-प्रिय विचारकों में सबसे प्रभावशाली थे गैसेंडी (१५९२-१६६५)। उनकी रचनाएँ लैटिन में हैं। उन्होंने ऐसे इंगित किये और ऐसे निष्कर्ष निकाले जो धार्मिक दर्शन, विशेष कर विश्व-जगत् सम्बन्धी ईसाई सिद्धान्तों के लिए खतरनाक थे; उन्होंने एपिकुरस के सिद्धान्तों (प्रकृति का

अनुसरण करो और जीवन में आनन्द का उपभोग करो) का इस प्रकार समर्थन किया, उनकी इस प्रकार व्याख्या की, कि कठमुल्लों से उनका कोई संघर्ष न हो सके। ल मोथ ल व्हाएर (१५८८-१६७८) ने नव-जागरण-काल के ह्यूमेनिज्म को एक गैर ईसाई और संशयवादी दिशा में प्रसारित किया।

(२) काव्यक्षेत्र

कविता के क्षेत्र में रेनियेर (१५७८-१६१३) आदि ने वन्धनहीन प्रेरणा का झण्डा खड़ा किया। सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में ही कवियों की दो श्रेणियों का भेद वहुत स्पष्ट हो उठा था, एक वे जो श्रमपूर्ण कला से कविता को सुशोभित करते थे और दूसरे वे जो अपनी उमंगों की प्रेरणासे ही काव्य-रचना करते थे। कवि के कर्त्तव्य के सम्वन्ध में रेनियेर ने कहा—"लेसे आले ला प्लीम ऊ ला व्हर्भ लाम्पोर्त" (कलम को वहाँ जाने दो जहाँ उमंग उसे ले जाय)। शब्दों का माँजना और घिसना, शब्दों के पीछे पसीना वहाना ये कूड़-मगज के हथियार हैं, अति विद्वानों के भ्रम हैं। अपने उपदेशों का पालन भी उन्होंने किया है। उनकी शैली में ताजगी और स्वच्छन्दता है। उनके शब्दों में बल और उनकी पंक्तियों में लोच है, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से उनकी रचना त्रुटिहीन नहीं है। व्यंग्यात्मक कविता के वे प्रथम रचयिता नहीं हैं, लेकिन उनकी लेखनी ने ही इस शैली को सुसमृद्ध किया। लैटिन व्यंग्य लेखकों की भाँति ही उन्होंने वाग्मिता का प्रचुर प्रयोग किया है और अति साधारण कथाओं को वे दुहराते गये हैं। परन्तु चरित्र-चित्रण में उन्होंने कला-कौशल का प्रदर्शन किया है। उन्होंने अपनी श्रेष्ठ कृति 'मासेत' में छल-चातुरी-पूर्ण कूटनीति का जो चित्र खींचा है वह वास्तव में प्रशंसनीय है।

'रियां क ल नातूरेल सा ग्रास नाकॉप्पांइये,
सां फ्रां लाह्वे दो क्लेर एक्लात दं बो तेंत...

(उसके सौन्दर्य में स्वाभाविक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, स्वच्छ जल से धोये उसके कपाल से एक सुन्दर रंग टपकता है), 'ल क्रीतीक उत्रे' की इन

पंक्तियों में रेनियेर की प्रकृति-परायणता का एक सुन्दर परिचय मिलता है। अपने सम्बन्ध में उनकी विनम्रता भी वास्तव में हृदयग्राही है—

"नी व्हिभिर कॉम आं दोआ,
नी व्हिभिर कॉम आं व्हो।"

(न मैं वैसे जीवन धारण करता हूँ जैसा कि मुझे करना चाहिए और न ऐसे जैसा कि मैं चाहता हूँ)।

राकाँ (१५८९—१६७०) एक और आत्मनिष्ठ कवि हैं जिन्होंने शब्दों को घिसने-माँजने का कोई प्रयत्न नहीं किया, फिर भी उनकी भाषा में लालित्य है। उनका "ले वेरजेरी" नाटक अपने समय में तो बहुत सफल रहा, लेकिन वर्तमान समय में वह कृत्रिम और प्राणहीन जान पड़ता है। "वालजैक के प्रति" और "थिरसिर के प्रति" जैसी उनकी छोटी गीति-कविताएँ ही उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं जिनमें श्रेष्ठ कला की विशुद्धता होते हुए भी प्राकृतिक सौन्दर्य को कोई हानि नहीं पहुँची है। नियमानुवर्तिता के सम्बन्ध में, आबे मेनाज को लिखे गये पत्र में उन्होंने यह आजाद राय प्रकट की है कि "यह आवश्यक नहीं कि वही नाटक सबसे अच्छा हो जिसमें नियमों की रक्षा की गयी हो, बल्कि आवेगपूर्ण चरित्रों के बन्धनमुक्त संवेगों से नियमों की संगति रखना ही अत्यन्त कठिन है।"

थिओफील द व्हीओ (१५९०—१६२६) को अनीश्वरवादिता के आरोप में आग में जलाये जाने का दण्ड मिला, लेकिन मुकदमें के दौरान में दो साल तक कारागार में जो यंत्रणाएँ उन्हें भुगतनी पड़ीं उन्हीं के कारण रिहाई के थोड़े ही दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गयी। कविता में स्वाभाविकता के वे प्रबल समर्थक हैं।

"ला रेग्ल म देप्ले, जेक्री कानफ्यूजमां,
जामे अं बाँ एसपिरी न फ़े रिआं केजेमां।"

(नियमों से मुझे अप्रसन्नता होती है, मैं तो अस्तव्यस्त ही लिखता हूँ; उसमें कोई श्रेष्ठता ही नहीं है जिसमें सहज स्वाभाविकता नहीं है)।

'एलिजी आ यून दाम' (एक महिला के लिए शोक-गीत) की इन पंक्तियों में उनका विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। अहम् भाव पूर्ण दुःखान्त नाटक 'पीराम ए थिबे' में प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए उन्होंने कल्पना की जिस विशालता का प्रदर्शन किया है वह वास्तव में मुग्ध करने वाली है। उनके प्रकृति-प्रेम में अनुभूति, सूक्ष्मावलोकन और संगीत का अपूर्व मिश्रण है। 'ल मातैं' (सवेरा), 'ला सोलीत्यीद' (एकाकीपन) आदि छोटी गीत-कविताओं का सौन्दर्य भी अनुपम है। जल में धूपछाँह के खेल का वर्णन जिस बारीकी और अनुभूति के साथ उन्होंने किया है उसकी भी तुलना मिलनी कठिन है। तत्कालीन कवियों में उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान तो प्राप्त है ही बल्कि फ्रांस के श्रेष्ठतम कवियों में भी उनकी गिनती की जाती है।

त्रिस्तां लरमित (१६०१—१६६५) और थिओफील के काव्यों में बहुत कुछ एकरूपता है। त्रिस्तां की अपनी मुद्राएँ हैं, परिमार्जित शब्दों के ढूँढ़ने का प्रयास है, फिर भी उनकी कविताओं में सहज सौंदर्य है। प्रेम-संगीत उन्होंने किसी एक नारी को लक्ष्य करके नहीं लिखा। 'ओरफ़े' में प्राचीन कथाओं को पुनर्जीवित करने की उनकी प्रतिभा का एक परिचय मिलता है और इस क्षेत्र में आन्द्रे शेनिएर की वे एक पूर्व-सूचना स्वरूप हैं। लेकिन थिओफील की भाँति प्रकृति से ही उन्हें सर्वाधिक प्रेरणा मिलती है। समुद्र के बदलते हुए रूपों का जो चित्र उन्होंने 'लामेर' (समुद्र) में खींचा है वह सूक्ष्मावलोकन उनके पहले के किसी कवि में नहीं मिलता। उन्होंने नाटक भी लिखे, जिनके विषय में आगे चलकर कहा जायगा। उनका महत्त्व दो प्रकार का है। वे इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप हैं कि फ्रेंच स्वैरवाद के बीज भले ही प्रच्छन्न रहे हों, परन्तु वे कभी मरे नहीं। वे इसके भी प्रमाण स्वरूप हैं कि श्रेष्ठ काव्य की रूप-विशुद्धता का आकर्षण बढ़ता ही गया है और बागी कवि भी इस आकर्षण से मुक्त नहीं थे।

उन्नीसवीं शती के स्वैरवादी कवियों ने क्लासिक-पूर्व कवियों में सैंतामां (१५९४—१६६१) को ही अपने पूर्वज के रूप में चुना। उनकी श्रद्धा-

रहित उत्फुल्लता और उनकी प्रकृति-परायणता ने उन्नीसवीं सदी के कवियों को मुग्ध किया। वास्तव में उनका व्यक्तित्व कुछ अद्भुत ही है। उनकी पीढ़ी में उनसे अधिक स्वातन्त्र्यवादी कोई था नहीं। अन्त तक वे हँसते रहे और मनचाहा छन्द बनाते रहे। पार्थिव जीवन के रस और कौतुक के प्रति वे सदा सचेतन रहे, परन्तु उनके संगीत में सूक्ष्मता और कोमलता है और अव्यक्त की एक अपूर्व अनुभूति भी। दृश्य वर्णन की प्रथा का उस समय भी काफी प्रचलन था। लेकिन उन्होंने उसमें कुछ ऐसी नवीनता जोड़ दी जिसमें एक नये रस का आस्वादन मिलता है। 'ला सोलीत्यीद' के दुर्ग महल के भग्नावशेष में एक भूत बसता है, दलदल से भी एक आरण्यक शोभा निखरती है। 'ल प्रैंताप दे जांविरों द पारी' (पेरिस-परिमण्डल में वसन्त) में सूक्ष्म तारतम्यों के सम्बन्ध में उनकी तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय मिलता है। इसके बाद तो वे वाक्पटुता, कहावत और अनाकर्षक सामान्यताओं की एक बाढ़ ला देते हैं। लेकिन 'मोआंस-सोह्वे' में उनकी कृति का एक पहलू चमक उठता है। इसमें बाइबिल की कहानी को उन्होंने लोकप्रिय हृदयग्राही छन्दों में उपस्थित किया है।

(३) यथार्थवाद और व्यंग्यात्मक परिवृत्ति

सत्रहवीं शती में फ्रेंच यथार्थवादी साहित्य का आविर्भाव हुआ, यह चाहे बिलकुल ठीक न हो, परन्तु ग्रीक और लैटिन साहित्य को आदर्श मानने की जो परम्परा चल पड़ी थी उसकी प्रतिक्रिया यथार्थवाद के रूप में ही दिखाई दी। शार्ल-सोरेल (१६०२—७४) की यथार्थवादी प्रवृत्ति एक प्रतिक्रिया ही थी। 'फ्रांसिओ' में स्कूल मास्टरों की आडम्बरपूर्ण विद्वत्ता और सामाजिक पाखण्ड के विरुद्ध एक नवयुवक की घृणा मूर्त हो उठती है। 'आस्त्रे' का परिहास भी इसका एक अंग है। भावुकता-प्रधान उपन्यास, 'आस्त्रे' के प्रथम भाग का प्रकाशन सत्रहवीं शती के लगते ही हुआ था और हजारों पाठक इसके कल्पित जगत से आनन्द उठाते रहे। यह परिहास और भी तीव्र हो उठा है 'बेरजेर एक्सत्राव्हागां' में जिसका प्रकाशन 'आस्त्रे'

के अन्तिम भाग के प्रकाशित होने के बाद ही हुआ। 'बेरजेर एक्सत्रा-व्हागां पर सर्व्हांत के 'डॉन किजोट' का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके नायक पेरिस के एक नवयुवक सौदागर का दिमाग उपन्यास पढ़कर फिर गया है। वह एक गड़रिया की पोशाक और दुबली-पतली भेड़ों का झुंड खरीदता है और शहर के ठीक बाहर सीन नदी के किनारे उनको चराता फिरता है। गड़रिये की काल्पनिक दुनिया तथा पार्थिव वास्तविकता के अनिवार्य और निरन्तर संघर्ष से ही हास्यरस का उद्रेक होता है। साहित्यिकों की ईर्ष्या का श्लेषात्मक वर्णन सचमुच मनोरंजक है। लेकिन मुख्य बात यह है कि आधुनिक उपन्यास की विषयवस्तु—एक चरित्र का इतिहास और व्यक्ति तथा उसके परिवेश के बीच संघर्ष—का श्रीगणेश भी इसी रचना के साथ हुआ है।

लालित्यपूर्ण और हलके व्यंग्य के ढंग से लिखी गयी कहानी 'ला पाज़ डिसग्रासिए' उसके रचयिता त्रिस्तां को सोरेल और स्कारों के बीच, जिनके सम्बन्ध में नीचे लिखा गया है, एक कड़ी के रूप में उपस्थित करती है। इधर सैं तामाँ यौवन के गीत को छोड़कर परिवृत्ति की ओर झुक पड़े थे। 'रोम रिडिकील' में उन्होंने रोम के प्राचीन गौरव की खिल्ली उड़ायी है; 'ल मेलां' में आलिम्पस के गम्भीर विराट् माहात्म्य पर अश्रद्धा की कलम चलायी है। लेकिन समृद्ध बलिष्ठ भाषा, हास्यरस और उत्साह के बीच हम इन आपत्तियों को भूल जाते हैं।

स्कारों (१६१०-६०) एक कवि हैं। उनकी मुख्य कृतियाँ हैं 'तिफ़ों उ ला गिगान्तोमाशी' और 'ल वर्जिल त्रावेस्ती'। प्रचार-पुस्तिका 'माजारिनाद' में राजनीतिक व्यंग्य कटुता और तिक्तता के चरम शिखर पर पहुँचा है। फ्रेंच व्यंग्यात्मक परिवृत्ति के तो वे मूर्त रूप ही हैं। 'वर्जिल त्रावेस्ती' में स्कारों ने श्रेष्ठ रोमन लेखक वर्जिल का एक विकृत रूप उपस्थित किया है जैसा कि इस नाम से ही प्रकट है। 'रोमां कोमिक' भी विकृति ही है—वीर रसात्मक उपन्यास की विकृति। इसमें नाटक खेलने वालों के एक चलते-फिरते दल के देशाटन को केन्द्रित कर सत्रहवीं शती के मध्य

भाग के प्रादेशिक जीवन का सुन्दर चित्र परिस्फुट हो उठा है। परन्तु स्कारों की यथार्थवादिता में एक भारूपन है और रोमांस और भावुकता के पुट से भी इस कमी की पूर्ति नहीं हो सकी है।

सिरानो द बेरजेराक (१६१९—५५) का व्यक्तित्व मौलिकतापूर्ण है। उनकी मुख्य कृति "चन्द्रलोक और शशि-साम्राज्य का हास्यात्मक इतिहास" बे लगाम कल्पना और विस्मयोत्पादक सहज ज्ञान का अद्भुत मिश्रण है। सिरानो देकार्त का सम्मान करते हैं, परन्तु उनका प्रतिवाद भी करते हैं। सृष्टितत्त्व की मुख्य रूपरेखा उन्होंने कोपरनिकस और एपिकुरस से ली है। उच्चांगीय दार्शनिक व्यंग्य और वास्तविक मानवता-वाद उनके कल्पनालोकों की आत्मास्वरूप हैं। उनकी इस कृति में हास्यात्मक तत्त्वों की अपेक्षा गम्भीर तत्त्वों की ही अधिकता है। वे धर्मविश्वास पर सीधा हमला तो नहीं करते, लेकिन हमारी सभ्यता के परम्परागत रिवाजों पर अपने व्यंग्यों से कशाघात करते हैं। उनकी कल्पनाओं का आश्रय फोंतेनेल और वोलतेयर-जैसे उत्कृष्ट फ्रेंच लेखकों ने तथा जोनाथन स्विफ्ट—जैसे अंग्रेज़ लेखक ने कल्पनिक पर्यटनों के वर्णन में लिया है।

(४) नाटक

१६वीं शती के अन्तिम भाग में ऐसा जान पड़ रहा था कि फ्रेंच नाट्य-कला नियमानुवर्तिता के लक्ष्य को पहुँचने ही वाली है। जैं द ला टेल और तुर्नीव के सुखान्त नाटकों में और ग्रैवें तथा गारनिएर के दुःखान्त नाटकों पर श्रेष्ठ रचना की स्पष्ट छाप थी। लेकिन १५९०-१६६० के परिवर्तन काल में यह आशा पूरी नहीं हो सकी। नियमित ढाँचे की ओर होनेवाली प्रगति में बार-बार गतिरोध उत्पन्न हुआ और रचना-स्वातन्त्र्य ने बार-म्बार अपना सिर उठाया। दुःख-सुखान्त नाटकों की लोकप्रियता का इंगित भी इसी ओर था कि जनता की रुचि और पसन्दों में एक विभिन्नता थी। लक्ष्यपूर्ति में विलम्ब का एक कारण राजनीतिक और बौद्धिक अस्थि-रता भी हो सकता है लेकिन मुख्य कारण यह था कि फ्रेंच श्रोताओं का एक

महत्त्वपूर्ण अंश पूर्णतः नियमित नाट्यकला की कठोरता और गम्भीरता को सहन नहीं करना चाहता था। एलिजाबेथ कालीन इंग्लैण्ड की भाँति ही चतुर्थ हेनरी और तेरहवें लुई के फ्रांस में लोकप्रिय संस्कृति के बीज मौजूद थे और उन बीजों को ही हम आलेकजान्द्र हार्डी में अंकुरित पाते हैं।

आलेकजान्द्र हार्डी (१५७०-१६३१) का यह दावा था कि उन्होंने ६०० नाटक लिखे। लेकिन छपे हैं कुल ३४। पुराने नमूनों की उन्हें कोई परवाह नहीं थी। क्रियाशीलता और गति ही उनके नाटकों के आलम्बन हैं। रंगमंच पर ही खून-कत्ल भी चलते रहते हैं। रंगमंच उन्होंने विशेष ढंग का तैयार किया। लेकिन मर्मस्पर्शी दृश्य भी उन्होंने तैयार किये और चरित्रों के अध्ययन के पक्ष की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। अपने काल में हार्डी ने ख्याति प्राप्त की, लेकिन जब साहित्य का स्वरूप बदल गया तो लोग उन्हें भूल गये।

जांद शलान्द्र (१५८५-१६३५) ने उभरती जवानी में ही मालहर्ब के अनुशासन के विरुद्ध एक विद्रोही के रूप में कविताएँ लिखीं। रोनजार और दी वार्ता को ही उन्होंने अपना आदर्श चुना और उनकी वे हँसी उड़ाते थे जो अपने छन्दों को मसृण (कोमल) करने में वास्तविक सौन्दर्य को अलग हटाकर खूबसूरती को उसका स्थान देते थे। अंग्रेज़ों को फ्रांस में नाटक खेलते हुए उन्होंने देखा था और शायद इंग्लैण्ड में रहते समय शेक्सपियर के नाटक भी उन्होंने देखे होंगे। परन्तु अंग्रज़ी नाटकों का कोई प्रभाव उन पर पड़ा या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अपने नाटक "टीर ए सिडां" में उन्होंने मोटे रूप से नियमों का पालन ही किया है। सुखान्त और दुःखान्त तत्त्वों को एक अंश तक उन्होंने मिला अवश्य दिया है, लेकिन चरित्रों के विकास पर भी उन्होंने पर्याप्त बल दिया है। 'कासांद्र' में उन्होंने नारी-स्वरूप का जो सजीव और यथार्थवादी चित्रण किया है उसमें रासीन के 'फेद्र' का पूर्वाभास मिलता है। स्थान, काल, कार्य की नाटकीय मर्यादाओं को भी उन्होंने अक्षुण्ण रखा है। लेकिन श्रेष्ठ रचना का प्रारम्भ करने के बाद ही 'टीर ए सिडां' को उन्होंने एक ऐसे नये

ढाँचे में ढाला कि नाटकीय एकताओं को उन्होंने बिलकुल उड़ा ही दिया। सहगान उन्होंने हटा दिये, रचना में हास्यरस का एक बड़ा पुट जोड़ दिया और सभी घटनाएँ दर्शकों की आँखों के सामने रंगमंच पर घटित होने लगीं। रंगमंच की इस अनियमितता के कारण एक फ्रेंच समालोचक जिसेरां को उनके और शेक्सपियर के नाट्य-कौशलों में एक समरूपता दिखाई दे गयी। नये ढाँचे में शलान्द्र ने 'टीर ए सिडाँ' को सुख-दुःखान्त नाटक का रूप दिया है। भूमिका लेखक फ्रांसोआ ओज़िएर ने लेखक का उद्देश्य व्यक्त करते हुए कहा है कि जीवन की भाँति नाट्यकला में भी आँसू और हँसी दोनों का सम्मिश्रण हो सकता है।

दो और अति सफल नाटकों ने अनियमित रंगमंच की मर्यादा बनाये रखी—थिओफील का 'पिराम और थिसवे' और त्रिस्तां का 'मारिआम'। आलोच्य श्रेणी के नाटककारों में रोत्रू का नाम भी उल्लेखनीय है। उनका 'वेनसेलास' वीरोचित आत्म-बलिदान के प्रति सहानुभूति और करुण रस का उद्रेक करने में समर्थ है। उसकी विशुद्ध चुनी हुई पंक्तियों में नीतिवाक्य और भावुकता के उद्गार बड़े सुन्दर ढंग से पिरोये हुए हैं। लेकिन शैली एक समान नहीं है। कहीं बहुत ऊँची है और कहीं बहुत नीची। यदि ऐसा न होता तो निःसन्देह 'वेनसेलास' की गिनती श्रेष्ठतम रचनाओं में हो सकती थी।

पन्द्रहवाँ अध्याय

नियमों की विजय

पिछले अध्याय में हम नियम-विरोधी विद्रोहियों की अवतारणा कर चुके हैं। परन्तु अन्त तक विद्रोहियों की नहीं बल्कि नियमों की ही विजय हुई। इस विजय में सामाजिक परिस्थितियों और बौद्धिक आवश्यकताओं की भी एक देन है। राजनीतिक फ्रांस को एक सुदृढ़ और स्थायी सरकार की चाह थी। चौदहवें लुई ने इस माँग की पूर्ति की और उनके साथ हुकूमत और अनुशासन का युग आया। साहित्य के क्षेत्र में हुकूमत और अनुशासन, इसी का एक और पहलू था। कई पीढ़ियों के अनुभवों से युक्त होकर पाठकों में भी यह भावना पैदा हुई कि अब वह समय आ गया है जब कि साहित्य को युक्ति, तर्क, अनुशासन और व्यवस्था से युक्त होना चाहिए। अब कुछ समालोचकों ने इसका नेतृत्व ग्रहण किया और सर्व-सम्मति से कुछ निर्णय किये। सर्वसम्मत होने के कारण ही उन निर्णयों की प्रतिष्ठा बढ़ी और इसी बुनियाद पर फ्रेंच क्लासिक्स (प्रतिष्ठित रचना) की इमारत खड़ी हुई।

कैथलिक सम्प्रदाय ने भी नियमों को प्रतिष्ठित करने में हाथ बटाया। धर्म-सुधार आन्दोलन का बल बहुत घट भी नहीं पाया था कि प्रति-संशोधन का दूसरा आन्दोलन चल पड़ा और १६०० तथा १६६० ई० के बीच वह अपनी पूरी ताकत पर पहुँचा। अब उसने मुख्य बौद्धिक धारा की दिशा भी बदल दी। कार्डिनल पिएर द बेरील और बेले के बिशॉप जाँ पिएर कामी ने अपनी लेखनी के बल पर डोलते हुए धर्म-विश्वास को सुदृढ़ किया। कार्डिनल पिएर लेखक से अधिक चिन्तक और धार्मिक नेता के रूप में

ही प्रसिद्ध हैं और कामी ने ईसाई उपन्यासों के प्रचार के द्वारा अपने उद्देश्य में काफी सफलता प्राप्त की। पहले ही कहा जा चुका है कि धार्मिक युद्ध समाप्त होने के बाद बहुतेरे प्रतिसंशोधनवादियों ने संघर्ष की राह पर नहीं बल्कि युक्ति-तर्क से और समझा-बुझाकर विरोधियों को अपने पक्ष में लाने की चेष्टा की। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण सैं फ्रांसोआ द साल (१५६२-१६२०) में मिलता है। 'ऐंत्रोदक्शिओं आ ला द्वी दवोत' (उत्सर्गीकृत जीवन में प्रवेश) में उन्होंने सारा बल इसी पर दिया है कि जीव मात्र को अपना जीवन ईश्वरप्रेम पर न्योछावर कर देना चाहिए। पवित्र जीवन की डाल पर ही आनन्द का फूल खिलता है, यही उनका मुख्य वक्तव्य (व्यंजनीय) है। उनका वास्तविक महत्त्व यह है कि जिस समय प्रोटेस्टेंट और कैथलिक दोनों ही सम्प्रदाय अपनी अपनी जगहों से तनिक भी हटने को तैयार न थे, उस समय उन्होंने फ्रेंच ईसाइयत को मानवीयता से मण्डित किया।

लेकिन इस मार्ग में अड़चन उपस्थित की, मूल पाप के सिद्धान्त ने। ईसाई मत यह है कि मनुष्य पाप को साथ लेकर ही पैदा होता है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि उसका स्वरूप ही अपूर्ण है और बिना किसी सहारे के वह पुण्यमय जीवन प्राप्त कर ही नहीं सकता। धार्मिक पण्डितों ने भगवत्कृपा के सिद्धान्त में इसका एक हल निकाला। इस सिद्धान्त की पेचीदगियों में प्रवेश किये बिना इतना कहना काफी है कि इस सिद्धान्त पर भी अनेक और विभिन्न मत हैं। सबसे प्रशस्त मत जेसुइटों के एक दल का है जो कहते हैं कि तनिक भी चेष्टा करने पर प्रत्येक को भगवत्कृपा मिल सकती है और संकीर्णतम मत जैनसेनिस्ट्स का है जिनका कहना है कि चुने हुए थोड़े से लोगों को छोड़कर औरों को यह कृपा मिल ही नहीं सकती। स्पष्ट है कि इन मतों का प्रभाव केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रह सकता था और साहित्य-क्षेत्र भी इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। भगवत्कृपा से ईश्वरीय न्याय और पूर्व-निर्णीत भाग्य का सम्बन्ध है और इनसे ये प्रश्न भी उठते हैं कि अपने भाग्य पर

हमारा नियंत्रण है या नहीं और कहाँ तक हमारी इच्छा स्वाधीन है। यह स्वाभाविक ही है कि चरित्र और उद्देश्यों का विश्लेषण इन प्रश्नों के उत्तरों से रँगा हुआ है। तथापि यह लक्ष्य करने की बात है कि संकीर्णमत जैनसेन सम्प्रदाय के स्कूलों में ही फ्रांस के दो श्रेष्ठ साहित्यिकों ने शिक्षा पायी; एक रासीन और दूसरे पासकल ने।

देकार्त (१५९६-१६५०) ने ईश्वरीय तत्व को कायम रखते हुए फ्रेंच बुद्धिवाद का एक नया मार्ग प्रदर्शित किया। रने देकार्त इस अर्थ में बुद्धिवादी नहीं थे कि उन्होंने तर्क से विश्वास का अथवा विज्ञान से दैव-प्राप्त धर्मज्ञान का मुकाबला किया हो, यद्यपि उनकी रचनाओं के परिणाम-स्वरूप ठीक इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। बल्कि धर्म-विश्वास में उनकी श्रद्धा थी और अपनी वैज्ञानिक तथा दार्शनिक रचना 'दिसकूर द ला मेथड' में उन्होंने ईश्वर को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वास्तव में उन्होंने कार्डिनल द बेरील के ही इस सुझाव को कार्यान्वित किया कि वे अपनी महती शक्ति का प्रयोग ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए करें। परन्तु परिणामों को देखते हुए ही बाद को पासकल ने यह मत अभिव्यक्त किया कि देकार्त के सृष्टिचक्र को चालू करने के लिए पहला धक्का देनेवाले किसी एक की जरूरत थी और केवल इसीलिए उन्होंने ईश्वर की अवतारणा की और एक बार चक्र गतिमान् हो जाने पर फिर ईश्वर के लिए और कुछ करने को ही नहीं रह जाता है। ऐसे ईश्वर को लेकर धर्माधिकारी भला क्या करते। देकार्त के अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों का खण्डन हो चुका है, लेकिन सम्पूर्ण विश्व के ज्ञान को प्रणालीबद्ध करने का उनका प्रयत्न ही अत्यन्त साहसपूर्ण था। इस प्रयत्न में उन्होंने एक नये विचार-जगत् की सृष्टि की, परन्तु विचारों के प्रवाह में उन्होंने वास्तविकता को कभी अपनी पकड़ से फिसलने नहीं दिया। उनके इस कथन ने कि "मैं सन्देह करता हूँ, इसलिए सोचता हूँ और सोचता हूँ, इसलिए मेरा अस्तित्व है", वैज्ञानिक और दार्शनिक जगत् में तहलका मचा दिया। बुद्धि पर

उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा है और ईश्वर पर भी। उनका तर्क यह है कि ईश्वर ने हीं हमें बुद्धि दी है जिससे कि हम सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकें और सम्पूर्ण सावधानी से बुद्धि का प्रयोग करने पर भी कोई गुमराह हो जाये तो यही कहना पड़ेगा कि ईश्वर ने हमें धोखा दिया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। गणित-शास्त्र को उनकी देन है बीजगणित और ज्यामिति में एकता की स्थापना। उन्होंने अपने सहज ज्ञान से यह उपलब्धि की कि शरीर-संगठन और रक्त-स्रोत से मानसिक वृत्तियों का एक सम्बन्ध है जो आज पूर्णतः विज्ञानसम्मत है। लेखक की दृष्टि से उनका मुख्य महत्त्व यह है कि 'दिसकूर द ला मेथड्' उन्होंने फ्रैंच में ही लिखी जिससे कि साधारण लोगों को भी वह बोधगम्य हो सके। 'अतिभौतिक विचार', 'दार्शनिक सिद्धान्त' आदि अन्य पुस्तकें उन्होंने लैटिन में ही लिखीं। यद्यपि 'दिसकूर' की शैली पर लैटिन का प्रभाव है और उसके वाक्य भी प्रायः लम्बे हैं तथापि विषयवस्तु की दृष्टि से यह शैली सहज और आकर्षक है। फ्रेंच वैज्ञानिक तथा दार्शनिक साहित्य देकार्त का ऋणी है।

(१) काव्य

मालहर्ब (१५५५-१६२८) के रूप में फ्रेंच काव्य-साम्राज्य में एक डिक्टेटर पैदा हुआ। देसपोर्त की उन्होंने खुलकर निन्दा की। रोनजार की छपी हुई कविताओं को वे सुधारने बैठे तो आधी दूर चल कर उकता गये और बाकी आधा, कुल का कुल, उन्होंने कलम उठाकर काट दिया। सही तो यह है कि प्रारम्भ में उन्होंने भी देसपोर्त या रोनजार की जैसी ही कविताएँ लिखीं, लेकिन ५० साल की उम्र में जब चतुर्थ हेनरी की कृपा से वे अनौपचारिक रूप में राजकवि बन गये तो उन्होंने कविता के लिए अपने नियम निकाले। भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने यह विधान दिया कि शब्द शुद्ध फ़्रेंच के हों, ग्रीस या इटली की आमदनी नहीं। प्लीआद या दी बार्ता द्वारा आविष्कृत विद्वत्तापूर्ण यौगिक शब्दों का उन्होंने प्रत्या-

ख्यान किया और चलती बोली के शब्दों का भी। इस सिफारिश से ही यह आभास मिलता है कि साहित्य अपनी सामाजिक हैसियत के प्रति सचेत हो रहा था। छन्द के सम्बन्ध में उन्होंने द्वादशमात्रिक आलेक्-जान्ड्रीन के प्रयोग का निर्देश किया और यह नियम ठहराया कि एक मध्य-वर्ती विराम के साथ पंक्ति के अन्त में भी विराम होना चाहिए। वाक्यांश का फैलाव एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति में हो, इसका उन्होंने निषेध किया। दो शब्दों के बीच स्वरवर्णों के संघर्ष को भी उन्होंने नियमविरुद्ध ठहराया। उपमाओं के सम्बन्ध में उन्होंने यह चेतावनी दी कि प्रकृति की वास्तविकताओं में ही उन्हें सीमित होना चाहिए। उनका सिद्धान्त यह है कि कविता की रचना भी एक कारीगरी है और कारीगर को निरन्तर परिश्रम और काट-छाँट करते रहना चाहिए। काव्य में अब प्रेरणा के लिए कोई स्थान नहीं रह गया , वह संगठित विचार की एक शक्तिशाली अभिव्यक्ति मात्र है। उन्होंने इसे भी गर्हित ठहराया कि मात्राओं के पीछे व्याकरण के नियमों का उल्लंघन हो। इन सिद्धान्तों के आधार पर हम जिस प्रकार की कविताओं की कल्पना कर सकते हैं, मालहर्ब की अपनी कविताएँ वास्तव में उनसे कहीं अच्छी हैं। प्रेरणा तो उनमें नहीं है, परन्तु अवशिष्ट सभी काव्य-गुण उनमें हैं। यदि श्रेष्ठता की यही निशानी है कि कवि के जीवन के बाद भी काव्य का रूप जीवित रहे और उसका आकर्षण खो न जाये तो मालहर्ब की अच्छी कविताओं को भी श्रेष्ठ फ्रेंच काव्य में स्थान मिलना चाहिए। बाइबिल के भजन-गीतों के उनके अनुवाद में माधुर्य चाहे अधिक न हो, परन्तु अपूर्व गाम्भीर्य है।

मालहर्ब को सन्तुष्ट करना कठिन काम था, लेकिन अपने समकालीन जैं बरतो का उन्होंने स्वागत ही किया। राकां और फ्रांसोआ, ये दो नव-युवक कवि भी उनके प्रिय थे। बरतो के कवित्व में एक स्वाभाविक लावण्य तो था ही, उन्होंने मालहर्ब के ढ़ंग को भी कुछ कुछ अपना लिया इसलिए वे मालहर्ब की नेक नजर में पड़ गये। मेंनार ने अपने गुरु का नाम रखा और रोंदो, आलेकज़ाण्ड्रीन तथा अष्टपदी छन्दों में अपना कृतित्व

दिखाया। उनके बाद की पीढ़ियों ने उनको उपेक्षित कर उनके प्रति न्याय नहीं किया है।

व्होआतीर (१५७९-१६४८), मादाम द रामबुइए की प्रसिद्ध गोष्ठी के चुने हुए वाक्यालाप-पटु सदस्यों में से प्रमुख थे। अनेक समालोचकों ने विचार, अनुभूति अथवा कला के विश्लेषण में सूक्ष्म मर्यादाओं के यथावत् चित्रण तथा तीक्ष्ण अवलोकन को फ्रेंच मानस की विशेषता बतलायी है और व्होआतीर की भी यही विशेषता है। सामग्रिक रूप से उनकी रुचि में स्वाभाविक विशुद्धता है और उनकी शैली में दिखावटीपन नहीं है। बिना विद्वत्तापूर्ण आड़म्बर के ही वे गम्भीर अर्थ और महती भावना को सहज भाषा में प्रकट कर सकते हैं और गाम्भीर्य तथा गुरुत्व का संयोग दिव्यता अथवा विनोद से कर सकते हैं। शब्दों के चुनाव में तो उनकी निराली दक्षता है। उनके कविता-पत्रों में ही उनकी श्रेष्ठ कविताएँ हैं जिनकी पंक्तियाँ चंचल गति से इठलाती हुई फिसलती जाती हैं और अनगिनत प्रकार के लघु व्यंग्यात्मक इंगित बिखेरती जाती हैं। यह भी भविष्य का ही पूर्वाभास है।

(२) व्याकरण, शैली और समालोचना

क्लासिक युग की तैयारी में फ्रेंच वैयाकरणों की भी एक देन है। इस व्याकरण-प्रणयन की प्रचेष्टा के अवलोकन के पहले एक और घटना पर ध्यान देना आवश्यक है जिसका फ्रेंच साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह घटना है १६३५ के लगभग कार्डिनल रिशलू द्वारा फ्रेंच अकादमी की स्थापना। कुछ लेखक अपने पेशे से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए प्रति सप्ताह एक बैठक किया करते थे। प्रतिभाशाली मन्त्री ने इस केन्द्र को औपचारिक सभा, निर्धारित सदस्यसंख्या तथा नियमादि सहित, एक स्वीकृत संस्था के रूप में विकसित कर सरकार तथा कला दोनों की उद्देश्यपूर्ति का शक्तिशाली साधन बनाया। प्रारम्भ में इस नयी संस्था का उद्देश्य फ्रेंच भाषा की प्रगति पर निगाह रखना और

सरकारी अध्यादेश तथा प्रकाशनों के द्वारा लिखने और बोलने की भाषा की शुद्धता को कायम रखना था। अधिकांश सफल लेखक अकादमी की ओर आकृष्ट हुए और शीघ्र ही इसकी प्रतिपत्ति इतनी बढ़ गयी कि इस संस्था ने, रुचि और समालोचना के मामलों में, सार्वजनिक सलाहकार का रूप धारण कर लिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि परम्परागत विशुद्ध रचना-प्रणाली के पक्ष में ही इसने अपना प्रभाव डाला।

आधुनिक वैयाकरणों और समालोचकों के, जिन्होंने भाषा के उचित प्रयोग में दिलचस्पी रखने वालों की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है, पूर्वज और पुरोभाग में हैं क्लोड फाव्हर, सिएर द भोगेला। उनकी पुस्तक 'रमार्क सीर ला लांग फ्रांसेस' (फ्रेंच भाषा के सम्बन्ध में कुछ बातें) १६४७ में प्रकाशित हुई और उसे एक असाधारण सफलता प्राप्त हुई। अनेक लेखकों की रचनाओं से भाषा के प्रयोग की विभिन्न विधियों के सम्बन्ध में तथ्यों और उदाहरणों का संग्रह उन्होंने उस पुस्तक में किया है, परन्तु अपनी व्यक्तिगत राय की अभिव्यक्ति उन्होंने कहीं नहीं की है। वे कहते हैं कि शब्द मनुष्यों के परस्पर सम्पर्क के पवित्र औजार हैं और उन पर किसी एक व्यक्ति को राय देने का अधिकार नहीं है। वे यह इंगित भी नहीं देते कि विशेष स्थानों में प्रयोग के नियमों को शुद्ध किया जा सकता है। उनकी टीकाओं का निहित उद्देश्य कोई योजना बनाना नहीं है। प्रत्येक समस्या की आलोचना वे पृथक् रूप से करते हैं। इस आलोचना से दो ही सिद्धान्त निकलते हैं—एक यह कि शब्दों का अर्थ स्पष्ट होना चाहिए और शब्द ऐसे होने चाहिए कि उनके उच्चारण में कठिनाई न हो। पीढ़ी दर पीढ़ी फ्रेंच पाठक इस सर्वेक्षण को बड़ आनन्द के साथ पढ़ते आये हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ साहित्य के उत्थान में उनकी भी एक देन है। हो सकता है कि अपने प्रयत्नों के कारण चलती बोली की, जिससे भाषा ताजगी और बल लिया करती है, जीवित जड़ों से उन्होंने लिखित भाषा को अलग कर दिया हो। परन्तु इसके कारण यदि गीतों की उड़ान के लिए फ्रेंच भाषा में कोई अक्षमता आ गयी हो तो उसका काफी मुआ-

वजा इस रूप में मिल गया कि बुद्धिवादी साहित्य के विस्तृत दायरे तथा बौद्धिक कथनोपकथन के लिए वह उत्कृष्ट साधन बन गयी।

प्रायः इसी समय बालजैक (जें लूईगे सीर द बालजैक-१५९७-१६५४) की लेखन-कला ने विद्वज्जनों को ही नहीं बल्कि जनसाधारण को भी आकृष्ट किया। उनके 'पत्रगुच्छ', 'ल-प्रैंस', 'ल सोक्रेत क्रेतियां', 'आरिस्तप' आदि रचनाओं में तर्क, विदग्धता, छन्द और सौन्दर्य है, परन्तु भाषा को बलशाली बनाने का कोई प्रयत्न उनमें दिखाई नहीं पड़ता है। मोंतेई ने गद्य-शैली का एक चमत्कार अवश्य दिखाया, परन्तु वह उनकी व्यक्तिगत शैली थी, जनसाधारण के लिए उसका अनुकरण करना सम्भव नहीं था। बालजैक ने ऐसी शैली प्रस्तुत की जिसका सामग्रिक अनुकरण सम्भव न भी हो तो वह जनसाधारण के लिए एक नमूना तो बन ही सकती थी। उन्होंने लेखकों की इस शिकायत को दूर किया कि हथियार उनके प्रयत्नों के अनुरूप नहीं था। फिर भी भाषा के प्रयोग में और भी सीधेपन तथा हलकेपन की आवश्यकता थी और इसकी पूर्ति आगे चलकर हुई। लेकिन श्रेष्ठ गद्य-लेखकों के लिए उन्होंने जमीन पूरी तरह तैयार कर दी। बालजैक ने एक परिष्कृत, सन्तुलित और व्यवस्थित शैली को सुन्दर कलात्मक वेश भी पहना दिया। रोमांस पर अपने विचार उन्होंने जिन संक्षिप्त छोटी पंक्तियों में प्रकट किये वे अठारहवीं सदी की विश्लेषणात्मक शैली के लिए नमूना बन गयीं। उनकी पत्र-लेखन शैली का सर्वोत्कृष्ट और चमत्कारिक उदाहरण वह पत्र है जिसमें उन्होंने कोरनेई के नाटक 'सिड' का पक्ष उसके घोर शत्रु स्किडरी के विरुद्ध लिया है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में बल है, इसके शब्दों में चमक और लालित्य है और वाक्यरचना में अद्भुत कौशल है।

नियमों की प्रतिष्ठा पर सबसे अधिक बल दिया शापेलें ने। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि परम्परागत नियमों का पालन ही कलाकार का प्रथम कर्तव्य है, जो इनका पालन करता है उसकी रचना सुन्दर अवश्य होगी और जो इनकी अवहेलना करता है वह गुमराह

अवश्य हो जायगा। परन्तु अपनी ही रचना 'पिसेल' की असफलता पर दुखी होकर उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा कि उन्होंने सभी नियमों का पालन किया इसलिए एक सुन्दर महाकाव्य उन्होंने अवश्य ही लिखा होगा। बोआलो के विद्रुप ने उसे पाठ के अयोग्य ठहराया। नियमों का पालन उन्होंने अवश्य किया, सविस्तर तुलनाएँ दीं और प्राचीन महाकाव्यों के प्रत्येक कौशल का उन्होंने प्रयोग किया, परन्तु उच्चांग काव्य का वही मानदण्ड नहीं हो सकता। तथापि यह कहा जा सकता है कि उसी विषय पर बाद में लिखे गये काव्यों की तुलना में "पिसेल' ओछा या तुच्छ नहीं है। अन्य समालोचकों में पिले द ला मेसनारदिए और आवे दो विनियाक के नाम उल्लेख योग्य हैं। समालोचना के सम्बन्ध में दो विनियाक का कहना है कि सुन्दर रचना का सौन्दर्यबोध और भी प्रखर हो जाता है जब कि उस सौन्दर्य के कारणों को भी हम जान लें। नाटकों के सम्बन्ध में उनका कहना है कि रंगमंच पर घटनाओं की सत्य-प्रतीति ही सब कुछ है। रंगमंच पर घटनेवाली घटनाएँ सत्य न प्रतीत हों तो दृश्य के अन्तर्गत न तो कोई बुद्धिसम्मत बात की जा सकती है और न कोई बुद्धिसम्मत कार्य किया जा सकता है, परन्तु वे भूल जाते हैं कि दृश्यों में यह प्रभाव भी डाला जा सकता है कि दर्शक स्वेच्छा से अपने अविश्वास को स्थगित रखे।

जें मेरे ने शापेलें के निर्देशों का पूरा-पूरा पालन किया। 'सिलबी' आदि अपने पहले नाटकों में तो उन्होंने प्रचलित स्वच्छन्द ढंग को ही अपनाया था लेकिन बाद को जब कि दुरफे के 'सिलवानीर' का एक संशोधित रूप उन्होंने प्रकाशित किया तो उसकी भूमिका में उन्होंने नाटकीय एकताओं के सिद्धान्त का पुनः प्रतिपादन किया। प्राचीन पद्धति के अनुसार नाटकों में स्थान, काल और कार्य की एकता होनी चाहिए अर्थात् नाटकवर्णित घटनाओं का सम्बन्ध एक ही कार्य से होना चाहिए, और घटनाओं का स्थल भी एक होना चाहिए। समय की एकता का अर्थ यह है कि यदि खेल दो घण्टे का होता है तो यह भास न होना चाहिए कि घटनाओं का वास्तविक समय

इससे कहीं अधिक था। इस सिद्धान्त के प्रयोग के लिए नाटककारों को भावुकता अथवा अनुभूति के किसी विशेष महत्त्वपूर्ण क्षण को केन्द्रित कर ही नाटकों की रचना करनी पड़ती थी। मेरे ने 'सोफोनिस्ब' में इन नियमों का पूरा-पूरा पालन किया है और फ़्रेंच साहित्य में नियमित दुःखान्त नाटकों का यही पहला उदाहरण है।

सत्रहवीं शती के श्रेष्ठ साहित्य के लिए भूमि तैयार करने में दो प्रख्यात फ़्रेंच महिलाओं की भी देन है। मादाम रामबुइए (कैथेरीन द व्हीमॉन, मार्क्विस द रामबुइए-१५८८-१६६५) का महल प्रायः अर्ध शताब्दी (१६१०-५०) तक इस सामाजिक, साहित्यिक और नैतिक आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ था। लूव्हर् के निकट रामबुइए के महल में नियमित रूप से बैठकें होती थीं जिनमें दार्शनिक या नैतिक प्रश्नों पर साहस के साथ विचार किया जाता था, नये लेखक या नयी पुस्तकों पर वाद-विवाद होता था या अन्य विशेष विषयों की आलोचना की जाती थी। प्रतिष्ठित व्यक्ति और व्होआतीर तथा बालजैक जैसे साहित्यिक उनमें सम्मिलित होते थे। रामबुइए की मृत्यु के बाद मादलीन द स्किदेरी ने उनका स्थान ग्रहण किया। स्किदेरी स्वयं एक प्रतिभाशाली लेखिका थीं। अपने उपन्यासों में भाषा की शिष्टता को उन्होंने और भी आगे बढ़ाया। इस शिष्टता के आदर्श का अनुसरण कर प्रेम को उन्होंने ऐसा दिव्य रूप प्रदान किया जो कुछ अस्वाभाविक सा ही जान पड़ता है। उन्होंने यह अभिमत प्रकट किया कि कोमल वृत्तियों का उत्कर्ष ही प्रेम की पराकाष्ठा है। शिष्टता का यह आदर्श परवर्ती श्रेष्ठ साहित्य के मूल उपादानों में समाहित है।

सोलहवाँ अध्याय

कोरनेईए

कोरनेईए (१६०६-८४) में भी क्लासिक युग का पूर्वाभास ही है; वे स्वयं इस युग के नहीं हैं। नियम और अनुशासन की ओर वे अग्रसर होते हैं, परन्तु यह उनकी रचनाओं का मध्यकाल है। उसके पहले भी उन्होंने आत्मनिष्ठ रूप से लिखा और बाद को भी। उनके पहले आठ नाटकों में से छः सुखान्त हैं। पहला 'मेलिट' उन्होंने १६३० ई० में लिखा और अन्तिम 'लिल्युज़िओं कोमिक' १६३६ में। पहला दुःखान्त नाटक 'मेदे' १६३५ ई० में उन्होंने लिखा और १६३६-३७ ई० में 'सिद' का प्रकाशन हुआ जिसने उस समय तहलका मचा दिया और उसकी ख्याति आज भी बनी हुई है।

दो परिवारों की शत्रुता से दो प्रेमियों के व्याहत प्रेम के साधारण विषय के एक प्रकारान्तर को लेकर ही 'ल सिद' की रचना की गयी है; इस क्षेत्र में दोनों प्रेमिकों को भी उस पारिवारिक विवाद में भाग लेना पड़ता है। शिमेन का पिता रोड्रिग के पिता का घोर अपमान करता है। रोड्रिग काउन्ट द गोरमा को व्यक्तिगत युद्ध के लिए ललकारता है और उसकी हत्या कर अपने पिता के अपमान का बदला चुकाता है। शिमेन अब भी रोड्रिग को प्यार करती है और सम्मान के नैतिक स्तर पर रोड्रिग का समर्थन भी करती है तथापि अपने पिता के हत्यारे के नाते उसके दण्ड की माँग करती है। राजा उसको टरका देता है क्योंकि इस बीच रोड्रिग अपने सैनिक नेतृत्व का परिचय देता है और इस प्रकार काउन्ट के उत्तराधिकारी के रूप में वह अपरिहार्य बन जाता है। नाटक में एक

समझौता कराया गया है। अनिच्छुक शिमेन को रोड्रिग से विवाह करने का राजादेश प्राप्त होता है। उधर रोड्रिग भी शिमेन की संवेदनाओं के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान का अचूक परिचय देता है। फिर भी शिमेन की भावनाओं को कोई ठेस न पहुँचे इसलिए उसे एक वर्ष और प्रतीक्षा करती पड़ती है, जिस बीच अपने नये पराक्रम से वह न केवल अपने को शिमेन के योग्य ठहराता है बल्कि उस सम्मान की बाधा को भी दूर करता है कि जिसके कारण शिमेन अपने हृदय के आदेश का पालन नहीं कर पाती। सुखद अन्त में यह विलम्ब वीरोचित प्रेम की तत्कालीन रोमांस परम्परा के अनुरूप ही था परन्तुं आधुनिक समालोचकों को इस नाटक के सम्बन्ध में यह आपत्ति है कि शिमेन और रोड्रिग के बीच एक ऐसे मनोवैज्ञानिक व्यवधान की सृष्टि की गयी है जिसके बाद दोनों का मिलन सम्भव न होना चाहिए। यह ठीक है कि शिमेन अपने ही कमरे में रोड्रिग से मिलती है और उसे यह आशा करने का मौका देती है कि शायद अन्त तक रोड्रिग से वह विवाह कर लेगी, लेकिन शिमेन के अन्तिम भाषण में ही उसके अन्तर्द्वन्द्व का वास्तविक रूप है। वह कहती है—"क्या अपने पिता के रक्त से अपने हाथों को स्वयं रँग कर मैं सदा के लिए लांछन की भागी हूँगी।" यदि नाटक का आधार यही भावना होती तो उस नाटक का रूप बदल जाता और वास्तव में वह एक विषाद-नाटक बन जाता। लेकिन इस रचना में कोरनेईए ने विषाद (ट्रेजेड़ी) की, जिसका मुख्य तत्व, दो समान गहराई की अनुभूतियों के बीच अन्तर्द्वन्द्व है—कल्पना ही नहीं की थी। उन्हें चिन्ता यह थी कि अपने समय के रंगमंच की आवश्यकताओं से इतिहास की वास्तविकता की संगति हो, सामंजस्य हो, और ऐतिहासिक तथ्य यह है कि शिमेन ने रोड्रिग से विवाह किया।

'ल सिड' दुःखान्त नाटक है या दुःख-सुखान्त नाटक, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। परन्तु १६४० और ४३ के बीच कोरनेईए ने जो चार नाटक लिखे—'होरेस', 'सिना', 'पोलिक्यूट' और "ला मोर द पोम्पिए" वे विशुद्ध दुःखान्त नाटक हैं। इन नाटकों में वर्णित समस्याओं का सम्बन्ध

नैतिक अन्तश्चेतना से है और नैतिक तत्त्व इन नाटकों का एक बड़ा उपादान है। भावावेग और कर्त्तव्य के संघर्ष में ही कोरनेईए की मुख्य दिलचस्पी है। क्लासिक नमूने पर उन्होंने घटनाओं के ढ़ाँचे को संकीर्णतम सीमा में आवद्ध रखा है। घटनाएँ चाहे जितनी जटिल हों लेकिन मनोवैज्ञानिक अध्ययन एक सरल योजना की परिधि तक ही सीमित है जो फ्रेंच श्रेष्ठ रचना का सारतत्त्व है। 'होरेस' की योजना में प्रेम और देश के प्रति कर्त्तव्य के वीच संघर्ष है। 'तिना' में राजनीति की लघु और उच्च कल्पनाओं के वीच चुनाव का प्रश्न है। 'पोलिक्यूट' में धर्मिक शहादत और व्यक्तिगत आसक्ति के बीच युद्ध है। लेकिन इनमें नायक-नायिकाओं की व्यक्तिगत मनोभावना के विश्लेषण की चेष्टा व्यर्थ है। ये नायक सहनशीलता और शूरता के प्रतीक स्वरूप हैं जो भविष्य के सम्वन्ध में निश्चिन्त हैं और उनके मूलरूप का कोई परिवर्तन नहीं होता है। नैतिक उद्देश्य पर कोरनेईए बहुत अधिक बल तो नहीं देते, लेकिन व्यक्ति के अन्दर की आदर्श-वादी प्रेरणा की अभिव्यक्ति के लिए द्वार उन्मुक्त कर देते हैं और एक महान् जीवन व्यतीत करने के लिए हमें वे प्रोत्साहन देते हैं। कोरनेईए का प्रेम भी रक्तविकार नहीं बल्कि आध्यात्मिक उद्दीपन है।

इन रचनाओं में 'कोरनेईए' क्लासिक के बहुत निकट पहुँचे हैं, लेकिन इसके वाद ही वे फिर दुःख-सुखान्त नाटकों की ओर झुक पड़े और उनकी पहले की स्वच्छन्दतावादी प्रकृति पुनः एक वार प्रकाश में आयी। शब्दों का उनका चयन मनोहर है, उनके नाटकों के काव्य में गीति-माधुर्य है और सेनेका के नमूने पर विचारों के सार को उन्होंने जिन छोटे-छोटे वाक्यों में व्यक्त किया है वे आज कहावत बन गये हैं।

सत्रहवाँ अध्याय

पासकल

ब्लेज पासकल (१६२३-६८) की पहली मुख्य रचना है 'लेत्र प्रोविंसिआल'। यह १८ प्रचार पुस्तिकाओं की एक माला है जिसे पासकल ने उस समय लिखा जब कि आंतोआं आरनोल पर यह आरोप लगाया जा रहा था कि वे विशप जैनसेन के तिरस्कृत सिद्धांतों की घोषणा और प्रचार कर रहे थे। पासकल ने जैनसेन के सिद्धांतों के समर्थन के लिए ही कलम उठायी। उस समय जेसुइट और जैनसेनिस्ट सम्प्रदायों के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ था और जेसुइटों की कलई खोलने में पासकेल ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पत्रों की रचना उन्होंने इस प्रकार की है कि पेरिस का एक जेसुइट पादरी किसी प्रादेशिक पादरी को पत्र लिख रहा है। पासकेल का कौशल यह है कि पत्र लिखनेवाला अनजाने ही एक के बाद एक अपनी गलतियों को स्वीकार करता जा रहा है और हर वार उसकी कलई खुलती जा रही है। भगवत्कृपा के प्रश्न को लेकर वे विषयारंभ करते हैं और फिर सम्पूर्ण जेसुइट मत को ही टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। पहले वे जैनसेन के सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं, फिर जेसुइटों के मत और उनके नैतिक मान पर भीषण आक्रमण करते हैं। व्यंग्य और विद्रूप से वे अपने शत्रु को क्षत-विक्षत कर डालते हैं। उनका यह फ़र्द जुर्म फ्रेंच गद्य का एक महिमामय स्मारक स्वरूप है। उनकी शैली सरल और लोकप्रिय है और हलके चुटकुलों से वह और भी मनोरम बन गयी है।

गणितशास्त्र और भौतिक विज्ञान में ही पासकल की प्रतिभा की प्रथम अभिव्यक्ति हुई। गणना की एक मशीन के आविष्कार में और पेरिस में

पहले पहल पाँच बग्घियों के यान के प्रचलन में उनकी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय मिलता है। लेकिन उनके जीवन में ऐसे आध्यात्मिक संकट आये कि न केवल धर्म के प्रति उनका आकर्षण बढ़ा बल्कि वे वैराग्य का जीवन बिताने लगे। पारिवारिक जीवन की एक घटना से जैनसेनिस्ट सम्प्रदाय से उनका सम्पर्क हुआ और तब से उनके जीवन पर उस सम्प्रदाय का प्रभाव बना रहा।

उनकी दूसरी और कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कृति है 'ले पांसे' (विचार)। परन्तु इस पुस्तक को वे लिख नहीं पाये थे। धर्म के विषय पर वे अपने विचार लिख रहे थे—कुछ तो एक ही दो वाक्यों में और कुछ कई पृष्ठों में। उनके जीवन के अन्तिम काल में लिखे गये इन विचारों को उनकी मृत्यु के बाद पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। अपने विचारों को वे किस अंश तक, किस क्रम में या किस रूप में प्रकाशित करते यह कोई कह नहीं सकता, लेकिन इनके दो मोटे भाग प्रतीत होते हैं। पहले भाग में मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था का अवलोकन और विश्लेषण किया गया है। इस भाग के प्रत्येक शब्द में एक गूढ़ अर्थ भरा हुआ है, प्रत्येक शब्द मानों एक-एक विचार की सार वस्तु है। इसमें कला का आनन्द चाहे न हो, किन्तु चिन्तक के उद्देश्य के लिए यह पूर्णतः उपयोगी है। वे जीवन के कष्टों का एक सजीव चित्र खींचते हैं, परन्तु वे निराशावादी नहीं हैं क्योंकि वास्तविकता को निडर होकर स्वीकार करते हुए भी अति प्राकृतिक का एक सहारा उनके पास सदा मौजूद है। यह सहारा धर्म ही दे सकता है और ईसाई धर्म का दिव्य सन्देश ही दूसरे भाग का आलोच्य विषय है। और यह धर्म हृदय की अनुभूति की वस्तु है, तर्क का विषय नहीं—"हृदय की अपनी तर्क-युक्ति है जिसके सम्बन्ध में बुद्धि को कोई ज्ञान नहीं है।" फिर भी धर्म की संस्थापना के लिए वे तर्कबुद्धि की उपेक्षा नहीं करते। विशुद्ध गद्य का उपहार तो पासकल ने दिया ही है, लेकिन एक चिन्तक के रूप में ही उनकी यथार्थ देन है।

चौथा भाग

सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध—क्लासिक युग
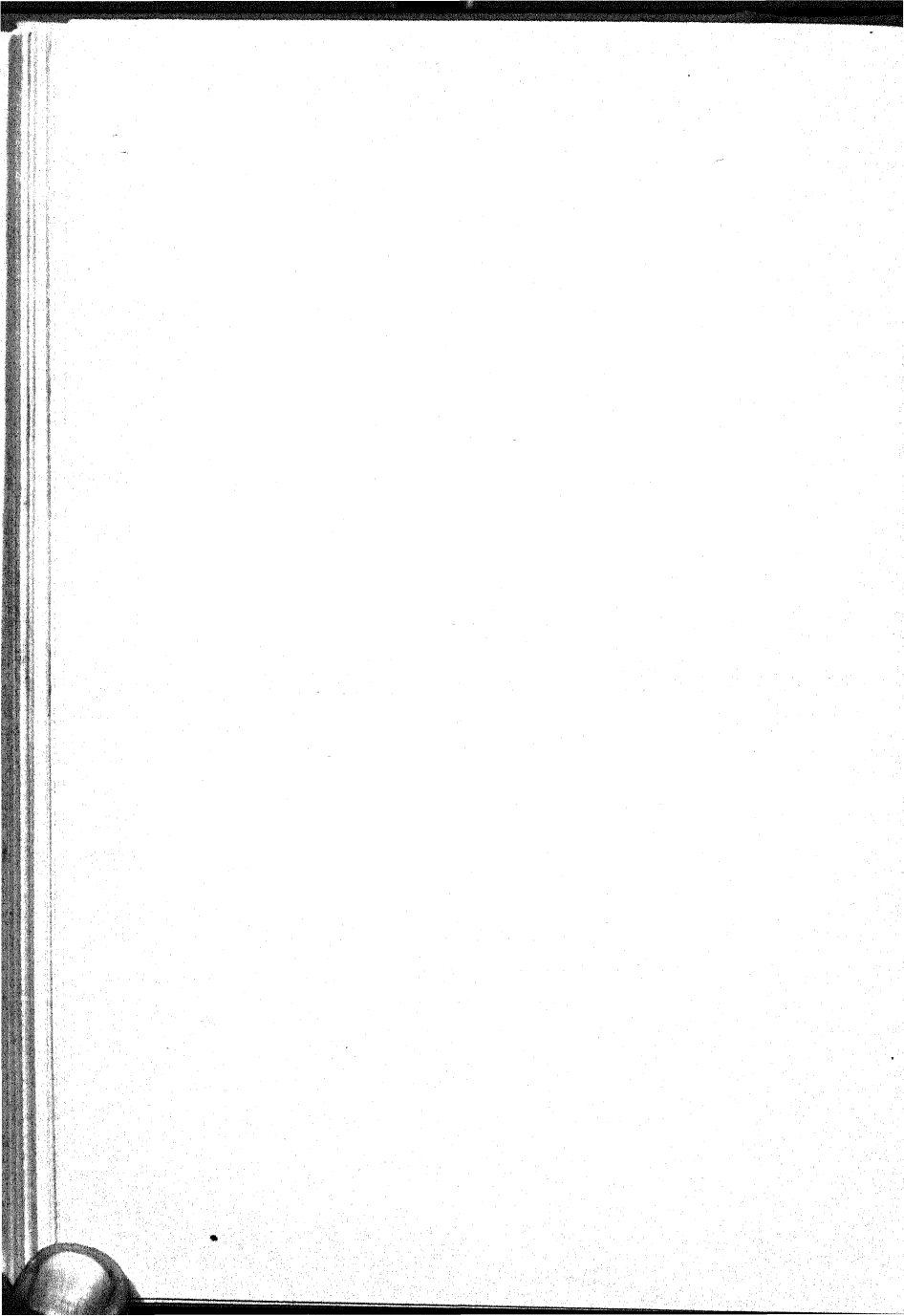
अठारहवाँ अध्याय

मोलिएर

सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध तक उच्चांग सुखान्त नाटक लिखने की अनेक चेष्टाएँ हुईं, परन्तु एक कोरनेईए ही उत्कृष्ट रचना के सीमान्त तक पहुँच पाये थे। उस नाटक का प्रथम परिणत रूप हम मोलिएर में ही पाते हैं। परम्परागत संस्कृति-सम्पन्न विद्वत्-समाज में वे नहीं थे, लेकिन उनमें सर्जन की प्रेरणा है और उत्कृष्ट रचना की अन्तरात्मा उनकी प्रकृति में ही ओत-प्रोत है। युक्तियुक्त और बुद्धि-संगत तथ्य या परिस्थिति की उनकी पहचान अचूक है और उनके कलात्मक स्वभाव में सहज सन्तुलन है। मोलिएर (१६२२-७३) जां बातिस्त पोकेलैं का रंगमंचीय नाम है। पेरिस में एक समृद्ध व्यापारी परिवार में उनका जन्म हुआ और क्लेरमो कालेज में उन्होंने शिक्षा पायी। वे अपने पिता के लाभदायक पेशे का अनुसरण कर सकते थे, लेकिन पेरिस में एक नया प्रेक्षक-गृह खोलने के बेज़ार परिवार के प्रयत्न में योगदान करना ही उन्हें अधिक पसन्द आया। आर्थिक दृष्टि से वह प्रयत्न शीघ्र ही असफल प्रमाणित हुआ। फिर वे एक नाटक कम्पनी के साथ निकल पड़े और दूर प्रदेशों में नाटक खेलते रहे। मोलिएर उस दल के नेता बन गये और उसी बीच दो सुखान्त नाटकों की रचना भी उन्होंने की। तेरह साल बाद पेरिस लौटकर उन्होंने अपनी कम्पनी की पुन:स्थापना की। इस बार उन्हें राजा चौदहवें लुई तथा और लिएन्स के ड्यूक पृष्ठपोषक के रूप में मिल गये और नाटक खेलने के लिए उन्हें पैले रोयाल का सुन्दर प्रेक्षकगृह भी मिल गया जिसका निर्माण रिशलू ने करवाया था।

मोलिएर दु:खान्त और सुखान्त दोनों प्रकार के नाटकों के अभिनय

में कुशल थे, लेकिन नाट्य-रचना के क्षेत्र में उन्होंने सुखान्त नाटक का ही चुनाव किया। इस क्षेत्र के सम्पूर्ण पहलुओं पर उन्होंने इतनी कुशलता प्राप्त की कि आज भी आधुनिक दार्शनिक हास्यरस के उद्भावक उपादानों की खोज के लिए लोग मोलिएर की कृतियों का अध्ययन करते हैं। हास्यात्मक तत्वों का संग्रह वे जहाँ पाते हैं करते हैं। वे स्वयं अपने मस्तिष्क से भी इन तत्त्वों का उद्भावन करते हैं, परन्तु अनुकरण करने में भी उन्हें कोई हिचक नहीं, चाहे वह बाजारू खेलों से ही क्यों न हो। हास्यात्मक परिस्थितियों की सारी दुनिया उनके सामने खुली हुई है। मूर्खता की पराकाष्ठा, अभ्यास-दोष, कुटिलता, सनक, कठमुल्लापन, विद्याडम्बर, सभी उनके नाटकों के अंग बने हुए हैं। मनुष्य के प्रकार विशेष के स्वाभाविक प्रतिनिधि के रूप में लोग किसी दार्शनिक की दृष्टि में कितने हास्यास्पद हो सकते हैं इसका प्रदर्शन मोलिएर ने बड़ी खूबी के साथ किया है लेकिन मनुष्य को मानवसमाज के लिए घृणित नहीं बनाया है। अति यथार्थवादी व्यंग्यों में भी उनका उदार दृष्टिकोण मौजूद है। उनके अपने शब्दों में ही उनका उद्देश्य मानवसमाज का व्यापक अध्ययन है, व्यक्ति विशेषों का चित्रण नहीं। परन्तु वह समाज उनके अपने समय का समाज है, इसलिए उनकी कृतियों में मध्य-सत्रहवीं शताब्दी के फ्रेंच समाज का एक व्यापक चित्र हमें मिलता है।

'प्रेसिओ रिदीकील' मादाम स्कीदेरी की गोष्ठी-जैसी पेरिस की प्रसिद्ध गोष्ठियों के मूर्ख अनुकरणकारियों के प्रति व्यंग्य है। अभिनेताओं ने उनके बनावटी भाषण और आचरण का ऐसा सही चित्र उतारा कि जो वास्तव में सुसंस्कृत थे उनमें भी एक घबराहट पैदा हो गयी। 'लेकोल द मारी' (पतियों का स्कूल) में दो लड़कियों के अभिभावक दो भाइयों के आचरण का अन्तर दिखाया गया है। दोनों भाई उन दोनों लड़कियों से विवाह करना चाहते हैं, लेकिन एक भाई उस लड़की को पति-प्राण बनाने के हेतु, बाहरी दुनिया से उसका सम्पर्क विच्छिन्न करना चाहता है और यह नहीं चाहता है कि गृह-कर्म के अतिरिक्त और किसी प्रकार की शिक्षा उसे प्राप्त हो। दूसरी लड़की की परिचारिका लिसेट उससे कहती है––

"महाशय, हमारा सम्मान अतिशय दुर्बल होता होगा यदि हर समय उसकी रक्षा का प्रवन्ध आवश्यक हो। क्या आपका सचमुच यह विचार है कि इस प्रकार की सावधानी से हमारे इरादों की राह में कोई बाधा पड़ सकती है? हमारे दिमाग में कोई बात आ जाये तो क्या हम चतुर से चतुर व्यक्ति को धोखा नहीं दे सकतीं। यह चौकसी पागलों की भ्रान्ति मात्र है, और हमारे अन्दर चुनौती की भावना पैदा करने का सर्वोत्तम उपाय है। हमें जो रुष्ट करता है, वहुत वड़ा खतरा उठाता है; हमारी इज्जत स्वयं अपनी रक्षा कर सकती है। पाप से वचाने के लिए आप जो इतना प्रयत्न करते हैं वही हमें पाप की ओर ढकेलने के लिए काफी है। यदि मेरा पति मुझे सन्देह की दृष्टि से देखता हो तो मेरी यह प्रवल इच्छा होगी कि उसके संशय को मैं सही सावित करूँ।" कितने ही आधुनिक नाटकों और उपन्यासों का यह एक मुख्य उपादान वन चुका है। 'लेकोल द फाम' (पत्नियों का स्कूल) इसका एक और पहलू मात्र है। आर्नोल्फ भी आनिए को अशिक्षित मूर्ख और असूर्य-म्पश्या वना रखना चाहता है, क्योंकि "चालाक औरत दूसरे प्रकार का जानवर है। हमारा भाग्य उसी पर निर्भर रहता है। वह दृढ़ निश्चय कर ले तो कोई उसे उससे हटा नहीं सकता, हमारे उपदेशों के लिए वह एक चिकने घड़े के समान होगी, उपदेश उसके ऊपर से फिसल जायेंगे। हमारे नीति-वाक्यों के परिहास के लिए वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का प्रयोग करती है, पाप को पुण्य बना देती है और अपने अपराधी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे टेढ़े-मेढ़े रास्ते अख्तियार करती है कि चतुर से चतुर का छक्का छूट जाय।" लेकिन वही आर्नोल्फ पातिव्रत के उपदेश उड़ेलने के बाद आनिये से कृपा-भिक्षा मांगता है—"मेरी प्रियतमा किशोरी. . . .ज़रा मेरे प्रेम की आहभरी पुकार सुन लो, मेरी थकी हुई आँखों को देखो, मेरे वंशाभिमान का खयाल करो, और उस छबीले छोकरे को छोड़ो और उसके प्रेम का तिरस्कार करो। . . . .तुम्हारी तीव्रतम इच्छा सुसज्जिता चपल रमणी वनने की है, मैं वचन देता हूँ कि ऐसा ही होगा। मैं दिन रात तुम्हें प्यार करता रहूँगा, तुम्हें चूमता रहूँगा, तुम्हें ग्रास करता रहूँगा।" (स्वगत) "क्या तुम मुझे

रोते देखना चाहती हो? क्या चाहती हो कि मैं अपने को पीटूँ। क्या यह चाहती हो कि मैं अपने बाल नोचने लग जाऊँ? क्या मैं आत्म-हत्या कर लूँ? कहो, निर्दयी, तुम्हारे लिए अपने प्रेम को प्रमाणित करने के लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।" व्यंग्यात्मक परिणति के साथ यहाँ चरित्र की स्वाभाविकता भी स्पष्ट है। बड़ा शोरगुल मचा कि नाटक यह अश्लील है। उत्तर में मोलिएर ने एक नाटक लिखा 'पत्नियों के स्कूल की समालोचना।' एक बैठक में समालोचना चल रही है। विरुद्ध आलोचनाओं के उत्तर में नाटकीय पात्र उरान कहता है,—"हाँ—'पत्नियों का स्कूल' का अभिनय देखने वाली कुछ महिलाएँ जब सिर हिला रही थीं, मुँह छिपा रही थीं और नाक भौं सिकोड़ रही थीं तो एक अरदली ने यह मन्तव्य प्रकट किया कि इन महिलाओं का पातिव्रत बाकी अंगों के मुकाबले कानों में ही अधिक है।" वही उरान आगे चलकर कहता है—"इन व्यंग्यात्मक अभिनयों को बिना चिढ़ के ही हमें देखना चाहिए। ये सार्वजनिक आईनों की भाँति हैं और इनमें हम स्वयं अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं, यह कभी स्वीकार न करना चाहिए। इन्हें देखकर कोई अप्रसन्न हो तो वह यही घोषित करता है कि टोपी उसी के सिर की है।" विरुद्ध पक्ष की ओर से लीसिडास कहता है–"यह तो कोई सुखान्त नाटक ही नहीं है, गम्भीर नाटकों में और इन तुच्छ अभिनयों में बड़ा अन्तर है। लेकिन सारा पेरिस तो ऐसे ही नाटक देखने को दौड़ पड़ता है और जहाँ वास्तव में सुन्दर नाटक हो रहा हो वहाँ प्रेक्षकगृह खाली पड़ा रहता है।" मोलिएर की लोकप्रियता का यह एक यथार्थ चित्रण मात्र है। धर्म का ढोंग रचनेवाला तारतिफ प्रतारणा का मूर्त रूप है। अपने आश्रयदाता की पत्नी को वह अपना प्रेम अर्पित करता है तो एलमीर कहती है–"उस स्वर्ग को, जिसकी चर्चा हर समय तुम्हारी जबान पर है, नाराज किये बिना मैं तुम्हारी वासनाओं की पूर्ति कैसे कर सकती हूँ।" तारतिफ कहता है–"मेरी इच्छाओं के मार्ग में स्वर्ग की एक मात्र बाधा हो तो उस बाधा को मैं सहज ही दूर कर सकता हूँ।" एलमीर फिर कहती है— "लेकिन स्वर्ग का दण्ड तो भीषण होता है।" तारतिफ उत्तर देता है— "श्रीमती, तुम्हारे इस वाहियात

भय को मैं दूर कर सकता हूँ। शंकाएँ दूर करने की कला मुझे मालूम है। यह सही है कि स्वर्ग कुछ वासनाओं की तृप्ति का निषेध करता है, लेकिन उससे समझौता करने का भी उपाय है। अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपनी अन्तश्चेतना की डोर को शिथिल करना भी एक विज्ञान है।" धर्म के नाम पर ढोंग और प्रतारणा के विरुद्ध मोलिएर ने कशाघात तो किया ही है, लेकिन उससे तारतिफ की स्वाभाविकता पर कोई आँच नहीं लगने पायी और 'डाँ जुआं' तो एक निराला चरित्र है। आलेकजाण्डर की भाँति ही वह विश्वविजयी है, परन्तु वह विश्व है किशोरियों और युवतियों के हृदय का विश्व। हो सकता तो वह दूसरी दुनिया में भी अपने प्रेम का जाल बिछा देता। उसका परिचारक जातारेल उससे पूछता है कि उसका धर्म में विश्वास है या नहीं, स्वर्ग में उसका विश्वास है कि नहीं, परलोक में वह विश्वास करता है या नहीं। जब सभी प्रश्नों के उत्तर में वह ना करता है तो जातारेल पूछता है कि "आखिर आपको किस चीज में विश्वास है" और डॉन जुआॅन कहता है—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि दो और दो मिलकर चार होते हैं और चार और चार आठ।"

अन्त में धर्म पर नहीं तो धर्म के नाम पर किये जाने वाले ढोंग पर तो वह आक्रमण करता ही है। "कितने ही ऐसे हैं जिन्हें धर्म का बाना पहन लेने पर दुनिया में सबसे जघन्य व्यक्ति होने की अनुमति मिल गयी है।" और चिकित्सकों पर मोलिएर के व्यंग्य ने तो उन्हें वास्तव में दया और सहानुभूति का पात्र बना दिया है। मोलिएर ने कोई तीस नाटक लिखे। हो सकता है कि 'ल मिसां थ्रोप' का नायक आलसेस्त वे स्वयं ही हों, जो समाज की मान्यताओं के प्रति किंचित् भी आत्म-समर्पण न कर सकने के कारण सब कुछ खो देता है। अभिनय की दृष्टि से तो मोलिएर के नाटक सफल हैं ही, साहित्य में भी उनका स्थान ऊँचा है।

उन्नीसवाँ अध्याय

ला फॉन्तेन

ला फाँन्तेन (१६२१-१६९५) ने तो परिवार का भी बन्धन तोड़कर काव्य जगत् में अपना साम्राज्य बसाया। चान्सेलर फूकें से लेकर मादाम द ला सालिएर तक अनेक गुणी पृष्ठपोषक भी उन्हें मिल गये। चान्सेलर फूकें के लिए, प्राचीन देव-देवियों को लेकर, उन्होंने 'आदोनी' और 'ओ निम्फ़ द व्हो' दो कविताओं की रचना की। एक और पृष्ठपोषक के सुझाव पर उन्होंने 'किनकिना' कविता की रचना की। उन दिनों रोगों के प्रतिकार के लिए किनकिना का फैशन चल पड़ा था और कुछ लोग बोतलों किनकिना पी जाया करते थे। इन दोनों के बीच उन्होंने गद्य-पद्य में 'ले जामूर द-साइके ए द कीपिदों' की रचना की। इसमें ग्रीक देव-देवियों की कहानियों का वर्णन उन्होंने बड़े रोचक ढंग से किया है। अठारहवीं शती के कल्पित कहानियों के लेखक भी इससे श्रेष्ठतर रचना नहीं कर पाये। स्वयं अपनी प्रेरणा से उन्होंने पद्य में कुछ कहानियाँ लिखीं—'कोतं ए नूवेल आं वेर्'। इनमें कोई नवीनता नहीं है क्योंकि विषयों का चुनाव उन्होंने इटालियन ग्रन्थकार बोकेशिओ, रॉबले और मारगरित दांगुलीम आदि पिछले लेखकों से या प्रचलित नीतिमूलक पशु-गल्पों से ही किया। परन्तु उनकी रचना-शैली में अद्भुत माधुर्य है। साथ ही रचना में कुछ अश्लीलता आ जाने के कारण फ्रेंच अकादमी में उनके चुनाव में कुछ विलम्ब हुआ। तत्कालीन परिमार्जित रुचि से सामंजस्य रखकर ही इनका संशोधन उन्हें करना पड़ा। उनकी सारी रचनाओं को छाप लिया है उनके 'फाब्ल्' ने जो १६६८ और १६९४ के बीच बारह खण्डों में प्रकाशित किये गये। उनकी प्रसिद्धि भी इसी रचना से हुई।

फ़ाब्ल के विषय वे ही हैं जो हमें ईसप्स फेब्लस् में मिलते हैं—पशुजगत् की नीतिमूलक कहानियाँ। फॉन्तेन के जमाने में ही फ्रांस में ईसप्स फब्लस् का प्रकाशन हुआ था और भारतीय हितोपदेश कहानियों का अनुवाद भी १६४४ में प्रकाशित किया गया था। इस क्षेत्र में भी विषयों की नवीनता तो नहीं है, लेकिन उनके रचना-कौशल की बलिहारी है। इस कौशल के द्वारा ही उन्होंने पुराने विषयों को प्रायः एक सम्पूर्ण नूतन रूप दे दिया है। इन कहानियों में दो क्रम दृष्टिगोचर होते हैं। पहले क्रम में ला फॉन्तेन एक विद्वान् यथार्थवादी हैं। ईसप या फीड्रस से वे अपने विषय चुनते हैं। कथा-वस्तु को संक्षिप्त रूप देने में उनका कोई जोड़ नहीं है। कहानियों के मुक्तक छन्दों की सहज गति, पंक्तियों की असमानता और शब्दों की किफायतशारी में उनकी तीक्ष्ण धी-सम्पन्न किंचित् मानव-विद्वेषी भावना का संकेत मिलता है। कहानियों का सबक विशुद्ध बुद्धिवादी है, भावुकता का स्पर्श लेश मात्र नहीं है। दुनिया को वैसे ही लिया गया है जैसी कि वह है। अदूरदर्शी, क्षीणबुद्धि या दुर्बल प्राणियों के लिए यह दुनिया नहीं है। कई गम्भीर तथा हास्यरस मिश्रित कहानियों में पशु तथा मानव चरित्र घुलमिल-से गये हैं। प्रत्येक पशु की जातिगत विशेषता के साथ उसकी अपनी विशेषता भी है। वर्णनकला सजीव है और बुद्धि-चातुर्य व्यंग्यात्मक है। कहानियाँ छोटी-छोटी हैं, परन्तु कथा-योजना में ब्यौरों का अभाव नहीं है और बच्चों की सहज न्याय-बुद्धि की इस माँग की भी पूर्ति की गयी है कि छली स्वयं भी छल का शिकार हो। इन कहानियों का यथार्थवाद कुछ कठोर-सा ही प्रतीत होता है क्योंकि इनमें कल्पना का क्षेत्र अतिशय सीमित है।

दूसरे क्रम में लेखक का मानववादी रूप ही अधिक प्रकट होता है। क्लासिक युग में सम्भवतः ला फॉन्तेन एक मात्र व्यक्ति हैं जिनकी रचनाओं में व्यक्तिनिष्ठ भावना परिस्फुट है। जैसा कि वे हैं, उसके अतिरिक्त अन्य किसी रूप में अपने को प्रकट करने का वे तनिक मात्र भी प्रयत्न नहीं करते। अपने दोषों को वे स्वीकार करते हैं, आंतरिकता में ही उन्हें राहत मिलती है; वे अपने हृदय के संकेतों का ही अनुसरण करते हैं और खेद उन्हें इस बात

का है कि बुनियादी बुद्धि की सम्पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रकृति के तारों से उनके हृदय में झंकार होती रहती है। जंगल, स्वच्छ तरंगिणी या एकाकीपन के आनन्द का जो शब्द-चित्र वे उपस्थित करते हैं, उन्हें कोई भुला नहीं सकता। उनके रूपक में कोई पशु, पक्षी या किसान आता है तो उस पर उनकी अकृत्रिम कृपा बरसती है। लेकिन दरबार या सरकारी ठाटबाट से उन्हें चिढ़ है। जब उनकी कविताओं में इसका उल्लेख आता है तो उनसे श्लेष और व्यंग्य टपकता है।

इन दोनों क्रमों से ला फॉन्तेन के द्विधाविभक्त व्यक्तित्व का अनुमान करना ठीक न होगा। ये दोनों एक ही व्यक्तित्व के दो पूरक अंग मात्र हैं। दोनों अंग सर्वथा पृथक् भी नहीं हैं। उनके व्यंग्यपूर्ण निराशावाद में अनुभूति का कम्पन है और उनका भावुक हृदय हर्षोत्पादक ढंग से श्लेषाघात करने को भी तैयार है। उनकी कला की रमणीयता इसी में है कि अपनी रचना में वे पूर्णतः अनवधान हैं, किसी कलात्मक प्रयत्न का आभास उनकी रचनाओं में नहीं मिलता। उस कला की विशेषता यह है कि दृश्य और रीति-रिवाजों की चन्द सुस्पष्ट रेखाओं से कथा आरम्भ होती है और कहानी सजीव होते ही एक संक्षिप्त नीति-निष्कर्ष सामने आ जाता है। नीति-निष्कर्ष के उनके विदग्ध वाक्यों में कितनी ही कहावतों ने जन्म लिया है।

उनके कवित्व का एक छोटा-सा नमूना है "मोर पंख में कौआ।" कहानी प्रचलित और सुपरिचित है। लालित्यमय, परन्तु अति सरल पदों में घटनाओं के संक्षिप्त वर्णन के बाद उनका निष्कर्ष आता है इशारे में और व्यंग्य में "कौआ एक और प्रकार का भी है, उसके पैरों की संख्या भी वही है, वह भी उधार लिये पंखों का ऐश्वर्य दिखलाता है और वह है चुराया गया साहित्य। लेकिन नहीं—खामोश, उस जाति को मैं नाराज न करूँगा। उनकी आदतों को सुधारना मेरा काम नहीं है।"

वीसवाँ अध्याय

रासीन

फ्रेंच धारणाओं के अनुसार, विशुद्ध ट्रैजेडी (दुःखान्त नाटक) जां रासीन (१६३९-९९) की कृतियों में ही सर्वोच्च शिखर पर पहुँची है। बचपन में ही उनके पिता माता की मृत्यु हो गयी और उनकी दादी ने, जो जैंसेन सम्प्रदाय की थी, उनका पालन-पोषण किया। उन्होंने जैनसेनिस्ट संस्था पोर्ट रायल में रासीन की शिक्षा का प्रबन्ध किया। रासीन को ईसाई संघ के कार्यों के लिए उपयोगी बनाना ही उनके अभिभावकों का उद्देश्य था, लेकिन कविता लिखने में उन्हें रुचि थी और ला फॉन्तेन, मोलिएर तथा बोआलो जैसे विद्वज्जनों के साथ ही वे मिलते-जुलते रहे। उनके नाटकों पर जैनसे-निस्ट धार्मिक शिक्षा का कोई प्रभाव पड़ा या नहीं, यह कहना अत्यन्त कठिन है, परन्तु उनकी संस्था में उन्होंने ग्रीक भाषा का अध्ययन किया था और यह निश्चय है कि अपने नाटकों के लिए उन्होंने ग्रीक नमूना ही चुना। सोफो-क्लिस और यूरीपिडिस के अध्ययन से उन्होंने ग्रीक नाट्य रचना की तकनीक का परिचय प्राप्त किया। जब नाट्य-रचना को ही उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया तो अपने धार्मिक शिक्षकों से उन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया और १६६४ में अपनी पहली ट्रेजेडी 'ला थेबाईड' प्रकाशित की। अगले वर्ष उन्होंने अपनी दूसरी ट्रेजेडी 'आलेक् जान्द्र' लिखी। उनका पहला श्रेष्ठ दुःखान्त नाटक है 'आन्द्रोमाक'। कुछ लोगों के अनुसार यही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, अन्यों के अनुसार 'फ़ेद्र' ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है।

आन्द्रोमाक की कथा-योजना आपेक्षिक रूप से जटिल है, परन्तु इस योजना को बड़ी दक्षता और स्पष्टता से रूप दिया गया है। इसमें कई

प्रेमिकों को शृंखलाबद्ध किया गया है जिनमें एक का दूसरे से, दूसरे का तीसरे से और तीसरे का चौथे से प्रेम है। यदि चौथा तीसरे की ओर मुड़े तो सम्भव है कि दूसरा पहले की ओर मुड़ जाय और कथा का एक सुखद अन्त हो। लेकिन इनमें से प्रत्येक एक मानवीय चरित्र है और शृंखला की कड़ियाँ ही विद्रोह कर बैठती हैं, तो सारा सम्बन्ध अस्त-व्यस्त हो जाता है और एक भयंकर दुर्घटना के रूप में ट्रेजेडी आ खड़ी होती है।

लिटन स्ट्रेची ने अति संक्षेप में और अतीव दक्षता के साथ इस कथानक को लिपिबद्ध किया है—हेक्टर की युवती विधवा पत्नी आन्द्रोमाक को दुनिया में केवल दो ही विषयों में प्रबल आसक्ति है, एक अपना बेटा आस्ट्रियानाक्स और दूसरे अपने मृत पति की स्मृति, और दोनों को पिरस ने बन्दी कर रखा है। ट्रॉय का विजेता पिरस बिलकुल सीधा चलनेवाला और शूरोचित प्रेम करनेवाला राजकुमार है, लेकिन वह कुछ बर्बर है। हरमिओन से विवाह के लिए पिरस वाग्दत्त है, परन्तु आन्द्रोमाक के प्रति उसका प्रबल अनुराग है। हरमिओन एक अति मनोरम बाघिन है और पिरस को पाने के लिए वह वासनानल में दग्ध हो रही है। ओरेस्त एक उदास व्याधिग्रस्त-प्राय व्यक्ति है जिसके जीवन का निर्देशक मन्त्र है हरमिओन की आकांक्षा। ये ही इस विषाद नाटक के उपादान हैं जो तनिक चिनगारी का स्पर्श होते ही बारूद की ढेर की तरह विस्फोट के लिए प्रस्तुत हैं। यह चिनगारी आ गिरती है, जब पिरस आन्द्रोमाक से यह घोषणा करता है कि वह उससे विवाह न करेगी तो पिरस उसके पुत्र की हत्या कर देगा।

आन्द्रोमाक सम्मति प्रदान करती है। परन्तु मन ही मन यह निश्चय कर लेती है कि विवाह के बाद ही वह आत्महत्या कर लेगी और इस प्रकार आस्ट्रियानाक्स का भी प्राण बचा लेगी तथा हेक्टर की पत्नी की मर्यादा की भी रक्षा करेगी। इधर ईर्ष्या की ज्वाला लेकर हरमिओन यह घोषित करती है कि ओरेस्त के साथ वह भाग जायेगी, लेकिन इस शर्त पर कि ओरेस्त पिरस की हत्या करे। ओरेस्त सम्भ्रम और बन्धुत्व के सारे विचारों का परित्याग कर इस काम के लिए राजी हो जाता है। पिरस की वह हत्या

करता है और लौटकर अपनी प्रेयसी के सम्मुख पुरस्कार का दावा पेश करता है।

और तब एक ऐसा उन्मादपूर्ण दृश्य रासीन उपस्थित करते हैं जैसा कि उन्होंने स्वयं भी कहीं और नहीं किया है। क्रोध और अनुताप तथा भय की ताड़ना से हरमिओन अपने दीन प्रेमिक पर ही घूम पड़ती है और खुल्लम-खुल्ला उसके अपराध की तीव्र निन्दा करती है। इसे भुलाकर कि ओरेस्त को स्वयं उसने ही उकसाया था, वह जानना चाहती है कि इस जघन्य हत्या की प्रेरणा उसे किसने दी। वह चीखती है. . 'की तला दी ?' (तुमसे किसने कहा ?) . .एक प्रचण्ड विस्मयकर वाक्य, जिसे सुनकर कोई भुला नहीं सकता। आत्महत्या करने के लिए वह झपटकर रंगमंच के बाहर निकल जाती है, रंगमंच पर अकेला ओरेस्त खड़ा है. . और यहीं नाटक का अन्त हो जाता है।

अपने नाटकों में रासीन ऐसी सभी बहुलताओं को दूर रखते हैं जिनका कथावस्तु से प्रत्यक्ष और अविच्छिन्न सम्बन्ध नहीं है। केवल बुद्धि के द्वारा ही वे नाटक के चरित्र और नाटक की घटनाओं का विश्लेषण करते हैं, जो वस्तु अन्धकार से ढकी हुई है उसे वे प्रकाश में लाना चाहते हैं। चरित्रों के उनके चित्रण में उच्चाभिलाषा, घृणा, प्रतिशोध, गर्व, मातृप्रेम और बन्धुत्व आदि के लिए भी स्थान है। लेकिन केन्द्रबिन्दु है कोई प्रबल वासना या भावावेग। इनमें भी प्रेमवासना को ही मुख्य स्थान मिला है। तथापि अपने साहित्य के द्वारा ही उन्होंने मनोविज्ञान को एक अमूल्य भेंट दी है।

उनके श्रेष्ठ नाटकों में अन्यतम 'फेद्र' ग्रीक नमूने पर आधारित है। नाटक में आतंक, अलौकिकता और ईर्ष्या के प्रबल संघात के बीच ग्रीक धारणा की ही झलक मिलती है कि मनुष्य नियति का खिलौना है, पूर्णतः बेबस। अपने एक और श्रेष्ठ नाटक 'आथाली' का कथानक उन्होंने बाइबिल से लिया है। 'आथाली' कवि-कल्पना से ओतप्रोत है। रासीन में काव्य-शक्ति भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, लेकिन उस काव्य को नाटक से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

इक्कीसवाँ अध्याय

धार्मिक साहित्य, पत्र तथा अन्य रचनाएँ

"क्या मुझे पुनः एक बार मृतात्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनी होगी? क्या आज के गम्भीर और पवित्र आयोजन का विषय वही है जिसे मैंने ही कुछ महीनों पहले, जब कि मैं रानी माता के प्रति अपने विषाद-पूर्ण कर्त्तव्य का पालन कर रहा था, इतना एकाग्रचित्त देखा था। हाय अहंकार! हाय वाष्पमय शून्यता! जब कि अपनी माता के प्रति ममता-पूर्ण अश्रुजल से उसके गाल सिक्त हो रहे थे तब उसने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि इतना शीघ्र वही समूह, उसकी स्मृति में उसी प्रकार का शोकपूर्ण सम्मान प्रदान करने के लिए एकत्रित होगा। विषाद-स्मृति-पूर्ण राजकुमारी! क्या इंग्लैंड को न केवल तुम्हारी बिदाई, प्रत्युत चिर बिदाई का भी शोक उठाना पड़ेगा? जो दृश्य इस समय हमारे समूचे ध्यान को जकड़ रहा है और आतंकित कर रहा है, मुझे यह घोषित करने को प्रेरित कर रहा है कि स्वास्थ्य एक सारशून्य नाम मात्र है; जीवन एक दुःस्वप्न और ख्याति एक पलायनकारी स्खलित नक्षत्र। क्या फिर मनुष्य, जिसे ईश्वर ने अपनी ही प्रकृति स्वरूप बनाया है, एक जघन्य जीव है? क्या मनुष्य, जिसे विश्वत्राता ने अपने को नत किये बिना अपने बहुमूल्य रुधिर से मुक्त किया, . . वह सम्मानित मनुष्य एक छाया मात्र है? मानव अहंकार के इस शोक-व्याकुल प्रदर्शन ने, सार्वजनिक आशा पर तुषारपात करनेवाली इस अकाल-मृत्यु ने मेरी विचारशक्ति को पथभ्रष्ट कर दिया। आत्मावनति की इस अविशेष धारणा का पोषण मनुष्य को करने नहीं दिया जा सकता। मनुष्य को अपने सम्मान का ज्ञान उपलब्ध कराने के लिए सॉलोमन कहता है—

"ईश्वर से डरो और उसकी आज्ञाओं का पालन करो। यही मनुष्य का सम्पूर्ण कर्त्तव्य है, क्योंकि ईश्वर उसके हर काम पर न्याय्य विचार करेगा, चाहे उसमें कोई गोपनीयता रही हो, चाहे वह भला हो या बुरा।" इसलिए जब हम मनुष्य के क्षणभंगुर जीवन के घूमते हुए पथ पर दृष्टि डालते हैं तो उससे सम्वन्धित सब कुछ हमें व्यर्थ, आडम्बरपूर्ण और महत्त्वहीन जान पड़ता है। सब कुछ मर्यादामंडित हो जाता है जब हम उस लक्ष्य की ओर ध्यान देते हैं जिसकी ओर वह क्षिप्र गति से अग्रसर हो रहा है। आइए, अब इस वेदी और उस समाधिमन्दिर के सम्मुख हम, 'एकलेजियास्त' के उस पाठ का मनन करें, जिसका पहला भाग मनुष्य की अकिंचनता का आविष्कार करता है, और दूसरा मनुष्य की महानता का प्रतिपादन करता है। समीपवर्ती यह समाधि हमारी दीनता का विश्वास हमें दिलाये जब कि यह वेदी, जहाँ से हमारी प्रार्थनाएँ ऊर्ध्वगामी होती हैं, हमें अपनी मर्यादा की सूचना दे रही है। अब आपको उन सत्यों की सूचना मिल चुकी है, जिनका प्रतिपादन आज मैं करना चाहता हूँ और जो उपस्थित महानुभावों के, इस गौरवपूर्ण समूह के, जिसके सम्मुख मैं सम्भाषण कर रहा हूँ, ध्यान देने के अयोग्य नहीं हैं। .....यदि मानव प्रकृति आंशिक रूप से भी महिमामंडित हो सकती और इस धूल का, जिसके हम वने हुए हैं, एक सामान्य अंश भी स्थायी विशिष्टता के योग्य होता, तो (राजकुमारी हांरीएता की) तुलना में इसका श्रेष्ठतर अधिकारी कौन हो सकता है?

"राजकुमारी हांरीएता का जन्म ही मानो एक सिंहासन पर हुआ और उसका ऐश्वर्यपूर्ण मानस उसके गौरवपूर्ण जन्म से भी ऊँचा था, जिसे उसकी पारिवारिक विपदाएँ परास्त नहीं कर सकीं। कितनी ही बार हमने कहा होगा कि ईश्वर ने उसके महान् पिता के शत्रुओं से उसे छीनकर फ्रांस को उसे एक उपहार के रूप में प्रदान किया। वह उपहार कितना बहुमूल्य है, कितना अमूल्य है। क्या ही सुन्दर होता यदि इस बहुमूल्य उपहार का स्वामित्व भी अविनश्वर होता। यह विषादग्रस्त स्मृति सर्वत्र व्याप्त है। हमारी आँखें इस विभूति पर पड़ते ही मृत्यु का प्रेत हमारे चिन्तन

पर झपट पड़ता है। आप मुझे यह स्मरण दिलाने की अनुमति दें कि किस प्रकार एक सम्पूर्ण साम्राज्य के प्यार, प्रशंसा और इच्छाओं के बीच वह पली, प्रत्येक नये वर्ष ने उसके व्यक्तिगत आकर्षणों को बढ़ाया और नयी मानसिक सम्पदाओं से उसे विभूषित किया।...साहित्यिक कृतियों पर उसका विचार-निर्णय स्पष्ट और अचूक होता था। साहित्यिक उसका अनुमोदन प्राप्त कर लेते तो अपने को धन्य मानते। उन्हें विश्वास हो जाता कि अनिन्द्य सुन्दर के अपने लक्ष्य पर वे पहुँच चुके। इतिहास को, जिस पर उसका ध्यान विशेष रूप से निबद्ध था, वह राजाओं के परामर्शदाता के नाम से पुकारती थी। इतिहास के पृष्ठों में बड़े से बड़ा राजा भी उसी पद को प्राप्त करता है जिसका अधिकारी वह अपने गुणों के कारण होता है। मृत्यु का स्पर्श जब उन्हें अवमानित कर देता है तो वे परवर्ती वंशों के विचारनिर्णयों की अपेक्षा में इस कठोर न्यायालय में प्रवेश करते हैं। तब उनके चाटुकार उनके साथ नहीं होते हैं। यहाँ वह मनोरम रंग, जिसे दासत्व की तूलिका ने उन पर चढ़ाया था, क्षीण और मलिन हो जाता है। इस पाठशाला में हमारी युवती शिष्या ने उन व्यक्तियों के, जिनके जीवन इतिहास की भित्ति स्वरूप हैं, कर्त्तव्यों का अध्ययन किया था। इस ज्ञान ने उसके किशोर मन को परिपक्व किया और एक दूरदर्शी बुद्धिमत्ता के वर्म से सुसज्जित किया। प्रज्ञाशील पुरुष कहता है—"जिसका अपने 'स्व' पर आधिपत्य नहीं है वह उस नगर के समान है जिसकी दीवारें ढह गयी हैं, जो एक खंडहर बन चुका है।" हमारी वर्तमान प्रशंसा की वस्तु, इस दुर्बलता से परे थी।

मैं बड़ों को भी उस बड़े के द्वारा नवाना चाहता हूँ जिसकी पूजा ये बड़े करते हैं...वन्दनाकार कहता है..."हे भगवन्, तूने मेरे दिवसों की संख्या निर्धारित कर दी है।" अब देखिए कि जिसकी संख्या निर्धारित है वह सीमित है। जिसका जन्म जीवनावसान के लिए होता है उसे उस शून्यता से मुक्त नहीं कहा जा सकता जिसमें उसे प्रत्यावर्त्तन करना है, जब कि प्रकृति के बाहु ने हमें मिट्टी से बाँध रखा है तो ऊर्ध्वगामी होने की आशा हम कैसे कर सकते हैं... तो क्या निराशा ही मनुष्य के ललाट पर

लिखी हुई है? नहीं:...उपमा के सिद्धान्त के अनुसार, जैसे कि हमारा पार्थिव रूप भू-जननी की गोद को लौट जायेगा, उसी प्रकार हमारा आध्यात्मिक अंश अपने सृष्टिकर्त्ता के समीप प्रत्यावर्तन करेगा..हम गर्वित विजेता को अपनी प्रशंसा आत्मसात् न करने दें। हमारी वर्तमान प्रशंसापात्री इन शब्दों की प्रमाण स्वरूप है कि जो अपनी आत्मा पर प्रशासन करता है वह उससे श्रेष्ठतर है जो एक नगर पर विजय प्राप्त करता है........।

क्या हम अफसोस नहीं कर चुके हैं कि सद्यः प्रस्फुटित पुष्प अकस्मात् मुरझा गया। लेकिन अब मैं इस भाषा का प्रयोग न करूँगा। बल्कि अब मैं यह कहूँगा कि मृत्यु ने उन खतरों का अन्त कर दिया जिनसे उसका जीवन घिरा हुआ था। कौन जाने कि उस महान् व्यक्तित्व पर चमत्कारिक आकर्षणों और पथभ्रष्टकारी मधुर चाटुकारिता का आक्रमण नहीं होता। क्या सफलताएँ उसकी आशाओं को और बढ़ावा नहीं देतीं? क्या अहेतुक सराहनाएँ उसकी वासनाओं को और प्रज्वलित नहीं करतीं? एक प्राचीन इतिहासकार (टैसिटस) के शक्तिशाली शब्दों में, वह 'मानवीय महिमा के गर्त में जा पड़तीं'।"

यह है ऑरलियेन्स की डचेज, कुमारी हांरीएता, की अन्त्येष्टि क्रिया के अवसर पर बॉसुए के शोक-भाषण का एक उद्धृतांश।

सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग में धार्मिक भावनाओं का भी पुनरुत्थान हम देखते हैं और उस समय धार्मिक वाग्मिता अपने शिखर पर पहुँची हुई थी तथा धार्मिक वक्ताओं में अग्रगण्य थे बॉसुए। बॉसुए (१६२७-१७०४) एक मजिस्ट्रेट के पुत्र थे। १६६९ में वे बिशॉप बनाये गये। उस समय से लगभग बीस वर्ष तक उन्होंने राज-शोकसभाओं में जो सम्भाषण किये उन्हें 'ओरेज़ों फिनेब्र' के नाम से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। १६७० से १६८१ तक वे राजकुमार के शिक्षक नियुक्त किये गये थे। अपने छात्र के लिए उन्होंने जो निबन्ध लिखे उनमें से कुछ तुरन्त प्रकाशित किये गये (जैसे 'दिसकूर सीर लिस्तोआर यूनिवर्सेल'-विश्व इतिहास पर विचार) और कुछ उनकी मृत्यु के बाद ('पोलिटिक तिरे द लेक्रितिर

सैंत' तथा 'द ला कोनेसांस द दी ए द सोआमीम')। और भी कई अन्य पुस्तकें उन्होंने लिखीं हैं। उनकी उपदेश-वाणियों का भी एक संग्रह है। बॉसुए के भाषण के उद्धृतांश से ही स्पष्ट है कि उनकी लेखनी में कितनी शक्ति है। उनकी भाषा में कल्पनाओं की उद्भावना-शक्ति है, स्पष्टता है और ऋजुता है। उनकी शैली में एक स्वाभाविक छन्द है, गीतात्मकता उसकी भित्ति है। क्लासिक लेखकों में उनकी गिनती सहज ही हो जाती है।

यद्यपि धर्म-वक्ताओं में उनके उच्चासन के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं कर सकता तथापि उस समय की जनता ने कुछ अन्य धर्मोपदेशकों का भी उतना ही समादर किया या कभी-कभी उनसे भी अधिक। बुरदालू उनमें अन्यतम हैं और बिशॉप फ्लेशिए तथा बिशॉप मासिलों का नाम भी इसी सिलसिले में लिया जा सकता है।

मालेब्रांश एक मौलिक चिन्तक है। देकार्त जिन निष्कर्षों पर पहुँचे वहाँ से वे प्रारम्भ करते हैं और अन्त में एक सम्पूर्ण ढांचा खड़ा कर देते हैं। कार्टीजीयन प्रणाली में एक समस्या शरीर तथा मानस और (वस्तु के) विस्तार तथा चिन्तन के बीच सम्बन्ध के विषय पर थी। एक की क्रिया दूसरे पर कैसे होती है इसका कोई उत्तर नहीं मिलता था। इस समस्या के निर्णय के लिए मालेब्रांश को इस तर्क का आश्रय लेना पड़ा कि वास्तव में दोनों के बीच कोई क्रिया प्रतिक्रिया नहीं होती है। ऐसा दिखाई पड़ता है, यह हमारा भ्रम है। उनकी क्रियाएँ परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं बल्कि दोनों समकालीन हैं और दोनों एक ही क्षण में होती हैं, यह ईश्वर की क्रिया है। यह मनुष्य की मानसिक शक्ति नहीं है जो उसका हाथ उठाती है, बल्कि दैवी नियमों के द्वारा हमारी सचेत इच्छा और मांसपेशियों की गति, दोनों में कोई पार्थक्य नहीं हो पाता, दोनों क्रियाओं के समय में कोई अन्तर नहीं रहता। 'रेशर्स दला व्हेरितें' (सत्य का अनुसन्धान) में उन्होंने धार्मिक दृष्टिकोण से दर्शन और विज्ञान, नीतिशास्त्र और मनोविज्ञान के समन्वय की चेष्टा की है।

सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग में और अठारहवीं के प्रारम्भ में अनेक "स्मृतियाँ" भी लिखी गयीं। सामाजिक महिलाओं ने, लेखकों ने और कर्मवहुल जीवन से अवकाश ग्रहण करने वालों ने अपने अवकाश-समय का उपयोग इन्हीं ग्रन्थों की रचना में किया। कार्डिनल द रेट्स (१६१३–१६७९) के 'मेमोआर' का मुख्य विषय फ्रांद का आन्दोलन है, जिसमें उन्होंने स्वयं भाग लिया था। रेट्स के कार्डिनल, पोल द गोंदी, एक ठाठदार राजनीतिक षड़यन्त्रकारी थे जो शायद दूसरा रिशलू बनना चाहते थे। उनके स्मृति-ग्रन्थ के पृष्ठों में उस संघातपूर्ण काल की जटिल घटनाएँ मूर्त हो उठती हैं। इस ग्रन्थ में समग्र दृष्टिकोण का अभाव अवश्य है, लेकिन विभिन्न जटिल परिस्थितियों का वर्णन अतिशय रोचक ढंग से किया गया है। कुछ सम-सामयिक व्यक्तियों का चित्र भी, अधिकांश विरुद्ध भाव से, उन्होंने खींचा है। अपने घटनापूर्ण जीवन के अनुभवों को उन्होंने एक राजनीतिक दर्शन का रूप दिया है। मानवप्रकृति के अध्ययन के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजनीतिज्ञों को अधिक आशा न करनी चाहिए, उन्हें अति विनीत और सावधान होना चाहिए, परन्तु दुर्बल नहीं, और अनिश्चित भविष्य की सभी सम्भावनाओं के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। साहित्यिक गुणों के कारण ही उनकी पुस्तक की ख्याति आज तक वनी हुई है। उनकी शैली में त्रुटियाँ भी कम नहीं हैं, परन्तु श्लेष, अद्भुत वर्णन शक्ति और चरित्र-चित्रण की विशिष्टताओं के कारण इन त्रुटियों पर लोग अधिक ध्यान नहीं देते, वल्कि कथावस्तु का आकर्षण पाठक को अन्त तक अपने साथ रखता है।

ड्यूक फ्रांसोआ द ला रॉकफुको (१६१३-१६८०) का जीवन व्यक्तिगत और राजनीतिक तूफानों के बीच व्यतीत हुआ। रिशलू ने उन्हें कैद किया, माजारैं का उन्होंने विरोध किया, फ्रांद के गृहयुद्ध में वे बुरी तरह घायल ए और उन्हें निर्वासन का भी दण्ड मिला। उत्तराधिकार सूत्र से जब उन्हें ड्यूक का पद प्राप्त हुआ तो उन्हें क्षमा प्रदान किया गया। मादाम द ला फाएत और मारक्विस द साब्ले की गोष्ठियों के वे एक सम्मानित अतिथि थे। पचास साल की उम्र में मादाम द ला फाएत की २५ वर्षीय

लड़की से उन्होंने शादी की। मारक्विस साब्ले की गोष्ठी में अभिजात वर्ग के प्रतिनिधि, जैंसेनिट्स से (जिनमें पासकल भी शामिल थे) वे मिला करते थे और वहाँ वाणियों एवं संक्षिप्त नीति-वाक्यों की विशेष रूप से चर्चा होती थी। इसी पाठशाला में पढ़कर रॉकफुको ने अपनी वाणियों की प्रतिष्ठा की और इन्हीं के लिए वे आज भी विख्यात हैं। अन्तिम बीस वर्षों के अपने शान्तिमय जीवन के अवकाशकाल में उन्होंने अपनी 'स्मृतियाँ' भी लिखीं जो १६६२ में प्रकाशित की गयीं। 'स्मृतियों' में उनके क्रियाशील जीवन का उत्तेजना शून्य और पक्षपात-हीन वर्णन है। 'रेपलेकसिओं ऊ सेन्टेन्स ए मा्क्सिम मोराल' में रॉकफुको की वाणियों का बुनियादी आधार यह है कि मनुष्य आत्मकेन्द्रित है, स्वार्थ जिसका एक अंगस्वरूप है। 'नू सॉम सी आकूतिम आ नू देगीजे ओ ओत्र कांफां नू नू देगीजो आ नू मीम' (हम अन्यों से अपना स्वरूप छिपाने के इतने अभ्यस्त हैं कि अंत तक हम स्वयं अपने से भी अपना स्वरूप छिपा लेते हैं)। उनकी कुछ वाणियाँ इस प्रकार हैं—

(१) अपने श्रेष्ठतम कार्यों पर भी हमें लज्जा आती यदि दुनिया यह जान पाती कि इन कार्यों के पीछे हमारी वास्तविक प्रेरणा क्या थी। (२) दिखावटीपन वह अर्घ्य है जिसे पाप पुण्य की पूजा के लिए चढ़ाता है। (३) दूसरों की विपत्तियाँ सहन करने के लिए हम में पर्याप्त धैर्य है। (४) बुरा उदाहरण पेश करने की स्थिति में न होने पर, अपने को सान्त्वना देने के लिए बूढ़ों को सत्परामर्श देना बहुत पसन्द है। (५) कोई सीधा-सादा भी हो, परन्तु उसमें हृदयावेग हो तो अतिशय वाक्पटुओं के मुकाबले भी दूसरों को अपने पक्ष में लाने की उसकी क्षमता कहीं अधिक होती है। (६) कोई भी इतना सुखी या दुःखी नहीं है जितना कि वह अपने को समझता है।

मादाम द सेवींइए (१६२६-१६९६) उन पत्र लेखकों में हैं जिनके पत्रों में उनके जीवन की घटनाओं की और उनके मनोजगत की झा ँकी मिलती है, जिनके पत्र उनकी आत्माओं की अभिव्यक्ति के साधन स्वरूप हैं। वह समय ही ऐसा था कि कलात्मक रूप से आत्मप्रकाश की चेष्टा को जीवन की

परिस्थितियों में ही प्रेरणा मिली, प्रोत्साहन मिला। मादाम द सेवींइए के पत्रों की यह विशेषता है कि उनमें कलात्मक अभिव्यक्ति की कोई चेष्टा नहीं है, परन्तु घटनाओं के वर्णन और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं के उल्लेख के सहज स्वाभाविक रूप में उनमें अद्‌भुत आकर्षण और अनुपम सौन्दर्य है। वे मानों हाथ में लेखनी लेकर ही पैदा हुईं। सरस्वती की इस श्रेष्ठ कन्या में कृत्रिमता का लेश भी नहीं है, न उनके व्यक्तिगत जीवन में और न उनके पत्रों में। विवाह के आठ वर्ष वाद उनका पति-वियोग हुआ और तब से पारिवारिक स्नेह और मित्रों से पत्र-व्यवहार में ही उन्होने पूर्णतः आत्मनियोग किया। उनकी लड़की जब शादी होने के बाद उनसे विदा हुई तब से अपने जीवन के अन्त तक वे बराबर अपनी पुत्री को चिट्‌ठियाँ लिखती रहीं। उनकी कन्या फ्रांसोआ मारगरित (जो विवाह के परिणामस्वरूप काउन्टेस ग्रिनियां वन गयी) जब पहली बार पेरिस छोड़कर प्रोवांस को जा रही है तो माता चिट्‌ठी पर चिट्‌ठी छोड़ती जाती है—"मेरा दिल टूट रहा है, अब मैं अनुभव करती हूँ कि वियोग क्या है"; फिर लिखती है—"बहुत सावधान रहना, गाड़ी उलट जा सकती है। अब तुम रोन नदी के समीप पहुँच रही हो. . वह भयावह रोन। मेरा दिल भय से कांप उठता है।" लड़की उत्तर देती है—"माँ, तुम व्यर्थ चिन्ता न करो, आखिर यह तो पानी ही है।"

वह अपने पुत्र चार्ल्स को पत्र लिखती है, अपनी चचेरी बहन बुसी राबितैं को, अपने चाचा और अभिभावक क्रिस्टोफर कुलांजे को, जैन्सेनिस्ट राजनीतिविज्ञ पोम्पोन को, कार्डिनल रेट्स को और अन्य दो एक को भी पत्र लिखती है। पेरिस और वारसेइए की प्रति दिन की घटनाएँ उसके पत्रों के विषय हैं—कोई मुकदमा, कोई फाँसी, युद्ध में विजय का कोई समाचार, बॉसुए का कोई धर्मोपदेश, रासीन का कोई नाटक, इत्यादि। पत्रों में वे अपनी टिप्पणियाँ भी देती जाती हैं। यद्यपि इन पत्रों में वस्तुगत दृष्टिकोण की अपेक्षा विषयगत या आत्मगत दृष्टिकोण की ही प्रधानता है तथापि शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्त्व कम नहीं है। योद्धाओं या राजनयज्ञों के

सौभाग्य या मुसीवतें, खवरें और गप्प, धर्मोपदेशकों या लेखकों की विजय-कीर्तियाँ, नगर या दरवार की लज्जाजनक घटनाएँ, सभी उनके पत्रों में लिपिवद्ध हैं। चित्र ईमानदारी से खींचे गये हैं, लेकिन लेखक का समालोचना का अधिकार सुरक्षित है। स्वयं वे मानवीय गुण-सम्पन्न हैं, परन्तु ला व्रेविलिएर के जलाये जाने का जब वे वर्णन करती हैं तो उसमें हृदयावेग का स्पर्श भी दिखाई नहीं देता। उनके पत्रों के कुछ नमूने हम नीचे दे रहे हैं।

चचेरी बहन मादाम द कुलांजे को लिखा गया पत्र

पेरिस, सोमवार, दिसम्वर १५, १६७०

"मैं तुम्हें एक वात वताने जा रही हूँ जो अति आश्चर्यजनक, अचभे में डालनेवाली, अति चमत्कारक, अति अद्भुत, अति मनोरम, अतिशय गड़बड़ी में डालनेवाली, अति अनसुनी, अनदेखी, अति महान्, अति क्षुद्र, अति विरल, अति अनोखी, अति विश्वासयोग्य, अति साधारण, अति सर्वजन-ज्ञात, आज तक अतिशय गोपनीय. . .संक्षेप में एक ऐसी बात है जिसका एक मात्र उदाहरण अतीत कालों में मिलता है और वह उदाहरण भी ठीक नहीं बैठता। एक ऐसी बात जिसका विश्वास हम पेरिस में नहीं करते, भला लिओं में उसका विश्वास कौन करेगा? ऐसी वात जिससे हर एक को रोना आता है. .भगवान् हम पर दया रखें। जिससे सबसे अधिक खुशी मादाम द रोहा और मादाम द ओतेरींव को होती है। (क्योंकि उन्होंने अपने ओहदे के नीचे शादी की)। सारांश यह कि यह बात अगले रविवार को होने जा रही है, जब कि जो लोग वहाँ मौजूद होंगे वे अपनी इन्द्रियों के संवाद पर संशय करेंगे। और यद्यपि यह बात रविवार को होने जा रही है, लेकिन शायद सोमवार को भी पूरी न होगी। मैं यह बात तुमसे बता नहीं पा रही हूँ। अब बूझो कि यह बात क्या है। मैं तुम्हें तीन मौके देती हूँ। क्या कुत्तों को डालने के लिए भी एक शब्द नहीं। अच्छा तो मुझे बताना ही पड़ेगा। मोसिए द लोजों का विवाह अगले रविवार को

लूव्हर में...अब अनुमान करो किससे होने जा रहा है। मैं तुम्हें चार, नहीं नहीं छः नहीं सौ मौके देती हूँ।

मोशिए द लोजीं की शादी चतुर्थ हेनरी की पौत्री, तेरहवें लुई की भातृपुत्री, ऑरलिएन्स के ड्यूक की बेटी से होने जा रही थी, लेकिन मादाम द सेबीनिए का अन्दाज ठीक निकला, शादी रुक गयी।

पड़ोसी गितो के घर में आग लगने की दुर्घटना का वर्णन करती हुई वे अपनी लड़की को लिखती हैं—

'गितो बेचारा करुणा का पात्र बन रहा था। वह अपनी माँ को बचाना चाह रहा था, जो उसके ख्याल में मकान के ऊपरी हिस्से में आग की लपटों से घिर रही होंगी। लेकिन उसकी पत्नी उससे लिपट गयी थी। अपनी पूरी शक्ति के साथ उसकी पत्नी ने उसे अपनी बाँहों में जकड़ रखा था। वह बेचारा बड़े संकट में पड़ा हुआ था.....।'

'...उसकी माता आग की लपटों से बचकर निकल आयी थी...'

एक और पत्र अपनी लड़की मादाम द ग्रिनियां को—

शुक्रवार, सन्ध्या, १४ अप्रैल, १६७१.

"अच्छा तो अब मैं चिट्ठी का पैकेट बना रही हूँ। तुम्हें यह सूचना देने का मेरा इरादा था कि राजा कल शाम को चान्टिली पहुँचे। उन्होंने चाँदनी रात में हरिण का शिकार किया। बत्तियों ने अपना कमाल दिखाया। आतिशबाजी, हमारे शान्त और गम्भीर मित्र चाँद के उजाले में कुछ दब-सी गयी। लेकिन शाम, रात्रि का भोजन और मनोरंजन तो ठाठ से चले। कल के मौसम ने हमें यह आशा दिलायी कि इस शानदार प्रारम्भ का अन्त भी उसके योग्य ही होगा। लेकिन तुम्हारा क्या ख्याल है कि मैं यहाँ लौटी तो मुझे क्या खबर मिली? अभी मैं होश नहीं संभाल पायी हूँ, और मुझे यह भी ठीक ठीक नहीं मालूम कि मैं क्या लिख रही हूँ। व्हाटेल, उस महान् व्हाटेल ने, जो मोशिए फूके का और उसी नाते प्रिन्स कोंदे का पाक-प्रबन्धक था, जो अपनी रुचि के लिए इतना प्रसिद्ध था, जिसकी योग्यता किसी भी सरकार की योग्यता के समान थी—उस व्यक्ति ने जिसे मैं इतनी अच्छी

तरह जानती थी, आज सवेरे आठ बजे, यह देखकर कि मछली जो उसने मँगा रखी थी, प्रत्याशित समय पर नहीं पहुँची, और इस लांछन को, जो उसने सोचा उस पर अवश्य लगेगा, बरदाश्त न कर सकने के कारण, अपने शरीर में तलवार भोंक ली। खयाल करो कि इस हृदयविदारक दुर्घटना से कितनी गड़बड़ी फैल गयी। यह भी सोचो कि वह मर रहा था, उसी समय मछली पहुँच सकती थी। फिलहाल इस घटना के सम्बन्ध में मैं और अधिक कुछ नहीं जानती। मैं यह सन्देह बाकी नहीं रखना चाहती हूँ कि सभी के लिए यह एक अचम्भे की बात थी। मैं समझती हूँ कि जिस मनोरंजन पर पचास हजार क्रौन (क्रौन=५ शिलिंग) खर्च हुआ उसके बीच एक ऐसी शोकपूर्ण घटना फट पड़े तो हर एक को बहुत नागवार गुजरा होगा......लेकिन व्हाटेल के सिवा किसी अन्य विषय पर तुम्हें लिखने की इच्छा मुझे कैसे हो सकती है यह मैं नहीं जानती।"

मादाम द ला फ़ाएत (१६३४-९३) की तीन पुस्तकें 'मांट पांसिएर की राजकुमारी', 'जाईद' और 'क्लीव्ह की राजकुमारी' दूसरों के नाम से प्रकाशित हुईं। 'ब्रिटेन की मादाम हेनरिएटा का इतिहास' और 'ल कोंतेस द तांद' उनके अपने नाम से ही प्रकाशित की गयीं। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उनकी पुस्तकों में 'प्रैंसेस द क्लीव्ह' (क्लीव्ह की राजकुमारी) को ही सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई और स्वयं उनकी भी ख्याति की प्रतिष्ठा इसी से हुई। मादाम द सेवींइए उनकी बचपन की मित्र थीं और ला रॉक फुको से तो उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। कहा जाता है कि "क्लीव्ह की राजकुमारी' पर रॉक फुको का भी प्रभाव पड़ा है। फ़्रेंच भाषा में यह सबसे पहला उत्कृष्ट छोटा उपन्यास है। नायिका मामोआसेल द शार्त्रे सुरूपा और सद्गुण सम्पन्ना है। क्लीव्ह के राजकुमार के लिए, जिससे उसकी शादी होती है, उसमें केवल श्रद्धा की भावना है, लेकिन नेमूर के ड्यूक से उसका गहरा प्रेम का सम्बन्ध है। ड्यूक की शादी राजकुमारी से होने वाली है तथापि क्लीव की राजकुमारी को वह उड़ा ले जाना चाहता है। क्लीव की राजकुमारी अतीव मनोवेदना के साथ उसका प्रत्याख्यान करती है। तदनन्तर

अतिशय मानसिक उद्वेग के कारण वह अपने पति से, नेमूर के ड्यूक से अपने प्रेम की स्वीकारोक्ति करती है, और उसे गाँव ले जाने के लिए प्रार्थना करती है। उसका पति यह समझता है कि राजकुमारी निष्पाप है, लेकिन उसे अपनी पत्नी के लिए इतनी आसक्ति है कि ईर्ष्यापीड़ित होकर थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती है। नेमूर पुनः राजकुमारी की ओर अपना हाथ बढ़ाता है, लेकिन बन्धनमुक्त होते हुए भी राजकुमारी उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है और अपना अवशिष्ट जीवन कान्वेन्ट में जाकर बिताती है।

इस उपन्यास में हृदयावेग और कर्तव्य के संघर्ष में कोरनेई की एक छाया पड़ी है और भावावेगों के तोड़-मरोड़ में रासीन का प्रभाव भी सुस्पष्ट है। अपनी कथावस्तु के लिए मादाम द ला फ़ायेत चाहे जिसकी ऋणी हों, लेकिन योजना और शैली उनकी अपनी ही है और उनकी भाषा में भी उनकी अपनी विशिष्टता है, उसमें आभिजात्य की एक छाप है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रारम्भ भी इसी उपन्यास के साथ होता है, चाहे वह केवल मनोभावनाओं के क्षणिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में ही हो। 'कोंतेस द तांद' को तो आधुनिक यथार्थवादी उपन्यासों की श्रेणी में ही डाला जा सकता है, यद्यपि यह एक छोटी कहानी मात्र है।

शाश्वत श्रेष्ठ रचना (क्लासिक्स) का एक शुद्ध रूप निकॉलस बोआले (१६३६-१७११) में पाया जाता है। वकालत की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए थे, परन्तु साहित्य-रचना उनका असली पेशा था। उनकी बारह व्यंग्य कविताओं का सम्बन्ध अधिकांश समसामयिक साहित्य से ही है। कुछ व्यतिरेक भी हैं, जैसे 'मनुष्य के प्रति व्यंग्य' में उन्होंने जैनसेनिस्ट धर्म-सम्प्रदाय से प्रेरणा ली है; 'ल एमबारा द पारी' में राजधानी की असुविधाएँ और पेरिस के शोरगुल का एक हास्यात्मक वर्णन है। व्यंग्य कविताओं की जोड़ में ही उन्होंने १२ पत्रगीतियाँ भी लिखीं। किसी सार्वजनिक घटना या अपने व्यक्तिगत जीवन अथवा अभिमत के आधार पर ही ये कविताएँ लिखी गयी हैं। उनके विडम्बना-गीत (पैरोडी) 'ला लीत्रैं' में,

गिरजाघर में सवक़ का एक पाठ लेनेवाले, धर्म-प्रचारकों के विवाद की कहानी है। इसमें हास्यरस का एक विरामहीन प्रवाह है। 'लार्ट पोएटिक' में उन्होंने न केवल अपने काव्य-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है वल्कि कविता के नियमों को भी बाँध दिया है। कुछ ही दिनों वाद वे अपने मित्र रासीन के साथ चौदहवें लुई के शाही इतिहास-लेखक नियुक्त किये गये।

बोआलो ने कोरनेई मोलिएर और रासीन की तो प्रशंसा की है, और वह भी उनकी ख्याति सुप्रतिष्ठित होने के वाद, परन्तु समसामयिक अन्य कवियों तथा लेखकों और कुछ पुराने सुप्रसिद्ध कवियों के विरुद्ध भी उन्होंने अपनी कृतियों में उचित-अनुचित, दायें-बायें, आक्रमण किया है। 'काव्य कला' (लार्ट पोएटिक) के दूसरे पद्यांश में ही उन्होंने दी बार्ता पर आक्रमण किया है—"इस प्रकार दी वार्ता ने पुनीत सत्य में तुच्छ चातुरी का सम्मिश्रण कर व्यर्थ ही लिख मारा।" लेकिन 'काव्य कला' के लेखक की हैसियत से ही वे अपने को काव्य के विधानदाता के रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करते हैं, और अनेकांश में उन्हें सफलता मिलती है। फेयरफैक्स, स्पेन्सर, वालर, वर्जिल और थिओक्रीट को वे अपना आदर्श मानते हैं। कवि जन्मना ही कवि होता है, इससे वे अपनी कविता का प्रारम्भ करते हैं। अब उनका उपदेश शुरू हो जाता है कि कवि को क्या न करना चाहिए। तदनन्तर कवि को क्या करना चाहिए, इसकी भी कुछ चर्चा वे करते हैं! कवि को जल्दबाज़ी न करनी चाहिए, शब्द चुन-चुनकर बैठाने चाहिए, छन्द परिवर्तनशील होना चाहिए, गम्भीर से हलका और मनोरम से कठोर और सबसे बड़ी बात—कविता स्वाभाविक, स्पष्ट और बुद्धिसंगत होनी चाहिए। आगे चलकर विभिन्न प्रकार की कविताओं, जैसे सम्बोध गीति (ओड), शोकगीत (एलिजी) आदि की परिभाषा भी वे करते हैं। यदि उनके नियमों और उपदेशों को अभ्रान्त मान लिया जाय तो अनेक सुप्रसिद्ध कवि भी सरस्वती (उनकी भाषा में "पारोसस्") के मन्दिर में पदार्पण करने के अधिकारी न होंगे। लेकिन उनके कुछ सिद्धान्त, जो वास्तव में पुनर्जागरण-युग में ही प्रतिष्ठित हो चुके थे, जैसे "कला के ताने-बाने प्रकृति

में ही मिलते हैं, "बुद्धि के द्वारा ही प्रकृति की व्याख्या की जानी चाहिए" और "सत्य तथा सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है",—चाहे कोई सुकवि पैदा न कर सकें, परन्तु कवियों को कुछ त्रुटियों से बचने में सहायता अवश्य दे सकते हैं।

बोआलो के काव्यसिद्धान्त जो भी हों, उनकी कृतियों में कला का सजीव उदाहरण मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनकी काव्य-कृति की तुलना, उनके प्रशंसक, कवि पोप की कृतियों से की जा सकती है। मानव जीवन के वे एक दक्ष निरीक्षक हैं और उनकी कृतियों में अनुभावात्मक कल्पनाशक्ति का भी अभाव नहीं है। उनकी बहुतेरी विदग्ध उक्तियाँ भी लोकोक्ति बन चुकी हैं।

बाईसवाँ अध्याय

नया मोड़

क्लासिक युग अब समाप्त हो रहा था और फ्रेंच साहित्य के एक नये युग का प्रारम्भ हो रहा था। अठारहवीं शती में ही यह नया युग पूर्ण प्रकाश में आया, लेकिन सत्रहवीं शती के अंत में इसकी स्पष्ट सूचना मिलने लगी थी। बुद्धि के अनुशासन और नियमों की कठोरता ने साहित्यिक स्वच्छन्द वृत्तियों को दबा दिया था। लेकिन इनका लोप नहीं हो पाया था। बुद्धि और प्रकृति अब भी मूलमन्त्र थे लेकिन इन पर कुछ भिन्न अर्थ भी आरोपित किये जा रहे थे। प्रकृति को एक नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु नये चिन्तकों ने नियमबहिर्भूत आकस्मिक घटनाओं और परिस्थितियों पर भी ध्यान दिया और समष्टि को छोड़कर व्यष्टि को ही अपनी खोज का मुख्य विषय बनाया। पर्यटकों के वर्णन ने अज्ञात देश, जाति और रिवाजों का परिचय कराया। और विज्ञान भी नयी दिशाओं में प्रगति करने लगा। काल्पनिक यात्राओं की कथाओं में लेखकों ने धर्म, दर्शन और नैतिकता की प्रचलित धारणाओं को धक्का दिया और ब्रिटेन के बौद्धिक प्रभाव ने परिवर्तनशील तत्त्वों को सहायता दी। इसी नये मोड़ पर हम प्राचीन और आधुनिक का एक द्वन्द्व विवाद पाते हैं। इस विवाद में प्राचीन के समर्थक थे बोआलो और नवीन के समर्थक, 'रेड् राइडिंग हुड', 'सिन्डरेला', 'ब्लूबेयर्ड' आदि अति मनोरम कहानियों के लेखक चार्ल्स पेरोल। चार्ल्स पेरोल ने फ्रेंच अकादमी की एक बैठक में (१६८७) अपनी कविता "ल सिएक्ल द लूई ल ग्रां" (लुई महान् की शती) का पाठ कर इस विवाद का प्रारम्भ किया। उन्होंने मुख्य विचार यह प्रस्तुत किया कि युग की आबो-

हवा से ही साहित्यिक गुणों का सम्बन्ध होता है, श्रेष्ठ रचना का कोई निरपेक्ष मान नहीं होता।

सैं एव्रमाँ (१६१६-१७०३) और बेल, सत्रहवीं शती के अन्त के, साहित्य के इस नये मोड़ के दो प्रतिनिधि स्वरूप हैं। दोनों ने ही जीवन का एक बड़ा भाग अपने देश के बाहर बिताया। सैं एव्रमाँ ने अपने जीवन के अन्तिम ४० वर्ष इंग्लैंड में विताये और मृत्यु के बाद वे वेस्टमिन्सटर ऐबि में दफनाये गये।

'कॉमेडी दे आकादेमिस्त' और 'लेत्र सीर ल त्रेत दे पिरेनीज़' में उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य किया है और इस व्यंग्य का नतीजा भी उन्हें भुगतना पड़ा। 'कॉनवर्साशिओं दी मारेशाल दोकिनकूर आवेक ला पेर काने' केवल सरल हास्य रस से ही परिलुप्त नहीं है, उसमें आनातोल फ्रांस का तीखापन भी है। ब्रिटेन-निवास के समय उनके लेखों में अधिक गम्भीरता आ जाती है। 'ट्रैजेडी' और 'अंग्रेज़ी कॉमेडी' में वे तुलनात्मक साहित्य के नये क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। 'रोमन जाति के विभिन्न गुणों पर विचार' में मॉन्टेस्की का आभास मिलता है और 'धर्म' पर निबन्ध में पासकल का स्मरण हो आता है।

बेल की बौद्धिक वृत्ति एव्रमाँ की अपेक्षा अधिक तीव्र है। लेकिन उनके पत्रों में एक मधुर व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उन्होंने 'पांसे सीर ला कोमेत' और 'पुस्तक जगत् के समाचार' में दार्शनिक तथा साहित्यिक वादविवाद ऐसे सरल, स्पष्ट और जीवित रूप से प्रस्तुत किये हैं कि उनके अपने समय में ये अत्यन्त लोक-प्रिय हो उठते हैं, यहाँ तक कि महिलाएँ भी उनसे आकर्षित होती हैं। 'आलोचना और इतिहास के अभिधान' में उन्होंने अपना प्रगाढ़ पाण्डित्य उड़ेल दिया है। इसी कृति के शस्त्र-भण्डार से अठारहवीं शती के स्वच्छन्द चिन्तकों ने प्राचीन विश्वासों से जूझने के लिए हलके हथियार लिये। बेल का तरीका बड़ी सावधानी से अप्रत्यक्ष युद्ध करने का है। इतिहास या लोक-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों को वे एक-एक कर लेते हैं। उनके सम्बन्ध में प्रचलित तथ्यों का वे उल्लेख करते हैं,

फिर अपनी टिप्पणियों में, जो तथ्य सम्बन्धी वस्तुओं से प्रायः बहुत अधिक होती हैं, वे उन व्यक्तियों से सम्बन्धित किंवदन्तियों का खण्डन करते हैं। उनका व्यंग्यात्मक इरादा तो स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन पाण्डित्यपूर्ण विवेचनों के ऊपर वह केवल ऊपर ही ऊपर तैरता जान पड़ता है। अतीत के विरोधाभासों पर प्रकाश डालने के लिए वे वर्तमान को सामने ला देते हैं। 'पांसे सीर ला कोमेत' में वे कट्टर धर्ममतों से निरपेक्ष सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना की सम्भावना पर विचार करते हैं। बेल ने अपनी दोनों पुस्तकों में धर्म के अलौकिक आधार का खण्डन किया है। प्रोटेस्टेण्ट परिवार में उनका जन्म हुआ था, परन्तु बाद को उन्होंने कैथलिक मत स्वीकार किया। १६७० ई० में जब उन्होंने पुनः प्रोटेस्टेन्ट मत को स्वीकार किया तब से उन्हें देश त्याग कर पहले जेनीवा और स्वीडेन और बाद को राटरडम में रहना पड़ा।

कोरनेई के भतीजे फ़ॉन्टेनेल् ने वैज्ञानिक ज्ञान को जनसाधारण में प्रचारित करने का बीड़ा उठाया और बहुत कुछ सफलता भी उन्होंने इस कार्य में प्राप्त की। 'प्लूरालिते दे मांद' में ज्योतिष-विज्ञान को अतिशय सहज भाषा में उन्होंने लोक-गोचर किया है। 'इस्तोआर दे ओराक्ल' में उन्होंने दिखाया है कि भूत-प्रेत ग्रीक मन्दिरों में भविष्यवाणी नहीं किया करते थे, जैसा कि आम तौर पर समझा जाता था और यह कि ईसा के आने के बाद भी इस रिवाज की समाप्ति नहीं हो गयी थी। मानवीय मूल्यों की आपेक्षिकता और अपूर्णता पर सुन्दर प्रकाश उन्होंने 'मृतों के कथनोपकथन' में डाला है।

सैं एव्रमां, बेल और फॉन्टेनेल्, तीनों के लिए संशयवादी संज्ञा का प्रयोग किया जा सकता है और ऐसे ही लेखकों से एक शाखा "एनसाइक्लोपीडिस्ट्स" की ओर निःसृत हुई है और दूसरी वाल्टेयर जैसे तार्किक युक्तिवादियों की ओर।

जें द ला ब्रुएर (१६४५-९६) सत्रहवीं शताब्दी के बल्कि फ्रेंच साहित्य के ही श्रेष्ठतम गद्य लेखकों में हैं। क्लासिक युग के सभी लक्षण उनमें विद्य-

मान हैं, लेकिन कुछ बातों में वे भविष्य के अग्रदूत स्वरूप हैं और इसलिए परिवर्तन काल के भी प्रतिनिधि स्वरूप हैं। अन्याय और अत्याचार से उन्हें बहुत ही चिढ़ है और उनका सामाजिक विवेक दरिद्र किसानों के कष्टों के प्रति सजग है। उनकी साहित्यिक उपमाएँ कभी-कभी अति आधुनिक, अति यथार्थवाद को छू जाती हैं, जैसे नील मोजे की तुलना वे एक बन्दूक से करते हैं—"एक अति सुन्दर, कारीगरी पूर्ण दिखावे की चीज़ जो न लड़ाई के काम आती है और न शिकार के काम में।" नीचे उद्धृत "भावनाओं" के कुछ अंशों में आधुनिक मनोविज्ञान की झलक आती है यद्यपि यह उनके नैतिकवादी तत्त्वों से दबा हुआ है।

"मानसिक प्रवृत्ति या दुर्बलता के माध्यम से बिना चिन्तन के ही प्रेम की उत्पत्ति होती है। कोई लालित्य या सौन्दर्य हमें मुग्ध करता है और बस हमारे भाग्य का निर्णय हो जाता है। इसके विपरीत बन्धुत्व धीरे-धीरे, समय की गति से और घनिष्ठ परिचय के द्वारा बढ़ता है। कितने वर्षों के स्नेह, मधुरता और सेवा की जरूरत उसके लिए पड़ती है, जिसे कोई सुन्दर मुख या मनोरम हाथ क्षण भर में ही कर डालता है।"

"जो उग्र प्रेम करता है, उसे ऐसे काम करने में, जिनसे उसकी प्रियतमा अकृतज्ञ प्रतीत होती हो, एक मधुर बदला मिलता है।"

"यदि यह सत्य है कि हमारे अन्दर से करुणा और सहानुभूति के निःसृत होने का कारण हमारा यह स्वार्थपूर्ण भय है कि शायद हम भी कभी ऐसी ही परिस्थितियों में पड़ जायँ, तो ऐसा क्यों होता है कि मुसीबतजदा हम से इतनी थोड़ी सहायता मात्र प्राप्त कर पाते हैं?"

"हम अपने मित्रों के सौभाग्य की इच्छा रखते हैं, लेकिन जब वह उन्हें प्राप्त होता है तो हमारी पहली भावना विशुद्ध खुशी की नहीं होती है।"

ला ब्रुएर ने ग्रीक दार्शनिक थिओफ्रास्टस के "चरित्रों" का अनुवाद किया और उसी के साथ स्वरचित "चरित्रों" को जोड़ दिया। अनुवाद के परवर्ती संस्करणों में उनकी अपनी रचना तिगुनी बढ़ गयी और मूल पुस्तक को उसने छा लिया। उनकी रचना के पूरे अंश का नाम 'कारा-

क्तेर उ ले मिएर द स सिएक्ल' (चरित्र या वर्तमान शती के आचार-व्यवहार) है। इसमें चरित्र-चित्रण के साथ विदग्ध वाक्य और विचारों का संकलन है। पुस्तक को अध्यायों में विभक्त कर उन्होंने अपने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक निरीक्षणों को श्रेणीवद्ध करने का प्रयत्न किया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि पुस्तक में कोई विकासक्रम नहीं है और अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि यह उनके विचारों की एक आलमारी है। चरित्रों में उन्होंने विभिन्न श्रेणियों के विभिन्न प्रतिनिधियों को लिया है, लेकिन वे बारम्बार कहते हैं कि मनुष्य का अध्ययन ही उनका वास्तविक लक्ष्य है। यद्यपि उनके चरित्रों में तदानीन्तन व्यक्ति-विशेष का सादृश्य कहीं-कहीं वहुत स्पष्ट है, परन्तु, मोटे तौर पर, जैसा कि पुस्तक के शीर्षक में कहा गया है, इसमें उनके अपने युग के आचार-व्यवहार का एक दिग्दर्शन मिलता है।

उनके वाक्यों का चयन त्रुटिहीन है और उनकी शैली में सम्पूर्ण सन्तुलन है। जीवन की वढ़ती हुई कृत्रिमता के प्रति असन्तोष, सादगी के ताजेपन के प्रति रुझान और प्रकृति के प्रेम में वे रूसो की एक पूर्व सूचना देते हैं। उनके हलके फुलके छोटे वाक्यों में और वाक्यों की रचना-विभिन्नता में वोल्ट्येर के आगमन की सूचना मिलती है। उनका चित्रमय वर्णन भी आकर्षक है—"पहाड़ी के उतराव पर रँगा हुआ एक छोटा सा शहर. .।"

पादरी फ़ेनेलां (१६१५-१६५१) प्राचीन परम्पराओं के प्रति पूर्णतः श्रद्धाशील थे, परन्तु उनके मन का द्वार खुला हुआ था और कई दिशाओं में उन्होंने अगुआ का काम किया है। वे दस वर्षीय बालक बरगण्डी के ड्यूक के शिक्षक नियुक्त किये गये थे और बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने एक किताब लिखी। अपने छात्र के लिए ही उन्होंने 'टेलेमाक' की रचना की। यूलिसिस का लड़का टेलिमेकस, अपने पथ-प्रदर्शक मेंटर को लेकर अपने पिता की खोज के लिए निकल पड़ता है। एक साहसी भ्रमण की कहानी के रूप में यह पुस्तक लिखी गयी है। उपन्यास नैतिकतापूर्ण है। वारसेइए की भ्रष्ट कृत्रिमता से अतिशय भिन्न आदिम काल की काल्पनिक

विशुद्धता का चित्र इस उपन्यास में उतारा गया है। अधिक खतरनाक बात यह है कि इसमें कहा गया है, राजा कानून से परे नहीं है, राष्ट्र मानवता से परे नहीं है और युद्ध जुर्म है। एक अंश तक इसमें सामाजिक समानता का भी प्रचार किया गया है। उनकी बिना अनुमति के ही यह पुस्तक प्रकाशित की गयी, लेकिन तब तक राजकुमार के शिक्षक के पद से वे निवृत्त किये जा चुके थे और कैम्ब्रे के गिरजा-क्षेत्र में वे निर्वासित किये जा चुके थे। उन्होंने मादाम गियों की मौन साधना का मत प्रचारित किया, यही उनके निर्वासन का कारण बना। मादाम गियों के मत को रहस्यवादी मत भी कहा जा सकता है। उसके अनुसार ध्वनिविहीन, प्राय: चेतनाविहीन प्रार्थना से भगवान् का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है। 'एक्सप्लिकाशिओं दे माक्सिम दे सैंत सीर ला व्ही ऐंतेरिओर' में इस मत के प्रचार करने के कारण फ़ेनेलॉ पर रोम की कोपदृष्टि पड़ी।

'मृतात्माओं का कथनोपकथन' और नीतिमूलक छोटी कहानियाँ भी उन्होंने अपने छात्र के लिए ही लिखी थीं, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए ही वे उपभोग्य हैं। उनकी शैली वस्तुओं की गहराई में प्रवेश करने वाली है, लेकिन उनकी भाषा में सामर्थ्य के साथ ही माधुर्य और लालित्य है। फ्रेंच अकादमी को लिखे गये अपने पत्र (लेत्र आ लाकादमी) में वे कहते हैं कि कठमुल्लापन नहीं बल्कि रुचि ही लेखनकला का निर्देशक सिद्धान्त होना चाहिए। उन्हें इसका खेद था कि क्लासिक युग ने फ्रेंच भाषा में इतनी काट-छाँट की।
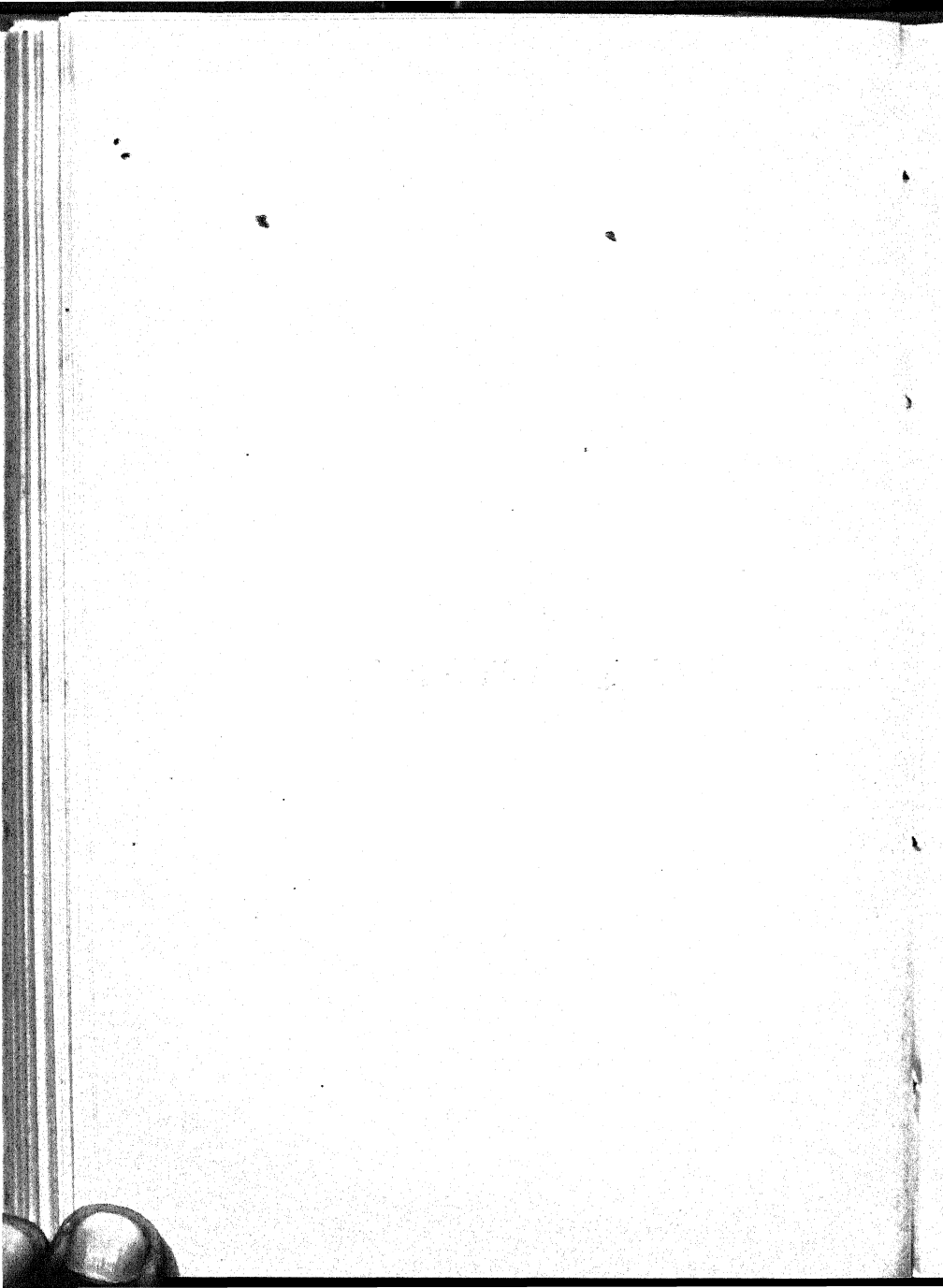
तेईसवाँ अध्याय

मॉन्टेस्की

धर्म और प्रशासन के प्रति एक विरुद्ध भाव का प्रारम्भ हम सत्रहवीं शती के अन्त में ही देख चुके हैं। चौदहवें लुई की मृत्यु के बाद यह भावना और भी प्रबल हो उठी। राजा और धर्मसंघ ने मिलकर जिस आलोचनात्मक प्रवृत्ति को दबा रखा था, अठारहवीं शती में उसका एक उभार हम पाते हैं। सँ एव्हरमाँ और बेल में हम इंग्लैंड का प्रभाव देख चुके हैं। अब फ्रेंच बुद्धिवादियों ने ब्रिटेन की धार्मिक सहिष्णुता से भी सबक लेना शुरू किया। सत्रहवीं शती के अन्त में ज्ञान-विज्ञान का आकर्षण हम देख चुके हैं। अठारहवीं शती में वह चरम उत्कर्ष पर पहुँचा। फ्रांस के इस युग में एक नये देवता, बुद्धि-देवता की प्रतिष्ठा हुई। इस युग को बुद्धिवादी युग का नाम देना सर्वथा युक्तिपूर्ण है। अधिकांश लेखकों ने सुधार का पक्ष ग्रहण किया और उनका एक अलग वर्ग ही बन गया, जिसका यह विश्वास था कि बुद्धि के द्वारा सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है। परन्तु बुद्धिवाद की प्रभाव-वृद्धि के साथ ही कल्पनाशील हृदयावेग की पुकार ने भी कुछ लोगों को आन्दोलित किया। यद्यपि कुछ दिनों तक ये साथ चले तथापि अठारहवीं शती के अन्तिम भाग में हम भावुकता को बुद्धिवाद के विरुद्ध विद्रोह करते पाते हैं। इस भावुकता-वादी आन्दोलन ने एक नये बौद्धिक और कलात्मक विकास को प्रोत्साहित किया जिसने फ्रेंच साहित्य को समृद्धि और वैभव प्रदान किया।

फ्रेंच साहित्य को मॉन्टेस्की (१६८९-१७५५) की देन है इतिहास और राजनीति का दर्शन। 'ले लेत्र पेरसान' (ईरान की चिट्ठियाँ) ने

उन्हें साहित्यिक ख्याति प्रदान की, लेकिन पुस्तक से यह आभास नहीं मिलता कि लेखक कोई गम्भीर प्रकृति का सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिक है। यह पुस्तक अंशतः उपन्यास है, परन्तु बाद को ईरान के दो पर्यटकों को लाकर मॉन्टेस्की ने तत्कालीन फ्रेंच जीवन के पर्यवेक्षण और आलोचना का अवसर निकाल लिया। किसी विदेशी या दूसरे किसी ग्रह के पर्यटक की जबान और आँखों से देश-विशेष की आलोचना का साहित्यिक कौशल आज बहुत पुराना और सुपरिचित हो गया है, परन्तु इसकी पहल का श्रेय मॉन्टेस्की को ही प्राप्त है, यद्यपि उनके पहले भी एक आंशिक प्रयत्न इस दिशा में हो चुका था। विशेष कर राजनीतिक और धार्मिक प्रश्नों पर उन्होंने जिस रूप से विचार किया है उसमें उनके साहस का परिचय मिलता है। पुस्तक में ईरान के दो पर्यटक ईसाई धर्म की तुलना अन्य धर्मों से करते हैं और वे पादरी-विरोधी बुद्धिवादी के रूप में प्रकट होते हैं। ईरानी पर्यटकों की कल्पना के लिए उन्हें किसी बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि हाल में ही ईरानी राजदूत ने फ्रांस-नरेश से भेंट की थी। जिस काल्पनिक ट्रोगलोडाइट जाति की वर्णना वे करते हैं, उनकी मुसीवतें उसी दिन से शुरू होती हैं जब से वे एक राजा को चुन लेते हैं। इस प्रकार व्यंग्य और हँसी के बीच भी एक गम्भीर विषय का आभास पुस्तक में है। फिर भी इसकी गिनती हलके साहित्य में ही होती यदि इसकी शब्दों की कुशल किफायत और शैली की संयमित चमक में एक श्रेष्ठ कलाकार का हाथ न होता।

दो और प्रेमोपन्यास, 'लतांप्ल द नीद' और 'ल व्होयाज़ आ पाफ़ो' लिखने के बाद उन्होंने यूरोप की यात्रा की। वे इटली और हालैंड गये और अन्तिम दो महत्त्वपूर्ण वर्ष उन्होंने इंग्लैण्ड में बिताये। यहीं उन्हें एक आदर्श राजनीतिक प्रथा दिखाई दी—राजशासन जिसमें राजाधिकार पर पार्लमेंट का अंकुश है। स्वदेश प्रत्यावर्तन कर उन्होंने ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं की प्रशंसा शुरू कर दी जिसका फ्रेंच राजनीतिक विचारधारा पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। 'ले कॉनसिदेराशिओं सीर ला कोज द ला ग्रान्देर दे रोमा ए द लेर देकांदास' (१७३४) इसी समय की उनकी गम्भीर रचना

है। यह रोमन गणराज्य के उत्थान और पतन का इतिहास इतना नहीं है जितना कि इतिहास का एक सिद्धान्त है। सिद्धान्त यह है कि दुनिया में अकस्मात् कुछ नहीं होता, शासनों के उत्थान और पतन के भी नैतिक या भौतिक कारण होते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक और नैतिक निवन्ध है। इतना बड़ा इतिहास लिखने के लिए उनके पास सामग्री नहीं थी, लेकिन जो मसौदे उन्हें मिले उनका उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया। रोम-निवासियों के चरित्र, मनोवृत्ति और जीवन पर आधारित इस इतिहास का मुख्य ढाँचा वास्तविकता की कसौटी पर आज भी टिका हुआ है। अपने प्रतिद्वन्द्वियों में फूट पैदा कर, उन्हें थकाकर, रोम ने जिस अथक परि-श्रम की नीति से उन पर विजय प्राप्त की उसका विश्लेषण भी महत्त्वपूर्ण है। निरन्तर खतरे से रोमनों में जो गुण पैदा हुआ उसका भी उल्लेख है और खतरा हट जाने पर किस प्रकार भ्रष्टाचार फैला उसका भी उल्लेख है। भौगोलिक, भौतिक, सामाजिक और नैतिक प्रभावों पर उन्होंने विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने यह भी वताया है कि किस प्रकार बाहरी आक्रमणों से रोम के अन्तिम पतन के पहले ही उसका वास्तविक पतन हो चुका था क्योंकि उसमें अन्दर से ही घुन लग गया था।

मॉन्टेस्की को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई अपनी किताब 'लेस्पिरि दे लोआ' से। यह एक कानूनदाँ का लिखा हुआ राजनीतिक सिद्धांत है, जो विभिन्न राज्यों के, चाहे वे प्राचीन हों या आधुनिक, संविधान की जाँच, उनके द्वारा वताये गये कानूनों के आधार पर करता है। जव उनके कानूनों में उन्हें विभिन्नता दिखाई देती है, जैसे कि साम्राज्यवादी रोम और अपने युग के इंग्लैड में, तो उनकी व्याख्या वे जलवायु, भौगोलिक स्थिति, प्रचलित पेशों और जनगण के राजनीतिक विकास के आधार पर करते हैं। मॉन्टेस्की का 'वैधता की आपेक्षिकता' का सिद्धान्त मोंतेई के 'नैतिकता की आपेक्षिकता के सिद्धान्त' के अनुरूप ही है, अर्थात् विधि-विधान और नीति सव कालों के लिए एक समान नहीं होती। उनका कहना है कि प्रचलित कानूनों से राष्ट्र के चरित्र और इतिहास का पता लगाया जा सकता है। सरकारों को वे

तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं—निरंकुश शासन जो भय तथा दास मनोवृत्ति पर आधारित है, विधिबद्ध नृपति का शासन जो सम्मान अर्थात् श्रेणियों और जातियों के प्रति कर्तव्य पर आधारित है, और गणतन्त्र जो सद्गुणों पर प्रतिष्ठित है। मॉन्टेस्की को नृपति-शासन ही पसन्द है और यह निरंकुश शासन में परिणत न हो, इसके लिए वे अधिकारों के पृथक्करण का सिद्धान्त सामने लाते हैं। पृथक् अधिकारों से उनका तात्पर्य यह है कि नृपति, जिसमें प्रशासकीय अधिकार निहित है, कानून न बनाये। कानून बनाने के लिए एक स्वतंत्र विधान-निर्मात्री संस्था हो। कानूनों का प्रयोग किस प्रकार हो यह निर्णय एक और स्वतंत्र संस्था करे—कोई न्याय-संस्था। केवल इसी प्रणाली से व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की सुरक्षा सम्भव है। ब्रिटिश संविधान पर उन्होंने अलग अध्याय ही लिखा है। उनके दृष्टिकोण के एक पहलू को न केवल उनकी पीढ़ी ने बल्कि उनकी परवर्ती पीढ़ियों ने भी स्वीकार कर लिया। वह है देवता के रूप में युक्ति और बुद्धि की प्रतिष्ठा। इस देवता की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा है—"बुद्धि हमारी इन्द्रियों में सबसे महान्, सबसे अधिक सम्पूर्ण और सबसे अधिक सुन्दर है।"

चौबीसवाँ अध्याय

वोल्ट्येर

वोल्ट्येर (१६९४-१७७८) का असली नाम फ्रांसोआ-मारी आरूए है। वोल्ट्येर का बहुमुखी व्यक्तित्व अठारहवीं शती के फ्रेंच साहित्य पर स्थायी चिह्न छोड़ गया है। अपने युग वालों के लिए वोल्ट्येर कवि और नाटककार ही थे। वाक्य-स्वच्छन्दता, लघु, कुशल स्पर्श और प्रत्युत्पन्नमति उनकी कविता की विशेषताएँ हैं। परन्तु उनका महाकाव्य 'हैनरिआद' यदि महापतन से बच गया है तो केवल लेखक की चतुराई के कारण। इसकी प्रचुर और कठोर समालोचना की गयी है, परन्तु इसके कुछ अंश वास्तव में सुन्दर हैं और दिलचस्प भी। इसमें ब्रिटिश स्वतन्त्रता का चमकता हुआ चित्र है और पोतिएर का साहित्यक राजनीतिक भाषण ओजपूर्ण है। उन्होंने बीस दुःखान्त नाटक लिखे। ढाँचा कोरनेई और रासीन का है, लेकिन गाम्भीर्य, क्लासिक सरलता और अन्तिम विषाद की इकटक प्रतीक्षा उनकी अपनी है। प्रचलित नाट्य-साहित्य में उन्होंने कुछ नवीनता लाने का प्रयत्न किया। उन्होंने नाटकों की विषय-वस्तु का प्रसार किया। उस समय तक रोमन या ग्रीक विषयों को लेकर ही विषाद-नाटक लिखे गये थे। परन्तु 'जाईक' का विषय जेहाद (यरुशलम का) है, 'आलजीर' पेरू के स्पेनिश के सम्बन्ध में है, 'मुहम्मद' का विषय नबी का उत्थान है, 'तांक्रीद' का सम्बन्ध मध्ययुग से है और 'सेमीरामी' का सम्बन्ध प्राचीन मिस्र से है। वोल्ट्येर की दूसरी प्रवृत्ति, जो उनके युग की एक विशेषता बन गयी, नाटकों को दार्शनिक उद्देश्यों का साधन बनाना है। 'मुहम्मद' में उन्होंने खुले रूप से धार्मिक उत्तेजना और पागलपन का विरोध

किया है। परन्तु निर्लज्ज साहस के साथ उन्होंने पोप के नाम इसे उत्सर्ग किया और इसी कारण उस नाटक पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा। 'मोर्त द सीजर' में राजनीतिक अत्याचार की निन्दा है। उनकी तीसरी चेष्टा है दृश्यों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना। एक दिलचस्प बात यह है कि वोल्ट्-येर ने ही फ्रांस में शेक्सपियर के नाटकों को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया, और उन्हीं ने बाद में फ्रांस से शेक्सपियर को बहिष्कृत करने का आन्दोलन खड़ा किया। ८३ वर्ष की उम्र में जब अपने निवास-स्थान फर्नी से चलकर वे अपने अन्तिम दुःखान्त नाटक 'इरीन' का खेल देखने को पेरिस गये तो जनता ने उनका उन्मत्त स्वागत किया। फ्रांस के उस युग में उनके व्यक्तित्व और विचारों का कितना आदर था, इसी से स्पष्ट हो जाता है।

इतिहासकार के रूप में वोल्ट्येर नवीन मार्ग-प्रदर्शक हैं और उनकी ख्याति का आधार सुदृढ़ है। द्वादश चार्ल्स का इतिहास ठोस बुनियाद पर लिखा गया है। उनका दृष्टिकोण आधुनिक और वस्तुगत है। विभिन्न परिस्थितियों के बीच स्वीडेन-नरेश के व्यक्तित्व का वर्णन इतना आकर्षक है कि यह एक ऐतिहासिक उपन्यास जैसा ही लगता है। 'रमार्क सीर लिस्तोआर' और नूवेल 'कॉनसिदेराशिओं' में इतिहास के उद्देश्य को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है—"आं सोरे एंसी लिस्तोआर दे जाम, ओ लिए द सावोआर ईन फेइब पार्ती द लिस्तोआर द रोआ ए दे कूर" (इतिहास मानव समाज का होना चाहिए न कि उसके एक दुर्बल भाग का जिसका सम्बन्ध राजाओं और उनके दरबारों से है)। 'चौदहवें लुई की शताब्दी' वोल्ट्येर के लिए एक आदर्श शताब्दी है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्याश्रयी और पक्षपात-रहित है। जहाँ जरूरत थी वहाँ उच्चाभिलाषी लुई की त्रुटियों पर उन्होंने उँगली रख दी है और उनके परम शत्रु इंग्लैंड-नरेश विलियम की प्रशंसा की है। दूसरे भाग में जब वे फ़्रांस के सामाजिक और नैतिक जीवन पर आते हैं तो परिस्थितियों का नया मूल्यांकन तो करते हैं, परन्तु परम्परागत कसौटी को वे छोड़ नहीं पाते। फिर जब वे विज्ञान, साहित्य आदि की चर्चा करते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता

है कि इतिहास के विकास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो गया है। १७४० ई० में उन्होंने विश्व-इतिहास लिखना शुरू किया, जहाँ पर बॉसुए ने समाप्त किया था। बाद को यह 'लेसे सीर ल मेएर'' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें विश्व-इतिहास की वैज्ञानिक समीक्षा की अपेक्षा गाली-गलौज ही अधिक है। परन्तु इस अर्थ में कि उन्होंने एशिया और अमेरिका को भी इस इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया, वे अपने युग से कुछ आगे बढ़े हुए थे।

अपने उपन्यासों में वोल्टेयर ने अपनी सारी विदग्धता और प्रतिभा प्रकट की है। 'ज़ादिग' के नीचे दिये गये दो नमूनों में ही तीक्ष्ण दर्शन-शक्ति, व्यंग्य, कौतुक और हास-परिहास का अपूर्व भण्डार मिल जाता है—

"महिला सेमीर का दस्युदल के हाथों से उद्धार करते हुए एक तीर जादिग की आँख के पास आ लगा। घाव गहरा था, वहाँ एक नासूर वन गया और आँख के लिए ही खतरा खड़ा हो गया। मेम्फिस को प्यादे दौड़ाये गये और वहाँ से प्रसिद्ध डाक्टर हरमिज भृत्यदल सहित आ पहुँचे। उन्होंने जखमी आदमी को देखा और एलान किया कि उसकी आँख जाती रहेगी। उन्होंने इस दुःखद घटना की तिथि और घड़ी भी वता दी। उन्होंने कहा—"दाहिनी आँख होती तो मैं उसे बचा लेता, लेकिन बायीं आँख की चोट लाइलाज है। सारे वेबीलॉन को जादिग की हालत पर तरस आया, लेकिन डाक्टर की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा में वे शतमुख थे। दो दिन वाद नासूर आप से आप फूट गया और जादिग बिलकुल स्वस्थ हो गया। विद्वान् डाक्टर ने यह प्रमाणित करने को कि जादिग को अच्छा न होना चाहिए था और उसकी आँख फूट जानी चाहिए थी, एक किताव लिख डाली।"

"एक दिन एक छोटे-से जंगल के पास टहलते हुए जादिग ने रानी के मुख्य परिचारकों और कुछ अधिकारियों को अपनी ओर दौड़ते हुए देखा। उसने लक्ष्य किया कि वे लोग कुछ विकट परेशानी में थे क्योंकि वे भौंचक इधर-उधर दौड़ रहे थे, मानो किसी खोई हुई बहुमूल्य वस्तु की वे

तलाश कर रहे थे। जब वे उसके पास आ पहुँचे तो मुख्य नपुंसक परिचारक ने उससे पूछा—"क्या तुमने रानी के पालतू कुत्ते को देखा है?"

उत्तर में जादिग ने प्रश्न किया—"क्या वह कोई छोटी कुतिया है?"

"ठीक कहते हो।"

"वह एक बहुत छोटी स्पेनियल है, हाल में ही उसके बच्चे पैदा हुए हैं, वह बायें पैर से कुछ लँगड़ाती है और उसके कान लम्बे हैं।"

उत्फुल्ल होकर नपुंसक परिचारक ने कहा—"तो तुमने उसे देखा है?"

जादिग ने जवाब दिया—"नहीं, मैंने तो उसे कभी नहीं देखा। मुझे नहीं मालूम कि रानी के पास ऐसी कोई कुतिया है।"

संयोगवश ठीक उसी समय राजा के अस्तबल से सबसे सुन्दर घोड़ा भाग निकला था और बेबीलॉन के मैदानों में सरपट दौड़ रहा था। प्रधान मंत्री और समस्त अधिकारी अस्तव्यस्त होकर वैसे ही उसका पीछा कर रहे थे जैसे कि ज़नख़ा स्पेनियल के पीछे भाग रहा था।

प्रधानमंत्री ने जादिग से पूछा कि राजा के घोड़े को उसने देखा या नहीं।

जादिग ने उत्तर दिया—"उस घोड़े की सरपट चाल बेनुक्स है। वह पाँच फुट ऊंचा है और उसके खुर छोटे हैं। उसकी लगाम की गिल्ली २३ कैरट सोने की है, और उसके नाल चाँदी के हैं।"

प्रधानमंत्री ने पूछा—"घोड़ा किस रास्ते गया? वह है कहाँ?"

"मैंने तो कभी उसे देखा नहीं और उसके बारे में कुछ सुना भी नहीं।"

प्रधानमन्त्री और प्रधान जनखा दोनों को कोई सन्देह नहीं रहा कि राजा का घोड़ा और रानी की कुतिया जादिग ने ही चुराये हैं। उन्होंने जादिग को 'महान दस्तरहान' के पास पहुँचवाया। दस्तरहान ने उसे कोड़े लगाने का हुक्म दिया और बाकी ज़िन्दगी साइबीरिया में बिताने की सजा दी। काजी ने हुक्म दिया ही होगा कि घोड़ा और कुतिया दोनों मिल गये। अब तो न्यायाधीशों को राय बदलनी पड़ी, लेकिन जादिग पर उन्होंने चार सौ औंस सोने का जुरमाना किया। पहले उसे जुरमाना देना पड़ा और फिर

उसे दस्तरहान की परिषद के सामने अपने मुकदमे की पैरवी करने की अनुमति दी गयी। उसने पैरवी इस प्रकार की—

"मेरे साथ वाकया यह हुआ। मैं जंगल के पास टहल रहा था कि महान् प्रधानमंत्री और श्रद्धेय जनखा से मेरी मुलाकात हुई। रेत पर एक जानवर के पदचिह्न मुझे दिखाई पड़े और मैंने आसानी से समझ लिया कि ये चिह्न किसी छोटे कुत्ते के ही हैं। दो कदमों के निशानों के बीच उभरी हुई रेत पर हलकी और लम्बी लकीरों में मैंने जान लिया कि यह कोई कुतिया होगी जिसने अभी हाल में कुछ बच्चे दिये होंगे। अगले कदमों के दोनों बगल बटुरी हुई रेत ने मुझे बताया कि कुतिया के कान लम्बे हैं। मैंने लक्ष्य किया कि रेत पर तीन कदमों के दबाव की अपेक्षा एक कदम का दबाव कुछ कम था, इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा, यदि मैं हिम्मत कर यह कह सकता हूँ, कि हमारी महान् रानी की कुतिया एक पैर की लंगड़ी थी।

जहाँ तक राजा के घोड़े का सम्बन्ध है, आप यह जान लें कि जब मैं जंगल की सड़कों पर टहल रहा था तो मुझे घोड़े के खुर के निशान दिखाई दिये। सब निशान बराबर दूरी पर थे। अपने तईं मैंने कहा—"हाँ, इस घोड़े की सरपट चाल मुकम्मिल है।" सात फुट चौड़ी सड़क के बीचोबीच से दोनों ओर रेत पेड़ों पर उड़ी हुई थी। इससे मैंने जान लिया कि घोड़े की पूँछ साढ़े तीन फुट लम्बी है। पाँच फुट ऊँचे पेड़ों के पत्ते जो सड़क पर झूल रहे थे अभी हाल मुझे गिरे हुए दिखाई दिये और मैंने हिसाब लगाया कि घोड़ा पाँच फुट ऊँचा होगा। गिल्ली २३ कैरट सोने की होगी क्योंकि एक पत्थर से वह घिस गयी थी और पत्थर पर पड़े सोने के दाग से यही हिसाब निकलता है। और किस्म की शिलाओं पर पड़े खुर के दाग से पता चलता है कि खुर बारह देनिएर की चाँदी से जड़े हुए हैं।"

वोल्ट्येर का "महान् परिहासकारी" नाम सार्थक है।

वोल्ट्येर ने अपने उपन्यासों में अपने दार्शनिक तत्त्वों का भी समावेश किया है। परन्तु व्यंग्य और श्लेष ही उनके मुख्य अस्त्र हैं। 'कैनडिड' में दुर्घटनाओं का ढेर जमा कर उन्होंने लाइबनिट्स के आशावादी दर्शन की

खिल्ली उड़ायी है। 'लैजेनी' में उन्होंने रूसो को आड़े हाथों लिया है। उन्होंने दिखाया है कि सहृदय बर्बर को सुसंस्कृत समाज के अन्दर डालने का क्या परिणाम निकलता है। 'मिक्रोमेगास' पर स्विफ्ट के 'गुलिवर का पर्यटन' और 'साइरानो द बेरजेराक' के प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। शनि ग्रह से आया हुआ एक दैत्याकार पर्यटक इस दुनिया के दर्शनों और क्षुद्र युद्धों की समीक्षा करता है। वोल्ट्येर की शैली सरल है, उनके छोटे-छोटे वाक्यों में स्पष्टता है, परन्तु व्यंग्य की भरमार न होती तो यह शैली शायद अनाकर्षक ही होती। सत्य के लिए और अन्याय के विरुद्ध उन्होंने जीवन भर संग्राम किया और उस संघर्ष की छाप उनके उपन्यासों पर भी पड़ी है।

अपने संघर्षरत जीवन में उन्हें कष्ट और यातनाएँ भी सहन करनी पड़ीं। वे बैस्टिल में कैद किये गये, उन्हें ब्रिटेन में जाकर निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। ब्रिटेन में तीन साल रहकर उन्होंने सीखा भी बहुत कुछ और एक नया दृष्टिकोण भी उन्हें वहीं से मिला। मार्ले ने कहा है कि "वोल्ट्येर फ्रांस से एक कवि के रूप में आये और ज्ञानी के रूप में वे फ्रांस को लौटे।" इंग्लैंड की बौद्धिक मौलिकता को उन्होंने 'लेत्र फिलो-सोफीक' (दार्शनिक पत्र) में खोलकर रख दिया। 'डिक्शनेर फ़िलोसो-फीक' (दार्शनिक अभिधान) में उन्होंने ईसाई धर्म के अनेक पहलुओं पर आक्रमण किया है। परन्तु वे अनीश्वरवादी नहीं थे, जैसा कि बहुतों का खयाल है। उन्होंने एक गिरजाघर बनाया जिसे उन्होंने भगवान् के नाम उत्सर्ग किया। उन्होंने कहा है कि "आज तक जितने गिरजाघर बने हैं वे किसी न किसी सन्त के नाम से उत्सर्ग किये गये हैं। मैं ईश्वर के नाम पर इसे उत्सर्ग इसलिए कर रहा हूँ कि मैं स्वयं भगवान् की सेवा करना चाहता हूँ उसके गुलामों की नहीं।" दो उद्धत प्रकृति के व्यक्ति जब मिलते हैं तो नतीजा क्या निकलता है, इसका एक अच्छा उदाहरण प्रशा के फ्रेडरिक महान् और वोल्ट्येर का मिलन है। सम्राट् फ्रेडरिक द्वारा आमंत्रित होकर वे बर्लिन गये और वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। थोड़े दिनों तक वोल्ट्येर

ने किसी प्रकार निभाया। एक दिन सम्राट् ने उन्हें अपनी कविताएँ संशोधन के लिए भेजीं। उन्हें देखकर वोल्ट्येर ने कहा––"देखो, सम्राट् ने अपने ये मैले कपड़े धोने के लिए मेरे पास भेजे हैं।" फिर तो उन्हें भागते ही बन पड़ा और स्विस-फ्रेंच सीमा पर वे जा बसे। यहीं फर्ने के अपने निवास-स्थान पर उनकी मृत्यु हुई।

पचीसवाँ अध्याय

काव्य और नाट्य-साहित्य

फ्रांस का वौद्धिक युग मुख्यतः गद्य का युग है। उस युग ने बुद्धि के आलोक को प्रसारित करने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया था, इसलिए अनुभूतियों के संचार से, जो काव्य का आत्मास्वरूप है, उसका कोई विशेष सम्वन्ध नहीं था। छन्दोवद्ध रचना का प्रयत्न तो होता रहा, परन्तु जिन विषयों पर रचना की जाती थी उन्हें गद्य में भी अच्छी तरह लिखा जा सकता था। वास्तविकता तो यह है कि उस युग में वोल्ट्येर के अतिरिक्त कोई यशस्वी कवि हुआ नहीं, तथापि कुछ लेखकों के उत्साहपूर्ण भावावेग और कल्पना से निःसृत वाक्यों और विचारों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। ये कवि उस युग के ही हैं, परन्तु एक अंश तक वे इसे पार भी कर चुके हैं और अपने युग के लिए वे कम या अधिक व्यतिक्रम स्वरूप ही हैं।

इनमें जां वातिस्त रूसो को ही श्रेष्ठतम समझा जाता है। समसामयिक अन्य कवियों की तुलना में उनकी लेखनी में सामर्थ्य अधिक है। उनकी अधिकांश सम्वोध-कविताओं की गिनती दूसरी श्रेणी में ही की जाती है परन्तु कुछ कविताओं में अभिव्यक्ति का एक माहात्म्य है। परिष्कृत शब्द, संक्षिप्त वाक्य और बाइबिल की शैली का प्रयोग ही इस माहात्म्य के साधन स्वरूप हैं। उनकी पत्र-कविताओं में कुछ वोआलो की याद दिलाते हैं और कम से कम एक रूपक, 'लावोलिएर', में मारो की मनोहारिता है।

विख्यात नाटककार रासीन के पुत्र लूई रासीन ने अपने काव्य की भूमिका में अपनी कविताओं का मूल्य स्वयं ही कम आँका है। उदारता के अतिरेक में उन्होंने स्वयं अपना जो मूल्यांकन किया, यदि दुनिया ने भी उसे

ही मान लिया तो कोई विचित्र बात नहीं। परन्तु वास्तविकता यह है कि "ला रिलीजिओ" जैसी कविताओं में कठोर गाम्भीर्य के बावजूद एक उदात्त सौम्य भाव की व्यंजना है और फ्रेंच दार्शनिक कविताओं की सफलता की सूचना है। फ्रेंच कवियों में, धर्म-ग्रन्थों के ऐश्वर्य-भण्डार से सर्वाधिक सम्पद् का आहरण किया है ल फ्रांक द पॉम्पिनिया ने। चर्वित-चर्वण कथावस्तु और घिसे-घिसाये कवित्व के शब्दों का त्याग कर "पावन कविताओं" (पोएसी साक्रे) में उन्होंने क्लासिकोत्तर गीतात्मकता की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। परम्परागत हृदयावेग के क्षेत्र में भी नवागत फिलसफा के आक्रमण से उन्हें चिढ़ है। ग्रेसे की लालित्यपूर्ण कविताएँ सुसज्जित अभ्यर्थना कक्ष की ख्याति पाने के योग्य, परन्तु सारहीन हैं। परन्तु 'ल मेशां' में बुराई के प्रति प्रेम को अपना विषय चुनकर उन्होंने कविता को एक नयी दिशा दी है। आलेक्सी पिराँ ने अपनी हाजिर जवाबी से ख्याति अर्जन की तथा वोल्ट्येर से भी सार्वजनिक संग्राम में उन्होंने लोहा लिया और सदा उनकी हार भी नहीं हुई। काव्य में लिखे गये उनके सुखान्त नाटक "ला मेट्रोमानी" को अपने समय में प्रशंसा मिली, परन्तु आज वह निराशाजनक ही प्रतीत होता है।

दुःखान्त नाटक

उच्चसाहित्य-काल के परवर्ती युग में विषाद-नाटकों के क्षेत्र में भी वोल्ट्येर ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अन्य नाटककारों में केवल दो नाम उनके साथ रखे जा सकते हैं। परिस्थिति और कार्यों में एक दुर्दमनीय आवेग क्रेबिलाँ की रचना की आधारशिला है। बलशाली अभिव्यक्ति ही उनकी शैली का लक्ष्य है और नाटक उन क्षणों में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचता है जबकि शक्तिशाली आवेग से प्रेरित होकर वे कुछ निगूढ़ अर्थपूर्ण वाक्यों में अपनी सारी शक्ति नियोजित कर देते हैं। क्रेबिलाँ में अपने पूर्वजों की आत्मा क्रियाशील है और विषादवाणी में कोरनेई से उनका सादृश्य है। परन्तु रासीन का लचकदार लालित्य उनकी भाषा में नहीं है। प्रयासलब्ध

कुण्ठित वाक्यांशों से प्रवाह में एक रुकावट पड़ जाती है। 'रादामिस्त ए जेनोबी' का गठन ठोस है, अनिवार्य भावी की आसन्नता के बोध से नाटक परिपूर्ण है। यदि उपर्युक्त त्रुटियों पर ध्यान न दिया जाय तो श्रेष्ठ नाटकों में ही इसे स्थान मिलना चाहिए। 'आत्रे और थीस्ट' में क्रेबिलाँ की त्रुटियाँ और स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं, फिर भी यह एक शक्तिशाली प्रतिशोधात्मक विषाद-नाटक है, यद्यपि एलिज़ाबेथ युग के काव्य का इसमें अभाव है। इसके अस्वस्थ घृणा के चित्र को भुलाया नहीं जा सकता।

आलोचनात्मक सिंद्धान्त के क्षेत्र में ही हूदार द ला मॉत् का वास्तविक महत्त्व है, परन्तु उनके दुःखान्त नाटक 'इने द कास्त्रो' को अपने समय में भी सफलता मिली और आज भी उसका आकर्षण बना हुआ है। उनके विरोधाभासपूर्ण मानस का परिचय इसी में मिलता है कि परम्परागत काव्य का परम शत्रु होते हुए भी उन्होंने पद्य में ही इस नाटक की रचना की और पद्य में लिखे गये श्रेष्ठ विषाद-नाटकों में यह अन्यतम है। बौद्धिकता के कारण उनकी अनेक छोटी कविताएँ नीरस हो गयी हैं, परन्तु इस क्षेत्र में बौद्धिकता ने नाटक को बल प्रदान किया है। नायिकारूप में नारी की महिमा का चरित्र-चित्रण उनकी सहज बुद्धि से प्रसूत है और इसी ने नाटक को नीरस होने से बचा लिया है। नायिका में कल्पना-प्रवणता नहीं, बल्कि महिमान्वित आत्मा का संयम है। रंगमंच पर छोटे बच्चों का आविर्भाव परिवर्तनोन्मुख सौन्दर्यबोध का आभास देता है। क्लासिकल रुचि के इस उल्लंघन को विद्वानों ने निन्दनीय ठहराया, परन्तु दर्शकों को इसने करुणा से अभिभूत किया। बन्दी के पक्ष और विपक्ष में गण्यमान्य स्पेनिश पार्षदों के भाषण में कोरनेई की उत्तेजनापूर्ण वाग्मिता है। सहज बुद्धि और बौद्धिकता के संयोग से कथा-योजना में परिपूर्णता आ गयी है।

सुखान्त नाटक

सत्रहवीं शती के अन्त के और अठारहवीं शती के प्रारम्भ के सुखान्त नाटक हलकी किस्म के हैं और प्रायः अभिनेताओं द्वारा ही लिखे गये हैं।

फ्लोरां कार्तों दानकूर (१६६१-१७२५) एक ऐसे ही अभिनेता हैं। उन्हें मोलिएर का लघु उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। उनके अधिकांश एकांकी सुखान्त गद्य नाटकों का विषय सामाजिक है और शैली मृदु श्लेषात्मक है। उन्होंने कोई पचास ऐसे नाटक लिखे। उनके एकांकी नाटकों में सबसे प्रसिद्ध है 'ला मेजों द काम्पाइए'। 'ल शवालिएर आ ला मोड', 'ले बुर्जोआजे आ ला मोड' और 'ले बुर्जोआजे द क्वॉलिते' अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं जो कई अंकों में लिखे गये हैं। इनमें वे एक ऐसी समस्या को लेते हैं जो उस समय लोगों के सामने आ रही थी। पतनोन्मुख सामन्तशाही और उत्थानोन्मुख मध्यमवर्ग के संघर्ष को वे रंगमंच पर उपस्थित करते हैं। उनका तरीका श्लेषात्मक उतना नहीं जितना कि उपहासात्मक है, परन्तु भविष्य के विकास की सम्भावनाओं से यह रहित है।

जां फ्रांसोआ रन्यार एक सम्पन्न नाटककार हैं और पर्यटन भी उन्होंने काफी किया। उन्होंने बहुतेरे छोटे नाटक फ्रांस में खेलने वाली इटालियन कम्पनियों के लिए लिखे और फिर अपनी उच्चाभिलाषा की पूर्ति के लिए कॉमेडी फ्रांसेस के लिए भी कुछ नाटक लिखे जिनमें 'ल जूएर' सबसे अच्छा गिना जाता है। उन दिनों जुआ का बहुत जोर था और यही इस नाटक का विषय है। परन्तु यह भी प्रहसन के स्तर से बहुत ऊँचा नहीं है। एक दृश्य मनोरम है जब वालेरा कपर्दकशून्य होकर अपने दार्शनिक सन्तोष के लिए सेनेका (प्रसिद्ध रोमन दार्शनिक) के लेख पढ़वाता है। उसका विनोदपूर्ण भृत्य मोलिएर के अरदलियों का चचेरा भाई है। उनका सबसे विनोदपूर्ण नाटक 'ल लेगातेर युनिवर्सल' है, यद्यपि इसमें कुछ स्थूलता है और अश्लीलता भी। परन्तु इससे आनन्दानुभूति हम तभी कर सकते हैं जब कि असम्भव परिस्थितियों पर हमें कोई आपत्ति न हो।

लसाज (औपन्यासिक के रूप में ही वे अधिक विख्यात हैं) में ठीक वह गुण है, रन्यार में जिसकी कमी थी। उन सामाजिक परिवर्तनों की उनमें प्रत्यक्ष अनुभूति है जो सुखान्त नाटक के लिए नये चरित्र और नयी परिस्थितियों की सम्भावनाओं की सृष्टि कर रहे थे। उनका एकांकी

लघु नाटक 'क्रिस्पैं रिवाल द सां मेत्र' न केवल चित्ताकर्षक और चातुर्यपूर्ण है, वल्कि चिन्तन की भी खुराक जुटाता है। क्रिस्पैं अपने मालिक का प्रतियोगी है। मालिक की जगह बैठकर अपनी स्थिति को वह निभा भी लेता है। मानवीय समानता की दिशा में यह एक अग्रसर कदम है। इसी क्रम में आगे चलकर हम भृत्य को चतुर, गुणी या नायक के रूप में पाते हैं, जैसे कि फिगारो या रीव्ला। लेकिन लसाज विचक्षण द्रष्टा हैं, कोई रोमांचकारी व्यक्ति नहीं। आठवें दृश्य में क्रिस्पैं उमंग में वहकर अपनी गहराई से कहीं आगे निकल जाता है। कटु सुखान्त नाटक 'तुकारे' बुर्जुआ नाटक का सीमान्त छू जाता है। केन्द्रीय चरित्र, समाज के नये मालिक, करोड़पति द्विधाहीन धनी का एक विस्मयकर अध्ययन है। वह केवल दुर्गुणों का ही आकर नहीं है, उसमें यथार्थवादिता और जीवनी शक्ति भी है। उसकी शक्तिजनित स्थूलता में हृदय और मस्तिष्क की उदारता भी है। 'तुकारे' आधुनिक नाटक का पूर्वज है।

देस्तुश के सुखान्त नाटक 'ल ग्लोरिओ' में भी भविष्य का वीज निहित है। जन्म और ओहदे का घमंड नाटक का विषय है। सामाजिक श्रेष्ठता के सिद्धान्त से नये, विशेष कर नैतिक मूल्यों का एक संघर्ष इसमें दिखाया गया है। हास्य का उपादान प्रहसनात्मक गलतियों और ज्यादतियों में है। वुर्जुआ गुणों को मर्यादा और सम्मान प्रदान किया जाता है, लेकिन परीक्षात्मक रूप में। मरणोन्मुख जातीय और वर्गीय भावना की समस्या का विचार भावुकतापूर्ण है; राजनीतिक सिद्धान्तों का इसमें कोई स्थान नहीं है। सहृदयता और पारिवारिक भावनाओं को ऊँचा स्थान दिया गया है और पापी कोंत को पुनः सही रास्ते पर लौटाया जाता है। नाटक में हास्यरस की सामग्री है, कथनोपकथन में स्वच्छन्दता है और छन्दों में विदग्ध वाक्य हैं जो अब कहावत वन चुके हैं।

मारिव्हो (१६८८-१७६३) के विषय और कला, दोनों में नवीनता है। प्रेम पहले से ही दुःखान्त नाटक का विषय रहा है, लेकिन सुखान्त नाटक में यह अन्य मुख्य घटनाओं का आनषंगिक मात्र रहा है। मारिव्हो ने ही

इसे सुखान्त नाटक में मुख्य स्थान दिया। परन्तु उनकी कथा-योजना का सम्बन्ध परिणत प्रेम के उन्मत्त आवेग से नहीं, बल्कि किशोर हृदयों में प्रेम के उन्मेष से है। प्रेम के अंकुर उगने पर युवक-युवतियों के हृदय में जो भावनाएँ उठती हैं उन्हीं को मारिव्हो ने पात्रों के इंगित या कथनोपकथन में चित्रित किया है। नवोदित प्रेम के हावभाव, स्पन्दन-कम्पन, द्विधा-संकोच और अचरज के अनुभव की सूक्ष्म अभिव्यक्ति यह मानकर चलती है कि दर्शक और श्रोता प्रत्युत्पन्न-मति-सम्पन्न हैं और इशारों से ही समझ लेते हैं। मनोविकार के सूक्ष्म विश्लेषण के लिए उन्हें अपनी भाषा को भी अतिशय सुसंस्कृत करना पड़ा है। विकासोन्मुख प्रेम के विभिन्न स्तरों में अवस्थित व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के लिए उन्होंने अपनी कलात्मक कल्पना से एक अवास्तविक जगत् की सृष्टि की है।

उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'ल जो द लामूर ए दी हाज़ार' के नायक और नायिका दोरांत और सिलविया दोनों दोहरा भाग लेते हैं। दोरांत, दोरांत भी है और अपना भृत्य भी। इसी प्रकार सिलविया सिलविया भी है और अपनी परिचारिका भी। एवजी के रूप में दोनों सोचते हैं कि उनका प्रेम भृत्य से हुआ है। फिर दोनों को वास्तविक स्थिति का पता चल जाता है और तब सिलविया के मानस में अहंभाव और कोमल हृदयवृत्ति के बीच द्वन्द्व उपस्थित होता है।

मारिव्हो अपने तरीके से यथार्थवादी भी हैं। उनके कई पात्र दुर्जन हैं—घृण्य, दाम्भिक, पाशविक और हृदयहीन। 'एकोल द मेर' (माताओं का स्कूल) की मादाम आरगांत ऐसी ही पात्र है। 'ले फोस कॉनफिदांस', 'ल लेग' आदि में धन और ओहदे का व्यक्ति-स्वातन्त्र पर काफ़ी दबाव पड़ता है। उनके नाटक चाहे केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही उपभोग्य हों, लेकिन जनसाधारण से भी उनका इतना सम्पर्क है कि जीवित कला में उन्हें स्थान दिया जा सकता है, और वे जीवित रहेंगे भी। फ्रेंच साहित्य के वे विशिष्ट सम्पदास्वरूप हैं।

पिएर क्लोड निवेताद ला शोज़े (१६९२-१७५४) का नाम केवल

इसलिए उल्लेखनीय है कि उन्होंने सुखान्त नाटकों में एक विशिष्ट प्रवृत्ति का संयोग किया जिससे उनका पृथक् नामकरण किया गया है—"कॉमेडी लारमोयांत" (अश्रुपूर्ण सुखान्त नाटक)। सिद्धान्ततः यह सुखान्त नाटक ही है, हँसी के लिए कुछ गुंजाइश भी है, लेकिन उनका मुख्य कारोबार हृदय-वृत्तियों से ही है। श्रोताओं और दर्शकों को अपने ही जैसे चरित्रों में अधिक दिलचस्पी थी और इस दिलचस्पी को उन्होंने कायम रखा है। नाटकीय दुर्बलताओं के बावजूद उनके नाटकों की सफलता का यही कारण था। कोमल हृदयवृत्तिय़ों के नाजुक आन्दोलन और गुणों की सुखद अनुभूति उपस्थित करने को वे इतने उतावले हैं कि कथा-योजनाओं में वे अलौकिक घटनाओं को सन्निविष्ट करते हैं, वास्तविकता के प्रति अन्याय करते हैं और अन्तःकरण के संकल्प तथा पाप-पुण्य की समस्याओं की एक छिछली समीक्षा मात्र करते हैं। अपने पात्रों के भावुकता के संघात पर बल देने के लिए वे टूटे वाक्य और अपूर्ण भाषण के प्रयोग की अति कर डालते हैं। पति-पत्नी के बीच स्थायी प्रेम सम्भव नहीं, इस प्रचलित मनोवृत्ति के विरुद्ध उनका बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिवाद ही शायद उनका सर्वोत्तम सुझाव है। उनके मुख्य नाटक हैं—'प्रेजीजे आ ला मोड', 'मेलानीड', 'लेकोल़ द मेर' तथा 'ला गूबरनांत'।

छब्बीसवाँ अध्याय

उपन्यास

इस काल के यशस्वी औपन्यासिकों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। वोल्ट्येर और लसाज बौद्धिक युग की युक्तिवादी और विश्लेषणात्मक धारा का ही अनुसरण करते हैं। मेरिव्हो और विशेष रूप से आबे प्रेभोस परवर्ती युग के अग्रदूत स्वरूप हैं।

लसाज ने अपने लोकप्रिय उपन्यास 'जिल ब्ला द सान्तिलान' की भूमिका में ही घोषित किया है—'ज़ न म सुई प्रॉपोजे क द रप्रज़ेन्ते ला व्ही दे जाम तेल् केल् ए' (मानव-जीवन जैसा है, उसके अतिरिक्त और किसी रूप में उसे उपस्थित करने का प्रस्ताव मैं नहीं करता)। स्पेन उनके उपन्यास की पृष्ठभूमि है, लेकिन जनसाधारण का चरित्र-चित्रण ही उनका उद्देश्य है—'आं व्होआ पारतू ले मीम वीस ए ले मीम ओरिज़िनो . . . ज़ाव्हू क ज़ ने पा तूजूर एक्ज़ाक्तमां सुइव्हि ले मेओर एस्पानोल' (सर्वत्र दुर्गुण और मूल एक प्रकार के हैं. . .मैं स्वीकार करता हूँ कि सर्वत्र मैंने स्पेनिश रीतियों का अनुसरण नहीं किया है)।

युवक जिल् ब्ला अध्ययन के उद्देश्य से सालामांका के लिए रवाना होता है। रास्ते में उसे डाकू पकड़ लेते हैं। उनके पंजों से वह भाग निकलता है और विभिन्न मालिकों की खिदमत करते हुए सारे स्पेन में घूमता फिरता है। राजनीति में वह ऊँची जगह पहुँचता है, फिर सब कुछ खो देता है, पुनः अपनी क्षतिपूर्ति कर लेता है और अन्त को वैभव और शान्ति में अवसर-प्राप्त जीवन व्यतीत करता है। एक कुशल स्पर्श और श्रद्धाविश्वास-हीन चातुर्य के संयोग से शैली मनोहर बन गयी है। निर्दय वास्तविकताओं पर

हलका आवरण डाल दिया गया है और मृदुश्लेष में विनोद तथा हास्यरस का आनन्द मिलता है। परन्तु इसमें गम्भीर त्रुटियाँ भी हैं। प्रक्षिप्त कहानियों की भरमार है और लम्बे वर्णन में एकरसता आ गयी है। एक ही बात कई बार घुमा-फिराकर दुहरायी गयी है। 'ल दिआव्ल बो आतो', वेलेज द गिव्हारा की एक स्पेनिश कहानी है जिसे लसाज ने अपने साँचे में ढाल लिया है। इसमें क्षुद्र लँगड़ा शैतान आसमोडे कहानी-लेखक को साथ लेकर स्पेन की राजधानी मेड्रिड पर ऊपर उड़ जाता है और घरों की छत उड़ा कर लेखक को दिखलाता है कि घरों के अन्दर क्या हो रहा है। साथ ही रीति रिवाज और चरित्रों का अध्ययन चलता है और चुटकुलों का ढेर जमा हो जाता है।

लसाज उन प्रथम लेखकों में हैं जिनके लिए पुस्तक-रचना जीविका का साधन थी।

मारिव्हो के उपन्यासों से ही आधुनिक फ्रेंच उपन्यासों की पीढ़ी का प्रारम्भ होता है। परन्तु मारिव्हो के यथार्थवाद में भावुकता का भी एक अच्छा खासा पुट है। नायक-नायिका का अन्तर्जीवन ही उनके लिए परम सत्य है और इस वास्तविकता के वर्णन में ब्यौरों पर ध्यान देना ही उनकी मुख्य चेष्टा है। 'ला व्ही द मारिआम' नारी-चरित्र का अध्ययन है। मनःस्थिति और कार्यों की प्रेरणाओं का पुंखानुपुंख विश्लेषण इसमें किया गया है। मानसिक स्थिति के प्रत्येक पहलू का विचार भिन्न-भिन्न वाक्य-समूहों में किया गया है और किसी प्रकार अध्याय की एकता तो बनी हुई है, परन्तु पूरे उपन्यास में सम्बद्धता और संगति का अभाव है। 'ल पेज़ां पारव्हनी' पुरुष की कहानी है। इसका दायरा विस्तृत है और समाज का व्यापक चित्र इसमें खींचा गया है। भावावेग की अपेक्षा घटनाओं और परिस्थितियों पर ही अधिक ध्यान दिया गया है; इसमें करुण-रस कम और हास्य रस अधिक है।

मारिव्हो के समकालीन आबे प्रेभोस की रचनाओं की संख्या अधिक है और उनका वैचित्र्य भी अधिक है। १६९७ ई० में फ्रांस के उत्तरी भाग

में वे पैदा हुए और जेसुइट सम्प्रदाय वालों ने उनका पालन-पोषण किया। वे ईसाई संघ में शामिल हुए, फिर, कभी साधु और कभी फौजी बनकर, रोज लाकर और रोज खाकर वे अपना जीवन बिताने लगे। १७२८-३१ ई० में उन्होंने प्रथम उपन्यास 'ले मेमोआर द नॉम द क्वॉलिते' की रचना की। फिर कॉविंट से उन्होंने अपना नाता तोड़ लिया और उन पर मुकदमा चलाने की धमकी दी गयी। वे भागकर पहले इंग्लैंड गये और बाद को हालैंड। इंग्लैंड में उनकी पुस्तक 'ल फ़िलोसोफ़ आंग्ले ऊ ले मेमोआर द क्लीवलां' प्रकाशित हुई। एक सामयिक पत्र 'ल पुर ए कांत्र' भी उन्होंने प्रकाशित किया (१७३८-४०)। वे फ्रांस लौटे और कुछ दिनों तक फ्रांस में रहने के बाद वे पुनः निर्वासित किये गये। तब उन्होंने बेलजियम और जर्मनी की यात्रा की। इसी समय उन्होंने रिचर्डसन के अंग्रेज़ी उपन्यास 'पामेला' का अनुवाद किया। उन्हें क्षमा प्रदान की गयी और जीवन के बाकी बीस वर्ष उन्होंने फ्रांस में ही बिताये। अपनी लेखनी से ही वे जीविका उपार्जित करते रहे। फ्रांस लौटने के बाद उन्होंने कई और अंग्रेज़ी पुस्तकों का अनुवाद किया और बहुतेरी अन्य पुस्तकों का, जिनमें एक समुद्र यात्राओं का इतिहास भी था, प्रकाशन किया। १७६३ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

आन्तोआं फ्रांसोआ प्रेभोस की अनेक रचनाओं में से उनकी श्रेष्ठतम कृति 'मानो लेस्कों' को तत्काल ही पृथक् किया जा सकता है। यह 'मेमोआर द नाम द क्वॉलिते' का ही एक अंग है जिसे १७५३ ई० में एक पृथक् उपन्यास के रूप में प्रकाशित किया गया। करुण, कोमल, मनोहर नायिका, मानो के चरित्र के वस्तुगत अध्ययन में मनोवैज्ञानिक सत्य के प्रति साहसपूर्ण निष्ठा है। मानो असाधारण सुन्दरी है और पातिव्रत्य का पालन वह करना चाहती है। पतिभक्त वह हो नहीं पाती, यह उसकी प्रकृति का दोष है। दारिद्र्य का सहन वह बिलकुल नहीं कर पाती, यह भी उसके व्रत-भंग का कारण है। उसके स्वभाव में महानता है, लेकिन दुर्बलता यह है कि विलासिता नहीं तो आराम तो उसे मिलना ही चाहिए। इसलिए

एक के बाद एक विश्वासघात से उसके प्रेमिक का दिल टूटन लगता है। लेकिन प्रत्येक बार आन्तरिक अनुताप से प्रेरित होकर वह दे ग्रिओ के पास लौट आती है। मूलतः वह साध्वी है और दे ग्रिओ की वह भक्त है। जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों के बाद वेश्याओं के एक जत्थे के साथ वह न्यू आरलियेन्स को निर्वासित की जाती है। दे ग्रिओ भी साथ जाता है और अन्तिम दृश्य दोनों का लुइसियाना की मरुभूमि में भाग निकलना है। क्लान्ति और थकावट से मानो मरुभूमि में गिर पड़ती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। एक ही साथ हीन और प्रेम-योग्या यह रमणी कितने ही आधुनिक यथार्थ-वादी उपन्यासों की नायिका की पूर्वज है। परन्तु उनका यथार्थवाद कहीं बीभत्स रूप धारण कर लेता है और कहीं-कहीं उसकी अति कर दी गयी है। एक उदाहरण यह है—मानो मर रही है और दे ग्रिओ कहता है—"मैंने उत्तप्त चुम्बन से और आह की ज्वाला से उसके हाथों को गर्म किया।"

उनके अन्य उपन्यास या पुस्तक आज कोई निकालकर पढ़े तो अन्त तक पढ़ना शायद कठिन होगा, परन्तु उनमें दिलचस्पी का अभाव नहीं है और उनमें उस कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है जो इतिहास, भूगोल, अन्यान्य पुस्तक, वास्तविक घटना, लोककहानी, याददाश्त और दस्तावेज में या शुद्ध आविष्कार के द्वारा अपनी खुराक ढूँढ निकालती है। ब्रिटिश जीवन, चालचलन, सरकार और साहित्य का उनका वर्णन यथार्थवादी है। वोल्ट्येर की चमक-दमक इस वर्णन में नहीं है, परन्तु उनकी समझदारी का स्पष्ट परिचय इससे अवश्य मिलता है।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सैं सीमॅं, व्हाव्हेनार्ग, हूदार द ला मॉंत्

स्मृति-ग्रंथ लेखकों में सैं सीमॅं का एक ही जोड़ है—शातोब्रियां। लुई द रूव्हरोय ड्यूक द सैं सीमॅं (१६७५-१७५५) तेरहवें लुई के दरबार के एक प्रिय सामन्त के पुत्र थे। वे फौज में दाखिल हुए और दो तीन युद्धों में भी उन्होंने भाग लिया। १७०२ ई० में उन्होंने अपने सैनिक पद का प्रत्यर्पण किया और राजनीति में मनोनिवेश किया। राजनीति में विफल-मनोरथ होकर उन्होंने स्मृति-ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया और तीस साल बाद जो ग्रन्थ तैयार हुआ वह वास्तव में अद्‌भुत है। ग्रन्थ १७५० ई० में ही बनकर तैयार हो गया था, लेकिन पहली बार उसका प्रकाशन १८२९-३० में हुआ। यह अच्छा ही हुआ क्योंकि सैं सीमॅं की निगाहें जितनी आगे की ओर थीं उतनी ही पीछे की ओर और जब इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ उस समय सारे फ्रांस में हलचल मच गयी।

उनके 'मेमोआर' (स्मृति ग्रन्थ) में चौदहवें लुई के शासनकाल के अन्तिम भाग और पन्द्रहवें लुई के शासनकाल के प्रथम भाग के दरबारी जीवन का एक पुंखानुपुंख वर्णन मिलता है और इतिहास के लिए उसमें सामग्री प्रचुर है। व्यक्तिगत खीझ से यह इतिहास पक्षपातदुष्ट है, लेकिन केवल इस कारण उनके ऐतिहासिक तथ्यों का प्रत्याख्यान (खण्डन) नहीं किया जा सकता। उनकी वर्णन-शैली में अद्‌भुत आकर्षण है। चुटकुले के बाद चुटकुले से पाठक का मनोरंजन होता है और घटनाएँ भी एक के बाद दूसरी उसके सामने आती रहती हैं। नमूने के तौर पर देखिए तो १५वें अध्याय के १०-१५ पृष्ठों में उन्होंने पाँच दिलचस्प घटनाओं का समावेश

कहानियों के रूप में किया है। घोड़े की नाल बाँधनेवाला एक व्यक्ति अकस्मात् राजा चौहदवें लुई से मुलाकात करना चाहता है। हर एक व्यक्ति से राजा की मुलाकात नहीं होती। लेकिन वह अपनी जिद पर अड़ा हुआ है। उसके पास एक अति गोपनीय समाचार है जिसे वह केवल राजा को ही दे सकता है। अन्त में वह किसी मन्त्री को भी समाचार देने को प्रस्तुत है। राजा ने अपने निजी सचिव बारबेज़िओ को उससे मिलने को कहा। लेकिन नहीं—वह मन्त्री नहीं है—इसलिए नाल बाँधनेवाले ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। लोगों को वहुत आश्चर्य हुआ। ख़ैर, मन्त्री पाम्पोन से उसकी भेंट हुई—तीन बार। फिर राजा स्वयं मिले। लेकिन बातें क्या हुईं यह खबर किसी को नहीं लगी। ब्यौरे और भी दिलचस्प हैं। डेनमार्क में नया राजा गद्दी पर बैठा। उसने राजा लुई का पत्र लेने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसके नाम के आगे "मैजेस्टी" पद नहीं जोड़ा गया था। नतीजा यह हुआ कि राजा लुई ने मातम की पोशाक नहीं पहनी, जैसा कि हर राजा के मरने पर उनका रिवाज था। वाद को झगड़ा तय हुआ। विना "मैजेस्टी" पद के ही डेनमार्क के राजा ने लुई का पत्र स्वीकार किया और लुई ने भी असमय में विगत राजा का शोक मनाया। चान्सेलर बूशेरा के मरने पर हार्ले को वह पद नहीं मिला इससे सैं सीमों को असीम हर्ष है। शामीलार को वह पद मिला इससे उन्हें खुशी है। शामीलार पार्लमेंट के वकील थे। एक दस्तावेज पर उनकी नजर नहीं गयी और एक मुकदमे में उन्होंने गलत फैसला दे दिया। जब दूसरे फरीक ने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया तो अपनी गलती स्वीकार कर उसके दावे का २० हज़ार फ्रांक उन्होंने अपनी जेब से भर दिया। काउन्टेस फिएस्क फजूल खर्च करनेवाली महिला है। उसकी आर्थिक दुर्दशा होने में देर नहीं लगती है। अब वह चाहती है कि उसका लड़का किसी धनी की लड़की से व्याह करे यद्यपि वह स्वयं बहुत गरीब है। माता का लम्बा भाषण लड़का बड़े धैर्य के साथ सुनता है। अन्त में वह खिलखिलाकर हँस पड़ता है। जिसकी लड़की से शादी का प्रस्ताव माता करती है उसके कोई लड़के बच्चे हैं ही नहीं। दो दरबारी

मोशिए गेस्व्हर और मोशिए विलेरॉय राजा की मुलाकात के लिए बैठे हैं। होते-होते दोनों में वंश की चर्चा चल पड़ती है। गेस्व्हर कहता है, "बाप दादों की बात छोड़िए, हम तो बनियों के वंशज हैं और हमारे बाप भी व्यापारी ही थे। आपके दादा तो मछली का कारोबार करते थे और मेरे दादा शायद फेरी करते थे या उससे भी कुछ बदतर। विलेरॉय आग बबूला हो जाते हैं और बाकी लोगों को उनकी तौहीनी पर काफी खुशी होती है। गर्हित संबंध-जनित एक हत्या के मामले में एक सामन्तपत्नी को फाँसी की सज़ा मिलती है। विश्वासघात के बावजूद पति राजा से पत्नी की प्राण-भिक्षा माँगता है, लेकिन उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जाती है। सैं सीमँ लिखते हैं—"साधारण तौर पर लोगों को मुजरिम के लिए सहानुभूति थी। लोगों को आशा थी कि उसे क्षमा प्रदान की जायेगी और उन्हें यह आशा थी, इसी से उसकी मृत्यु देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। लेकिन दुनिया ऐसी ही है—युक्तिहीन, संगतिविहीन।" व्यक्तियों के वर्णन में उनकी दक्षता असीम है। कवित्व और याथार्थ्य के सम्मिश्रण से उनकी लेखनी ने एक म्रियमाण युग के इतिहास के पृष्ठों को सजीव कर रखा है।

व्हाव्हेनार्ग (१७१५-४७) का अत्यल्प जीवनकाल भी अठारहवीं शती के युक्तिवादी युग में भावुकता के पक्ष की पुनः प्रतिष्ठा के लिए पर्याप्त था। इस दृष्टि से फेनेलॉ और रूसो के बीच वे एक सेतुस्वरूप हैं। उनकी पुस्तक 'ऐंत्रोदक्सिओं आ ला कोनेसांस लेस्पिरि ह्यु मैं, सुइव्ही द रेफ्लेक्सियों ए माक्सिम', उन्हें धर्म-निरपेक्ष नीतिवादी के रूप में हमारे सामने ला देती है और ला रॉकफुको से उनके दृष्टिकोण की विभिन्नता को भी सुस्पष्ट कर देती है। उनकी दृष्टि में अच्छाई और बुराई, दोनों मानव-प्रकृति में बीज रूप में मौजूद हैं। दार्शनिक को इससे घृणा करने के बजाय इससे सहानुभूति रखनी चाहिए और यह यदि शुभ परिणाम-प्रदायिनी हो, तो इसके मूल में निहित मनोवैज्ञानिक प्रेरणा कुछ भी हो, इसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए। धार्मिक कट्टरता से वे अछूते हैं। वे आशापूर्ण मानवता-

वादी हैं। विभिन्न प्रणालियों और प्रकृतियों से श्रेष्ठ तत्त्वों का संग्रह कर समष्टि की सेवा में उन्हें लगाना ही उनका प्रयत्न है। यद्यपि वे राजनीति से निरपेक्ष हैं, परन्तु व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों के बीच वे एक सम्वन्ध की स्थापना करते हैं—यह उनकी नवीनता है। "व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सार्वजनिक कल्याण का हृदयहीन बलिदान दुर्गुण का एक अभ्रान्त लक्षण है", यह वाक्य सत्रहवीं शती में नहीं लिखा जा सकता था।

वे साहित्य के एक समझदार समालोचक हैं। नियमों का अन्धानुकरण उन्हें पसन्द नहीं। वे चाहते हैं मनुष्य के हृदयावेग का एक यथार्थ और मर्मस्पर्शी चित्र। लेकिन श्रेष्ठ फ्रेंच परम्परा पर उन्हें श्रद्धा है। बोआलो के वे प्रशंसक हैं—'उनके छन्दों में विचारों का प्राचुर्य है, जीवट है, नोक-झोंक है और उनकी शैली में नवीनता है। न्यायपरायणता और ठोस विचारों के साथ ही, अपनी व्यंजना में, सामर्थ्य और ज्वाला खोये बिना, उन्होंने इन गुणों को कायम रखा है।

दु:खान्त नाटक 'इने द कास्त्रो' के लेखक हूदार द ला मॉत्, दूसरी श्रेणी के कवि भी हैं, परन्तु साहित्य के समालोचक के रूप में ही उनकी मौलिकता है। क्लासिक (उच्च साहित्य) पर उन्हें पूरी श्रद्धा है, परन्तु युग-प्रभाव से वे बुद्धिवादी हैं। इससे उनके आलोचनात्मक सिद्धान्तों में विरोधाभास उत्पन्न होता है। साहित्यिक सिद्धान्तों से उनके स्वतन्त्र विचार का संघर्ष होता है तो परम्परा को तिलांजलि देकर वे असंगतिपूर्ण मत प्रकट करते हैं। तुकबन्दी और कविता के विभेद का उन्होंने स्पष्टीकरण किया और गद्य-कविता को उन्होंने स्वीकृति दी। उन्होंने घोषणा की कि गद्य में दु:खान्त नाटक लिखे जा सकते हैं, जिसे उनके बाद ही बुर्जुओं (मध्यम वर्गी) नाटककारों ने कर दिखाया और आधुनिक नाटक के लिए तो यह साधारण बात है। संकलन-त्रय (स्थान, काल और कार्य की एकता) में उन्होंने केवल क्रियात्मक एकता को ही स्वीकार किया, बल्कि इसकी जगह भी विषय की दिलचस्पी की एकता को दी। लेकिन उनका मनोगत

द्वन्द्व बराबर बना रहा, इसलिए आधुनिकता के समर्थन में परिवर्तन-विरोधियों का सफल मुकाबला वे कभी कर नहीं पाये।

आबे दी बॉ ने यह मत प्रचारित किया कि कविता का उद्देश्य शिक्षा नहीं, सुख है। जो कविता हमारी कल्पना, भावावेग और इन्द्रियों को ग्राह्य हो वही सुखदायक है। लोगों को नियम-नियन्त्रित कविता नहीं बल्कि वह कविता पसन्द है जो उनके मर्म को स्पर्श करती है। उनका कहना है कि नाटक का आनन्द भी वास्तव के आभास पर निर्भर नहीं है, अर्थात् स्थान और समय की एकता के नाटकीय सिद्धान्त को वे तिलांजलि देते हैं।

इस प्रकार बुद्धि-अभिभूत साहित्य के तले से जमीन खिसकती जा रही है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

एनसाइक्लोपीडी

बौद्धिक युग का सुविकसित पुष्प है "एनसाइक्लोपीडिया"—विश्व का ज्ञानभण्डार। नये विचार, नया ज्ञान, कुशासन और कुसंस्कार के विरुद्ध विद्रोह की भावना 'एनसाइक्लोपीडी' के पृष्ठों में मूर्त हो उठे हैं। जिस व्यक्ति के उद्योग से यह संभव हुआ वे हैं द नी दिदरो (१७१३-८४)। 'एनसाइक्लोपीडी' (विश्वकोश) का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ १७५१ में और अंतिम खण्ड १७७२ में। वह समय था जब कि विज्ञान ने नये उद्योगों को जन्म दिया और पुराने उद्योगों के तौर-तरीकों को बदल दिया और विश्वकोष ने नये तकनीकों की व्यावहारिक माँग की भी पूर्ति की। विश्वविख्यात फ्रांसीसी क्रान्ति के समय तकनीकी शिक्षा के प्रबंध की प्रेरणा इसी से मिली। उस समय के अधिकांश विद्वज्जनों ने विश्व-कोश की रचना में हाथ बटाया। ग्रन्थ के उद्देश्य और विषयवस्तु की प्रारंभिक व्याख्या प्रसिद्ध गणितज्ञ दालँम्बेर ने की। इसमें उन्होंने मनुष्य के प्रारंभिक ज्ञान से लेकर विज्ञान की अंतिम विजयों की समीक्षा की। वोल्ट्येर, मांतेस्की, ब्यीफां, दॉलबाक, केजने, तुर्गो, मारमोंन्तेल इत्यादि लेखकों ने अपने-अपने विषय पर लिखा। संगीत के विशेषज्ञ के रूप में रूसो भी इसमें आते हैं। परन्तु इसके मुख्य कर्ताधर्ता थे दिदरो।

उन दिनों हाल में ही चेम्बर की 'साइक्लोपीडिया' निकली थी। पेरिस के एक पुस्तक-विक्रेता ने इसके फेंच अनुवाद का भार दिदरो को सौंपा। परन्तु दिदरों ने एक विशाल योजना वनाकर अपना काम शुरू कर दिया। इस कार्य में उनके मुख्य सहयोगी थे दालेम्बर। लेकिन

प्राय: प्रारंभ में ही बाधा खड़ी हो गयी। राजादेश से प्रथम दो खण्डों की बिक्री पर प्रतिबंध लग गया। फिर भी चोरी-छिपे यह काम चलता रहा। इधर दालेम्बर ने अपना हाथ खींच लिया और उधर प्रकाशक दिदरो की पाण्डुलिपियों में हेर-फेर और मनमाना संशोधन करता रहा। विश्व-कोश के संबंध में वोल्ट्येर ने दिदरो को एक दिलचस्प पत्र लिखा—"तुम्हारी कृति तो एक विचित्र खिचड़ी है; अच्छा, बुरा, सत्य, असत्य, गंभीर और ओछा सब एक साथ ठूँस दिये गये हैं। कुछ लेख ऐसे जान पड़ते हैं जैसे छबीले छोकरों ने या रसोईघर के भृत्यों ने उन्हें लिखा हो। पाठक कभी तो विचारों के उच्च शिखर पर पहुँच जाता है और कभी तुच्छ अति साधारण वस्तुओं पर आ गिरता है।" तथापि विश्वकोश की सफलता का परिचय इससे मिलता है कि कई अन्य भाषाओं में विश्वकोश प्रकाशित किये गये जिनमें 'एनसाइक्लोपीडी' की सामग्रियां चुरायी गयी थीं।

दिदरो एनसाइक्लोपीडिया के तो स्तम्भ-स्वरूप हैं, लेकिन उनकी अन्यान्य कृतियाँ कम विख्यात नहीं हैं। 'करेसपौन्दांस लितरेर' में उनके लेखों ने उनकी ख्याति यूरोप के विभिन्न राजदरबारों तक पहुँचा दी। यह विदेशी राजाओं के लिए एक संवादपत्र था जिसका संपादन बैरन ग्रिम् करते थे। रूस की रानी कैथेरीन दिदरो से इतनी प्रभावित हुई कि कौशल से उन्हें सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से, रानी ने दिदरो का पुस्तक-संग्रह १५ हजार फ्रांक में खरीद लिया। परन्तु जीवन पर्यन्त उपयोग के लिए पुस्तकें दिदरो के पास ही रहने दी गयीं और रानी कैथेरीन के पुस्तका-ध्यक्ष के रूप में ५० वर्ष का अग्रिम वेतन ५० हजार फ्रांक उन्हें और भी दिया गया। १७७३ में कृतज्ञ दिदरो ने सेंट पीटर्सबर्ग की यात्रा की और वहाँ छः महीने रानी के अतिथि के रूप में बिताये। उस समय की एक घटना यह बतायी जाती है कि उत्तेजनापूर्ण वाद-विवाद के बीच दिदरो ने रानी की जाँध पर एक थपेड़ी लगा दी। बुद्धिमती रानी ने समाधान स्वरूप दोनों के बीच एक मेज रखवा दी।

'पांसे फिलोजोफीक' (दार्शनिक विचार) पर लॉक और बेकन जैसे

ब्रिटिश दार्शनिकों का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। १७४६ में कॉन्डिलाक की पुस्तक 'मानवज्ञान की उत्पत्ति' प्रकाशित हुई। इसी पुस्तक ने दिदरो को 'लेत्र सीर ले आवेयोग्ल' और 'लेत्र सीर ले सुर्द ए मिएत' लिखने की प्रेरणा दी। दोनों में वे दिखाते हैं कि विचार पदार्थ की ही एक प्रक्रिया है और नैतिकता वास्तविक परिस्थितियों पर निर्भर है। उनकी सब से मौलिक और श्रेष्ठतम कृति 'ल नव्हेओ द रामो' ने जर्मन साहित्यिक गेटे को इतना मुग्ध किया कि फ्रेंच भाषा में इस पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले ही उन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि का जर्मन अनुवाद किया। मानव प्रकृति के अन्दर भला और बुरा जिस प्रकार एक दूसरे के भीतर गुँथा हुआ है उसका विश्लेषण इस पुस्तक में करते हुए दिदरो ने अनैतिकता की रूप-रेखा पर भी साहसपूर्ण प्रकाश डाला है। कथनोपकथन के रूप में लिखी गयी इस कहानी में दिदरो दो भिन्न स्वरों में बोलते हैं—एक है नैतिक और दूसरा है विश्व को अवज्ञा की दृष्टि से देखनेवाला। उनकी अन्य दार्शनिक कहानियाँ हैं, 'ला रिलीजेओस' और जाक ल फेटालिस्ट'। नाटक और चित्रकला के समालोचक के रूप में भी उन्हें विशेष ख्याति मिली।

छठा भाग

पूर्व-रोमान्टिक काल
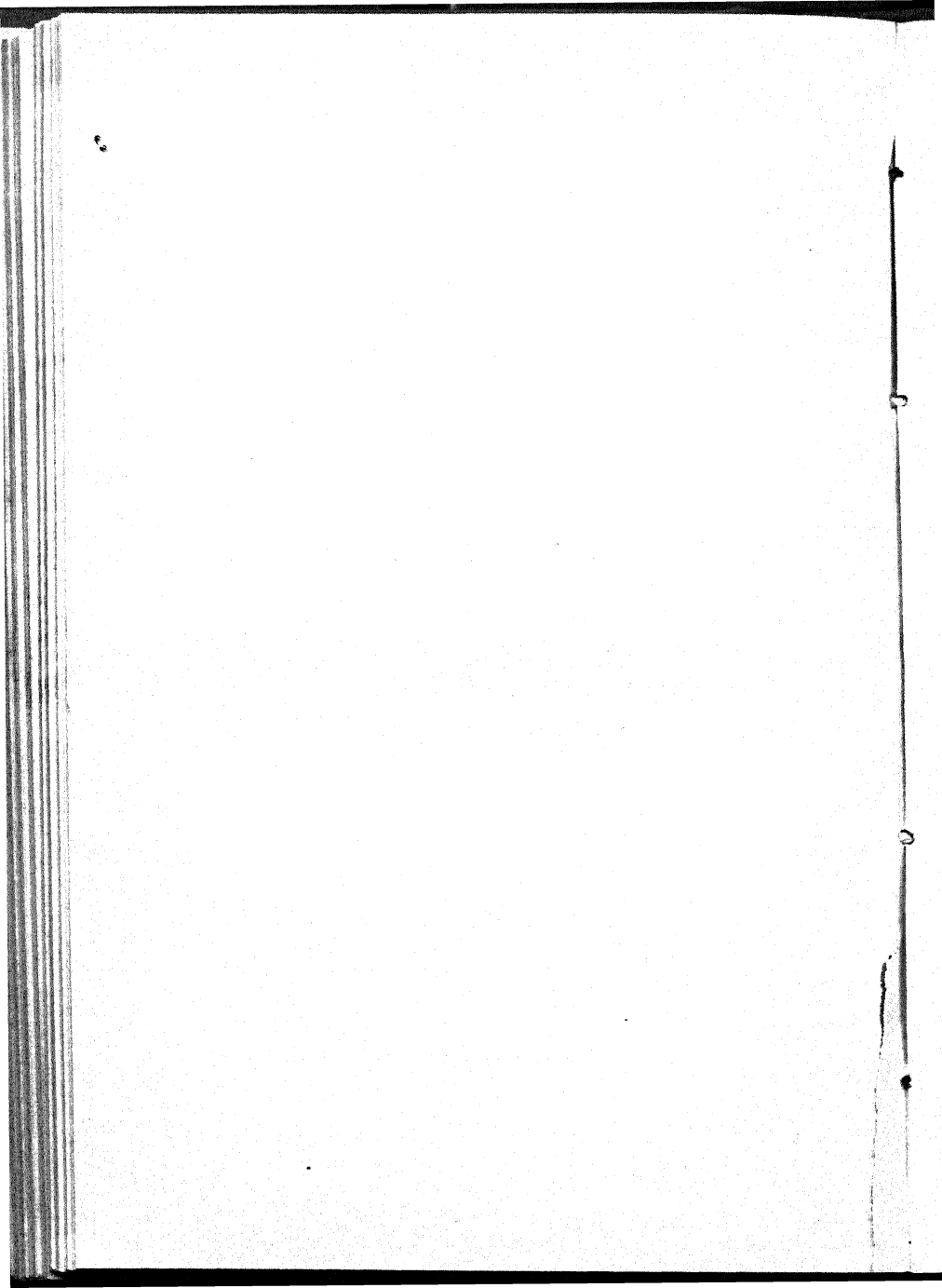
उन्तीसवाँ अध्याय

रूसो

जां जाक रूसो (१७१२-१७७८) उस नये युग के प्रवर्तक हैं जिसमें हम आज भी रह रहे हैं। रोमांसिक-पूर्व काल के होते हुए भी उनमें रोमांसिक युग के मुख्य तत्त्व विद्यमान हैं। वे स्वयं फ्रांस के बौद्धिक युग के हैं और बुद्धिवाद से वे अप्रभावित भी नहीं है। परन्तु उन्होंने फ्रांस के भावुक हृदय को भाषा प्रदान की। उन्होंने एक नयी धारा प्रवाहित की, यह कहना वस्तुतः ठीक न होगा, क्योंकि यह धारा फ्रांस में मौजूद थी, यद्यपि वह दबी हुई थी। क्लासिक युग का प्रेरणास्रोत जब सूखने लगा और क्लासिक रूप भी विनष्ट होने लगा तो उस दबी हुई धारा को ऊपर उठने का अवसर मिला। इस धारा के प्रखर स्रोत-निर्गम के मूल के रूप में ही रूसो की विशेषता है।

रूसो के दर्शन, जीवन और साहित्य में एक निगूढ़ संबंध है। फ्रेंच साहित्य के इतिहास-लेखक सेंट्सबरी के शब्दों में; रूसो मानव-हृदय के आवेग और प्रकृति के सौन्दर्य के वर्णनकारी हैं।······वे उन लोगों के प्रत्यक्ष प्रेरणादाता हैं जिन्होंने महान् फ्रांसीसी राजनीतिक क्रान्ति की। रूसो के 'कांत्रा सोशल' के सिद्धान्त, किसी और सिद्धान्त की अपेक्षा, जैकोबिन राजनीति के अधिक निकट हैं। उनकी समता और भ्रातृत्व की घोषणा और उनका भावुकता-पूर्ण लोकतन्त्रवाद, उस जमीन के लिए, जहाँ वे बोये गये, उतने ही उपयोगी थे जितना कि मान्टेस्क्यू का वैधानिकवाद उसके लिए अनुपयुक्त था।' आत्मजीवनी लिखने का उनका ढंग निराला है। सम्पूर्ण साहित्य में यह अनोखी और प्रसिद्धतम आत्म-

जीवनी है। लेखक स्वयं ही अपनी कृति का नायक है। वे कहते हैं—"मेरा बराबर यह खयाल रहा और अब भी वही है कि सब कुछ देखते हुए मैं सब से अच्छा आदमी हूँ।" अपने दुर्गुणों को वे सहर्ष स्वीकार करते हैं, लेकिन उनका विश्वास है कि कोई ऐसा नहीं है जो किसी न किसी जघन्य दुर्गुण को छिपाता नहीं है। अपनी आत्म-जीवनी का नाम उन्होंने दिया है "स्वीकारोक्ति" (कॉन्फेसिओं) और इसमें, इस विश्वास को वे पूर्ण रूप से प्रगट करते हैं कि जीवन के पृष्ठों को खोलकर रख देने से अनुदार लोग यह अनुभव कर सकेंगे कि रूसो स्वयं चाहे जितने बुरे हों, वे लोग उनसे भी बुरे हैं।

रूसो की प्रथम गम्भीर कृति है 'दिसकूर सीर ले सिआंस ए ले आर्त' (कला और विज्ञान पर विचार) जिस पर दिजों अकादमी ने उन्हें पुरस्कार प्रदान किया और उसी समय से सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिक के रूप में उनका जीवन आरम्भ होता है। क्या विज्ञान और कला की प्रगति से मानवजाति की नैतिक उन्नति हुई है? उक्त पुस्तक में इस प्रश्न का उत्तर वे "ना" में देते हैं। ज्ञान-विज्ञान से उन्हें डर-सा लगता है और वे कहते हैं कि मनुष्य को सुखी होना है तो आगे की ओर प्रगति न कर उसे पीछे की ओर हटना पड़ेगा, आदिम सादगी की ओर। वे यह सिद्धान्त सामने रखते हैं कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा है। 'दिसकूर सीर लैंगालिते' (असमानता पर विचार) में इसी सिद्धान्त को वे और आगे बढ़ाते हैं। समाज-निर्माण के पूर्व आदिम जातिओं की स्वतंत्रता और गुणों का वे आह्वान करते हैं। यही विचार आगे चलकर 'कॉन्त्रा सोशियल' में परिणति लाभ करता है। "कॉन्त्रा सोशियल" का प्रारम्भिक वाक्य ही है— "मनुष्य पैदा हुआ स्वतंत्र, लेकिन सर्वत्र वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।"

उनकी प्रथम दोनों कृतियों में बौद्धिक युग की स्पष्ट छाप है, यद्यपि अपनी भावुकता के नियन्त्रण की चेष्टा भी उनमें है। एक दिन वे दिदरो से जेल में मुलाकात करने को चल दिये। लेकिन एक-एक कर बुद्धिवादियों से उनका मतभेद शुरू हो जाता है। इसका सूत्रपात हुआ जब दालेम्बर

को लिखे गये अपने पत्र में उन्होंने नैतिक आधार पर रंगमंच की निन्दा की। दिदरो, ग्रिम, दोलबाख, सबसे उनकी लड़ाई हुई। झगड़ालूपन तो उनके स्वभाव में ही है। 'सोशल कॉन्ट्रेक्ट' और उनके दूसरे उपन्यास 'एमिल' के प्रकाशन पर जब उन पर सजा और ईसाई संघ का कोप हुआ तो उन्हें फ्रांस छोड़ना पड़ा। स्विटजरलैंड और प्रशा ने जब उनका स्वागत नहीं किया तो विख्यात ब्रिटिश दार्शनिक ह्यूम ने उन्हें इंग्लैंड में आमन्त्रित किया। वे इंग्लैंड गये और डर्बीशायर में ही उन्होंने आत्मकथा का अधिकांश लिखा। लेकिन साल भर के अन्दर ही ह्यूम से झगड़ा करके वे पेरिस लौट आये।

पत्र के रूप में लिखे गये अपने प्रथम लम्बे उपन्यास 'नूवेल हेलोईज' में उन्होंने भावुकता की वन्या उत्पन्न कर दी है। इस पर ब्रिटिश उपन्यास-लेखक रिचर्डसन का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। आवेग का नग्न चित्र करुणा के दृश्य में परिवर्तित हो जाता है और कठोर कर्तव्य की वेदी पर व्यक्तिगत सुखाधिकार का बलिदान किया जाता है। प्रकृति एक देवी बन गयी है, कल्याणकारिणी और स्वस्थ प्रवृत्ति की पथ-प्रदर्शन-कारिणी। 'एमिल' प्रगतिशील शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत ही आकर्षक पुस्तक है। प्रकृति ही सब से महिमामयी शिक्षक है। शिक्षा की मुख्य समस्या यह है कि आदिम सरलता से बाहर निकलकर मनुष्य जिन गुणों को खो देता है, आधुनिक व्यक्ति में उन गुणों की रक्षा या उनका विकास किस प्रकार हो। वे प्राकृतिक धर्म के पुजारी हैं, रहस्यवादी के प्रकारान्तर हैं। दोलबाख के निरीश्वरवाद का खण्डन करने का उनका इरादा था लेकिन जो सिद्धान्त वे सामने रखते हैं उसका आशय यह है कि दैवी धर्म या ईसाईयत के कट्टर धर्म-विश्वासों की कोई आवश्यकता नहीं है। परिणाम यह है कि जहाँ दोलबाख पर किसी की नजर नहीं पड़ी वहाँ पेरिस की पार्लमेंट ने उनकी गिरफ्तारी का आदेश जारी किया। रूसो अच्छे लेखक तो हैं ही, लेकिन लेखक से भी अधिक वे भविष्यवक्ता हैं। उनकी वाणी में कवि और धर्म-प्रचारक का ओज है, उनकी आवेग-पूर्ण भाषा का छन्द संक्रामक है।

यहाँ रूसो के समसामयिक, प्राकृतिक इतिहास के लेखक, बीफां का भी उल्लेख किया जा सकता है। उस समय विज्ञान में बढ़ती हुई अभिरुचि के वे एक निदर्शन स्वरूप हैं। उसी समय लाग्रांज ने ज्योतिष पर और लाव्होआज़िए ने रसायन पर पुस्तकें लिखीं। एक सामान्य अंश "पृथ्वी का क्रमिक निर्माण" को छोड़कर, बीफां के प्राकृतिक इतिहास का वैज्ञानिक मूल्य आज अधिक नहीं है, लेकिन साहित्य की दृष्टि से उसकी एक देन है। यही कारण है कि रोमांसिक साहित्य की कल्पनात्मक पृष्ठ-भूमि का यह अंग बन गया।

तीसवाँ अध्याय

रोमांस-पूर्व नाटक

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में भी परम्परागत रूप से नाटक लिखे जाते रहे, परन्तु लेखकों और उनकी कृतियों की सूची के अतिरिक्त उनका आज कोई अवशेष नहीं रह गया है। परम्परा के अनुकरण के प्रति वितृष्णा बढ़ती रही और इस स्थिति में जिन्होंने परम्परागत पथ का त्याग किया उनके नाम ही उल्लेखनीय हैं। पहले नाटकीय विषय रोमन या ग्रीक इतिहास से ही लिये जाते थे। द बेलॉय ने 'सीज द काले' (कैले की घेरेबन्दी) में तत्कालीन फ्रेंच इतिहास से ही अपना विषय चुना। फ्रांस के विगत इतिहास की एक घटना को केन्द्रित कर 'रनूआर ने ले तांप्लिएर' लिखा।

लक्ष्य करने की दूसरी बात यह है कि इस काल में फ्रांस में शेक्सपियर के नाटकों का प्रभाव बढ़ रहा था। लाप्लास ने उनके कुछ नाटकों का अनुवाद किया और सम्पूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद किया ल तुरन्योर ने। जैं फ्रांसोआ दूसी ने शेक्सपियर के नाटकों को फ्रेंच रंगमंच के उपयोगी बनाया, लेकिन उनमें शेक्सपियर का मूल रूप बिलकुल जाता रहा।

नाट्यकला के क्षेत्र में परिवर्तन की सूचना मिलती है दिदरो में। दिदरो ने अपने नाट्य सिद्धांत में नाटकों की चार श्रेणियाँ बनायीं। दुःखान्त और सुखान्त नाटकों के अलावा उन्होंने दो अन्तर्वर्ती श्रेणियों को सामने रखा। एक गम्भीर सुखान्त नाटक जिसका उद्देश्य होना चाहिए मानव के कर्तव्य और मानवीय गुणों का प्रदर्शन, और दूस ा दुःखान्त नाटक जिसका उद्देश्य होना चाहिए घरेलू दुःख। परन्तु स्वयं उनके नाटक, "ल फीए नात्युरेल" और 'ल पेर द फामिल' सफल नहीं रहे। परिवर्तन की प्रक्रिया का रूप सेदैं

में और स्पष्ट हो जाता है। सेदें ने 'फिलोसोफ साँ ल साव्होआर' (विना ज्ञान का दार्शनिक) में करुणात्मक तत्त्व का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। बुर्जुआ सम्मान और भावुकता के गम्भीर घात-प्रतिघात में हास्यरस का संयोग कर उन्होंने नाटक को और रोचक बना दिया है। इस सुन्दर कृति में बकवास बिलकुल नहीं है और कई अर्थों में उन्नीसवीं शती के नाटक की यह अग्रिम घोषणा है।

१७८४ में महान् फ्रेंच राज्यक्रांति के पाँच वर्ष पहले, तिएट्र फ्रांसे में पिएर् ऑगस्तैं कारों का, जो बोमार्शे के नाम से सुपरिचित हैं, 'फिगारो का विवाह' नामक नाटक खेला गया। साहित्यिक भाग्यान्वेषी बोमार्शे एक घड़ीसाज़ के लड़के थे। वे प्रायः स्पेन और इंग्लैंड जाया-आया करते थे और अमेरिकन स्वतंत्रता के प्रति फ्रेंच उत्साह को उत्तेजित करने में उनका काफी हाथ था। इसी सिलसिले में उन्होंने लाफाएट की सेना को अमेरिका पहुँचाया और इसके जरिए काफी धन भी कमाया। अपनी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले तक, नवजात फ्रेंच लोकतन्त्र के प्रति विश्वासघात के सन्देह में उन्हें निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। 'फिगारो के विवाह' के प्रदर्शन के बहुत पहले ही 'बार्बर द सेविए' के लेखक के रूप में उन्हें प्रचुर ख्याति मिल चुकी थी। फिगारो "बार्बर द सेविए" का ही एक परिणाम स्वरूप है। जिस साहित्य ने क्रांति के लिए भूमि प्रस्तुत की उसमें फिगारो का विशिष्ट स्थान है। फ्रेंच सम्राट् नेपोलियन (नापोलिआं) ने इसे "गतिमान् क्रांति" कहा है।

अठारहवीं शती के सुखान्त नाटक का अन्तिम आकर्षक पहलू संगीत-नाट्य का अभ्युदय है। इसमें नाटकीय रुचि का स्तर तो कुछ गिरता हुआ दिखाई देता है, लेकिन यह, यह भी बताता है कि परम्परागत नाटकों के प्रति, चाहे वे सुखान्त हों या दुःखान्त, लोगों में एक वितृष्णा पैदा हो रही थी। रोमांसिक युग में मर्यादित साहित्यिक रूपों से इसका संयोग हुआ और इसी से धीरे-धीरे एक नवीन नाट्यगोष्ठी का जन्म हुआ। संगीत-नाट्य के लेखकों में गिलबर् द पिक्सेरेकुर् का नाम उल्लेखनीय है।

इकतीसवाँ अध्याय

उपन्यास

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में बहुसंख्यक उपन्यास प्रकाशित किये गये और उनकी प्रवृत्तियाँ कई प्रकार की हैं। कुछ की प्रवृत्ति पहले की ही तरह विश्लेषणात्मक है, कुछ की प्रवृत्ति पूर्णांग रोमांस की ओर है, और शेष की प्रवृत्ति दोनों के बीच की है।

इस युग के उपन्यासों की कम से कम एक श्रेणी पर रिचर्डसन की 'पामेला' या 'क्लारिसा' का प्रभूत प्रभाव पड़ा। दिदरो ने तो उन्हें मूसा, होमर, युरीपीडीस और सॉफोक्लिस का समकक्ष बना दिया है। आवे प्रेव्होंस ने दोनों उपन्यासों का फ्रेंच अनुवाद किया। रूसो ने 'नूवेल हेलोईस' में रिचर्डसन की शैली को भी अपनाया अर्थात् पत्रों के द्वारा नायक-नायिकाओं के चरित्रों का उद्‌घाटन किया। कोडेर्लो द लाक्लो ने एक ही उपन्यास लिखा 'खतरनाक सम्बन्ध'। लेकिन यह उच्चकोटि का उपन्यास है। यह भी पत्रों की शैली में ही लिखा गया है। रिचर्डसन और लाक्लो, दोनों का उद्देश्य नैतिक शिक्षा प्रदान करना है। यही उद्देश्य रस्तिफ द ला ब्रेतॉन का भी है, जो रूसो के शिष्य होने का दावा करते थे। मारमोन्तेल वोल्ट्येर के शिष्य हैं, लेकिन उनके उपन्यासों की संवेगात्मक प्रवृत्ति रिचर्डसन की जैसी ही है। वोल्ट्येर के व्यंग्य और वैदग्ध्य में भावुकता के समावेश से जें फ्रांसोआ मारमोन्तेल के 'कांत मोरो' की छोटी कहानियों का लावण्य बढ़ गया है। फ्लोरियां ने लाफोन्तेन का अनुसरण कर पद्य में नीति-मलक कहानियाँ लिखीं लेकिन 'गालाते' और 'एस्तेल' आदि उनके उपन्यास वैचित्र्यहीन हैं। ग्राम-जीवन को ही उन्होंने अपना आदर्श बनाया है।

विषयवैचित्र्य सब से अधिक रस्तिफ द ला ब्रेतॉन् में ही है। एक कृषि-श्रमिक के इस लड़के ने 'पिता का जीवन' छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों के विषय शहरी जीवन से ही लिये हैं। पेरिस के जीवन के सम्पर्क में आकर उन्होंने असंख्य नैतिक निष्कर्ष निकाले और उनकी ढ़ाई सौ कृतियों में ये निष्कर्ष भर पड़े हैं। 'विकृत किसान पुरुष' और 'विकृत किसान महिला' में उन्होंने सीधे-सादे गाँव वालों पर पड़ने वाले शहरों के बुरे प्रभाव को दिखाने का प्रयास किया है। 'समसामयिक' के ४४ खण्डों में पेरिस की औरतों द्वारा किये जानेवाले ढ़ाई सौ पेशों का वर्णन किया गया है। इन कहानियों में कोई शैली नहीं है, लेकिन उनकी स्वाभाविकता और यथार्थता में विचित्र आकर्षण है।

बर्नार्द द सैं पिएर, रूसो के शिष्य हैं और उससे भी अधिक प्रकृति के विद्यार्थी बल्कि भक्त हैं। रोमांस-पूर्व युग के उपन्यास-लेखकों के वे प्रतिनिधि स्वरूप हैं। प्रकृति उनके लिए दैवी इच्छा का एक आवरण-स्वरूप है और उनका धार्मिक दर्शन अठारहवीं शती के भौतिकवाद के विरुद्ध सुचिन्तित प्रतिक्रियास्वरूप है। प्रकृति का चित्रण उन्होंने भावुकता और दक्षता के साथ किया है। उनके उपन्यास 'पॉल और वर्जिन' की एक विशेषता ही है मारिशस द्वीप के प्राकृतिक दृश्यों का रंगीला वर्णन। उपन्यास का नैतिक राग और उसकी प्रकृतिपूजा रूसो की ही प्रतिध्वनि है, परन्तु धार्मिक हृदय के अविचल विश्वास और काल्पनिकता के संयोग से इस उपन्यास ने क्रान्तिकाल की उथल-पुथल में भी पाठकों के हृदय को आन्दोलित किया।

सेनाकूर का 'ओवरमान' स्वयं एक वर्ग है। यह उपन्यास- नहीं, बल्कि पत्रों के रूप में लिखी गयी स्वीकारोक्ति है। यह एक आध्यात्मिक रोजनामचा है जिसके हर पृष्ठ में आन्तरिकता टपकती है। जिस जीवन का इसमें वर्णन है वह स्वयं लेखक का है; चिन्तन और ध्यान का जीवन, जिसमें बाहरी घटनाएँ बहुत थोड़ी ही हैं। वे लाइलाज विषाद के शिकार हैं। इस रोमांटिक रोग के वे प्रथम प्रदर्शक हैं, लेकिन इसके साथ

उनका नहीं बल्कि शातोब्रियां का नाम ही जोड़ा जाता है। इसका मुख्य कारण उनके प्रकाश का धुंधलापन है। शैली की त्रुटियाँ अनेक हैं, लेकिन कुछ उल्लेखनीय गुणों के कारण ही इसने मैथ्यू आर्नल्ड जैसे गुणग्राही साहित्यिक को आकृष्ट किया। आल्पस् पर्वत के उनके वर्णन में ऐसा अनोखापन है जो रूसो से आगे निकलकर भविष्य की प्रतीकवादी कला की ओर संकेत करता है।

बेंजामिन कान्स्टैन्ट के उपन्यास 'एडोल्फ' का विषय विभक्त व्यक्तित्व है जो रोमान्सिक साहित्य का एक प्रिय विषय बन गया था। विषय के विश्लेषण में उन्होंने क्लासिक बुद्धिवाद का प्रयोग किया है। इस प्रकार भविष्य का विषय और अतीत का विश्लेषण, दोनों इस उपन्यास में समन्वित हैं। परिवर्तन ही अनुभूति का नियम है, इसलिए संवेग को नीति-पूर्ण जीवन का स्थायी सिद्धान्त बनाने का प्रयास व्यर्थ है, यह चित्र लेखक ने शक्तिशाली शब्दों में खींचा है। समाज से संघर्षरत व्यक्ति दृढ़संकल्प न हो तो विद्रोही व्यक्तिविशेष की अवस्था किस प्रकार होती है, इसका भी प्रदर्शन लेखक ने सामर्थ्यपूर्ण शैली में किया है। परिणाम निराशा-वादी परन्तु क्रियात्मक है, क्योंकि धैर्य, सहृदयता और आध्यात्मिक विनम्रता के द्वारा मुक्ति की सम्भावना का इंगित भी इसमें है।

बत्तीसवाँ अध्याय

आंद्रे शेनिए

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में आंद्रे शेनिए (१७६२-१७९४) के यश ने अन्यान्य कवियों को छा लिया। यद्यपि बचपन से ही वे फ़्रांस में पले, परन्तु उनका जन्म हुआ था कुसतुनतुनिया में। उनकी माता ग्रीक द्वीपों के एक परिवार की उच्च शिक्षित महिला थी। अपनी माता के प्रभाव के कारण और ग्रीक भाषा के स्वयं अपने ज्ञान के कारण ग्रीक दुनिया की प्रत्यक्ष अनुभूति उन्होंने प्राप्त की। उनकी प्राथमिक काल की कविताओं में यह अनुभूति ओतप्रोत है। श्रेष्ठ प्राचीन कृतियों के प्रति उत्साह-पूर्ण प्रेम, प्रकृति से घनिष्ठता और विशुद्ध सहज बोध से जो क्लासिक भावना निःसृत हुई थी, उसके मूल उद्‌गमस्थल पर प्रत्यावर्तन कर शेनिए ने क्लासिक भावना को नया बल प्रदान किया, उसमें नयी ताजगी ला दी। इस प्रकार मानस जगत में वे नवजागरण युग के ही हैं। यह उनका महान् कृतित्व है कि उनकी कविताओं के पाठ से प्लीआद की याद हो आती है। यदि असमय ही उनका जीवन समाप्त न हो गया होता तो वे रॉनसार से भी बड़े कवि हुए होते। उनका बौद्धिक अनुराग रॉनसार की तुलना में अधिक है और शब्दस्रोत उनकी लेखनी से सहज ही प्रवाहित होता है। फ़्रांस में जब क्रान्ति हुई उस समय शेनिए लन्दन के फ़्रेंच दूतालय से संलग्न थे। क्रांति का समाचार पाकर वे नये शासन के प्रति उत्साह लेकर फ़्रांस लौटे, परन्तु कुछ ही समय बाद क्रान्तिजनित ज्यादतियों ने उन्हें प्रतिवाद करने को बाध्य किया। क्रान्ति के आतंकयुग में सन् १७९४ ई० के मार्च महीने में वे गिरफ्तार किये गये और चार महीनों तक कैद में रखकर

गिलोटीन द्वारा उन्हें मौत के घाट उतारा गया।[1] उनकी शक्तिशाली कविताएँ ले याँब कैदखाने में लिखी गयीं। उनके मित्र चोरी से कविताएँ बाहर ले गये, जो बाद में प्रकाशित की गयीं। इन कविताओं में क्रान्ति के विश्वासघातकों की घोर निंदा है और स्वयं उनकी भयावह और करुणाजनक स्थिति का शक्तिशाली वर्णन है।

रॉनसार की भाँति ही उनकी दार्शनिक उच्चाभिलाषा थी, परन्तु अपनी लम्बी कविताओं, "हर्मेस" और "लामेरीक" की रूपरेखा मात्र वे प्रस्तुत कर पाये थे। इनका दायरा सम्पूर्ण आधुनिक ज्ञान, विशेष कर विज्ञान की समीक्षा है, परन्तु इनके कुछ खण्ड मात्र लिखे गये हैं। उनके शोक-गीत वासनामय हैं। उनमें उष्णता और मनोहारिता है, परन्तु गहरी संवेदना का उद्रेक वे नहीं करते, क्योंकि पार्थिव आकर्षण ही उनका सब कुछ है। "जो द पोम्" प्रयासरचित है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण सम्बोध-गीत (ओड) के कुछ अंश हृदयग्राही हैं। उन्होंने स्वयं ही "बीकोलिक" के नाम से अपनी श्रेष्ठ कविताओं का चयन किया है। प्राचीन परम्परा से चली आयी ग्रीक कहानियों की कुछ घटनाओं पर ही ये कविताएँ आधारित हैं। "लाव्हेयोग्ल", "ल मालाद", "हाइला", "ला मोर द रकील" जैसी उनकी कविताओं की प्रशंसा पीढ़ियों से चली आ रही है। इनमें एक बीती दुनिया के विशाल गौरव के अथवा उसकी स्वाभाविक सादगी के महान् दृश्य आँखों के सामने जाग उठते हैं। त्रुटिहीनता उनकी कला की महान् विशेषता है, परन्तु इसके पीछे उनकी एकाग्रता और निविष्ट ध्यान छिपा हुआ है। उनकी आत्मनिष्ठ अभिव्यक्ति में परवर्ती रोमान्टिक युग का ही आभास मिलता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि महान् रोमान्टिक कविओं की बगल में उन्हें रखा जाय तो वे फीके ही मालूम पड़ेंगे।

१. फ्रेंच क्रान्ति के समय एक डाक्टर ने बहुतेरे लोगों के सिर एक साथ काटने के लिए यन्त्र निकाला था और उसी के नाम पर इसे गिलोटीन का नाम दिया गया।

शेनिए के समसामयिक कवियों को उनकी बराबरी का स्थान नहीं दिया जा सकता। कुछ तो स्पष्टतः दूसरी श्रेणी के ही कवि हैं। सैं लाम्बर के "सेजों" की रूपरेखा ब्रिटिश कवि टामसन के "सीज़्न्स्" (मौसम) से ही ली गयी है। प्रायः इसी नमूने पर जैं आन्तोआं रूशे ने "ले मोआ" (मास) में ग्राम्य जीवन का वर्णन किया है। जाके द लिए ने बागवानी और प्राकृतिक सौन्दर्य के विशेषज्ञ के रूप में अपने जमाने में ख्याति प्राप्त की, परन्तु परवर्ती युग में रोमान्टिक कवियों ने उनके सुशील आनन्दोच्छ्वास पर उनकी खिल्ली उड़ायी। परन्तु शेनिए के समकक्ष न होते हुए भी कुछ कवि ऐसे हैं जिनमें क्लासिक रचना की रचनात्मक शक्ति है, या जिनकी संवेगात्मक उक्तियों में रोमान्टिक युग का पूर्वाभास दिखाई देता है और दो एक तो रोमान्टिक युग को भी पीछे छोड़कर मध्य-उन्नीसवीं शती में पहुँचे हुए जान पड़ते हैं। इस सिलसिले में दलाविनिये, मिलवोए, लर्मासिएर, गिलबर और पार्नी के नामों का उल्लेख किया जा सकता है।

तेतीसवाँ अध्याय

मादाम द स्ताल और शातोब्रिआं

मादाम द स्ताल (१७६६–१८७६) अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य और संस्कृति की सूचना देने वालों में हैं। बौद्धिक राष्ट्रीयता की सीमा वे पार कर चुके थे। रोमान्टिक युग के सिद्धान्तवादियों ने उनकी दो पुस्तकों, 'द ला लितरातीर दाँ' से रापोर्त आव्हेक ले इन्सतीत्युशिआँ 'सोशिआल' और 'द लालेमान' से बहुत-से विचार अपनाये और उन्हें सौन्दर्य के एक नये बोध तक पहुँचाने में इन पुस्तकों ने पथ-प्रदर्शन किया। विक्टर ह्यूगो ने 'क्रॉमवेल' की भूमिका में इन विचारों का आश्रय लिया। 'लितरातीर' में मादाम द स्ताल ने यह दृष्टिकोण उपस्थित किया है कि साहित्यिक कृतियाँ पारिपार्श्विक परिस्थितियों की उपज हैं और उन पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वे किस देश में, किस समय और किन भौगोलिक या जलवायु की परिस्थितियों में लिखी गयीं। इस प्रकार विभिन्न जातीय तथा सांस्कृतिक श्रेणियों में विभक्त होकर कलात्मक एकता छिन्न-भिन्न हो जाती है और क्लासिक परम्परा की बुनियाद ही टूट जाती है, क्योंकि कला का, स्थान, काल, व्यक्ति-निरपेक्ष कोई मानदण्ड ही नहीं रह जाता है। इसी सिद्धान्त से प्रेरित होकर रोमान्टिक साहित्य ने स्थानीय विशेषताओं में काफी दिलचस्पी ली। उनका एक और विचार यह है कि उत्तर और दक्षिण में साहित्यिक आत्मा के रूप भिन्न हैं। दक्षिण में उसकी विशेषताएँ हैं रूप-माधुर्य, नियमबद्धता और स्पष्टता तथा उत्तर में असीम का प्रेम जिसमें संवेग और रहस्यवादिता को पूर्ण अवसर मिलता है। उत्तर की श्रेष्ठता के विषय में वे द्विधाहीन हैं। अपनी दूसरी पुस्तक 'द लालेमान' (जर्मनी के विषय में) में इस

विचार को उन्होंने और स्पष्ट रूप दिया है। जर्मनी उत्तरी देश है और फ्रांस दक्षिणी देश। साहस के साथ उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि फ्रांस की सभ्यता पहले ही फल-फूल चुकी है और नयी उर्वरता के लिए उसे जर्मनी से विचार और प्रेरणा लेनी चाहिए। जर्मनी की प्रशंसा में वे शतमुख हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रशंसा की यथार्थता के संबंध में प्रश्न उठ सकता है, लेकिन उनकी ताजी जानकारी से शिक्षित फ्रेंच समाज ने लाभ उठाया, इसमें कोई सन्देह नहीं। उपन्यास-लेखिका के रूप में उन्हें प्रथम श्रेणी में स्थान नहीं दिया जा सकता। 'देलफ़ीन' का सबक यह है कि अन्तश्चेतना ही नारी की सुरक्षा के लिए काफी नहीं है। वह चाहे अच्छी हो, लेकिन बुद्धिमानी इसी में है कि दुनिया के सामने वह अपना सुनाम बनाये रखे। 'केरिन' में उन्होंने यह घोषणा की है कि साधारणतया नारी पुरुष से अच्छी होती है। दोनों उपन्यासों में नारी-जीवन की समस्याओं का तथा दुःख-कष्ट के प्रति उनके अपरिहार्य आत्म-निवेदन का उनका बोध बहुत स्पष्ट है।

फ्रांसोआ रने द शातोब्रिआं (१७६८—१८४८) में रोमान्टिक भावना भरपूर है, लेकिन एक नये युग में, जिसे वे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाते, वे पुरानी दुनिया की आत्मा को ही वहन करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका स्थान उन्नीसवीं शती में है, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनका स्थान अठारहवीं शती के परिवर्तन काल में ही है। उन्होंने क्लासिक परम्परा का विरोध किया, परन्तु उनका दृष्टिकोण मादाम द स्ताल के दृष्टिकोण से भिन्न है। 'जीनी द क्रिश्चियानिज्म' में उन्होंने यह अभिमत व्यक्त किया है कि यूरोपीय संस्कृति ग्रीस और रोम के गैर-ईसाई दर्शन पर नहीं, बल्कि ईसाइयत के आधार पर ही गठित हुई है। तथापि क्लासिक परंपराओं के सिद्धान्त का परित्याग उन्होंने नहीं किया। उनकी कृतियाँ प्राचीन क्लासिक्स की सुसंगठित रचना तथा नियमबद्धता और भाषा की अनुभावात्मक शक्ति तथा रोमांस की उमंग के समन्वय की उपज हैं।

शातोब्रिआं का जीवन घटनापूर्ण है। क्रान्तिकारियों के विरुद्ध विदेशी सेना के साथ उन्होंने युद्ध किया, इंग्लैण्ड और अमेरिका का उन्होंने पर्यटन किया, नेपोलियन ने उन्हें राजनयिक के रूप में नियुक्त किया, बूरबों सम्राटों के प्रत्यावर्तन के बाद राजदूत और परराष्ट्र मन्त्री के रूप में भी उन्होंने काम किया, फिर १८३० में उन्होंने राजनीति से अवसर ग्रहण कर लिया। प्रथम जीवन में वे स्वयं एक संशयवादी थे, परन्तु बाद को जब उनका धर्म-विश्वास दृढ़ हुआ तो अठारहवीं शती के संशयवादियों को निरस्त करने के लिए ही उन्होंने 'जीनी द क्रिश्चियानिज्म' लिखा। इसमें उन्होंने विज्ञान, कला और सामाजिक क्षेत्र में ईसाई धर्म की सफलताओं का वर्णन किया है। वर्णन गीतात्मक और संवेगात्मक है और धार्मिक प्रेरणा से ओतप्रोत है।

उनकी अन्यान्य रचनाओं में उनके अहम् और व्यक्तित्व की ही प्रधानता है। 'ला व्ही द रान्से' सत्रहवीं शती के एक पादरी की जीवनी है, लेकिन रचना-कौशल से उन्होंने इसमें अपना जीवन ही प्रतिबिम्बित किया है। 'मेमोआर दूत्र तोम्ब्' स्वयं उनकी ही जीवनी है, परन्तु उसकी पृष्ठभूमि विशाल है और मनुष्यों तथा घटनाओं के स्रोत बारम्बार इससे टकराते रहते हैं। जीवन से वितृष्णा और अलौकिक अमरत्व की आशा, उद्धत घमण्ड और ईसाई विनम्रता इत्यादि कितने ही विरुद्ध संवेगों के युक्तिहीन संघर्ष में उनके विरोधाभासपूर्ण जीवन के पृष्ठ एक के बाद एक खुलते जाते हैं। 'ले मारतीर' में उन्होंने ईसाइयत के प्रारम्भिक काल का इतिहास लिखा है और यह एक नमूना है कि काल्पनिक ढंग से इतिहास कैसे लिखा जा सकता है। यरूशलम और अमेरिका के पर्यटन आदि पुस्तकों में भूगोल का भी कल्पनात्मक वर्णन है। उनके प्रकृति-वर्णन में कविकल्पना ही नहीं प्रतीकवाद का स्वर भी प्रच्छन्न रूप से निहित है। उनके छन्दोमय गद्य में लेखक और कवि की द्युतिमय प्रतिभा है।
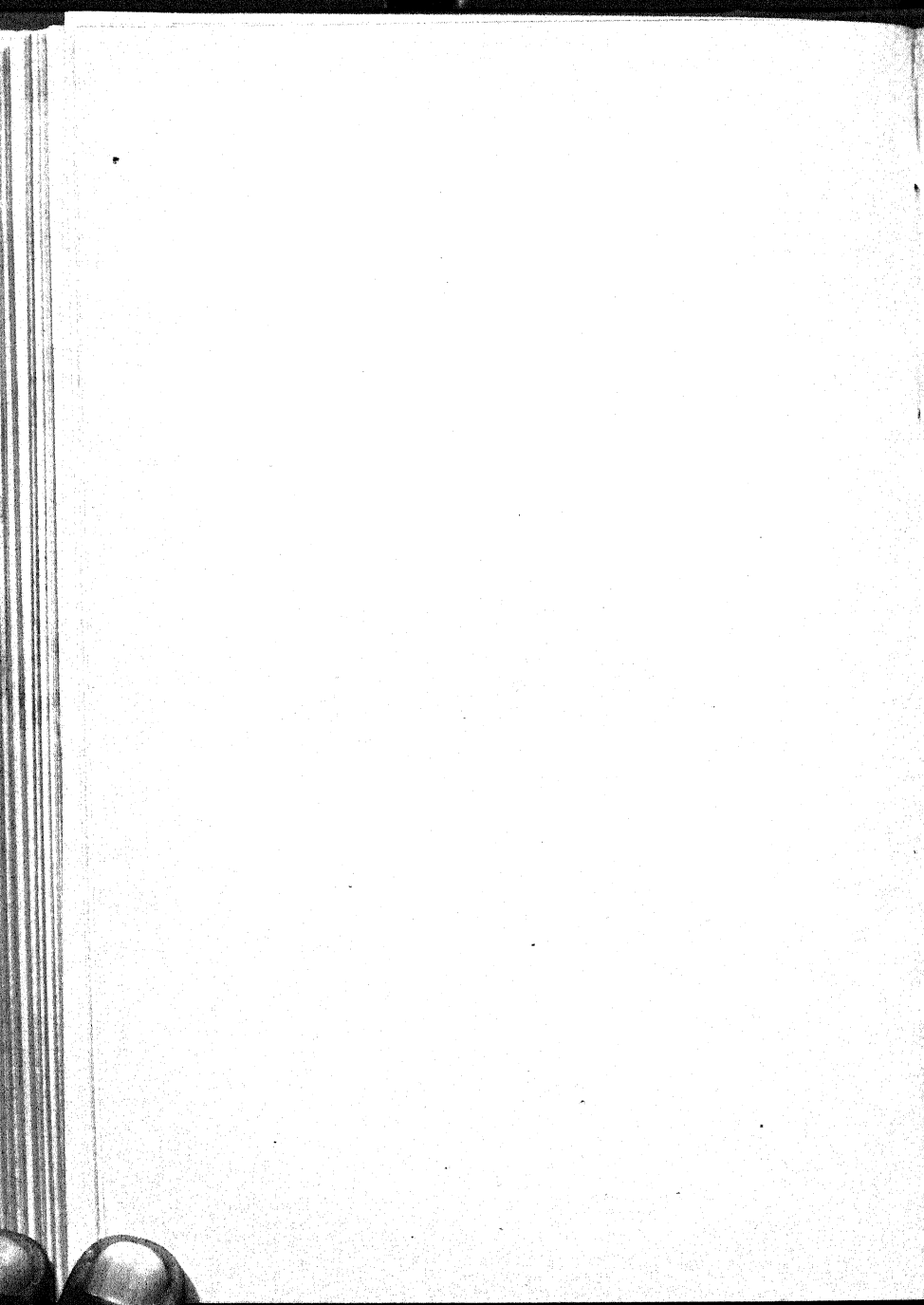
चौंतीसवाँ अध्याय

रोमाण्टिक कवि

१८२० से १८५० ई० तक फ्रेंच साहित्य का रोमान्टिक युग है। रोमान्टिक साहित्य का मुख्य लक्षण है भावुकता। इन्द्रिय-संवेदना और रोमांचकारी कल्पना के संयोग से इसका आकर्षण और भी बढ़ गया। साहित्य ने सुदूर और दूर अतीत से प्रेरणा ली, विजातीय और विदेशी अनुभवों को इसने एक बड़ा स्थान दिया, मध्ययुग के कृत्रिम सौन्दर्य और सामर्थ्य की ओर उसने रुचि दिखलायी। रात्रि, ध्वंसावशेष, मृत्यु के प्रतिबिम्ब और प्रतीक, अस्पृष्ट महिमान्वित प्रकृति तथा उसकी विलासपूर्ण मृदु द्युति उस साहित्य के अंग बने। संवेग, अभिलाषा, व्यक्तिगत पसन्द और सहज बुद्धि, इन उपादानों से निर्मित रोमान्टिक मनोभाव ने विचारों का परित्याग तो नहीं किया, लेकिन क्लासिक युग में उन्हें जो उच्चासन मिला था, वहाँ से वे नीचे उतार दिये गये। शेक्सपियर, मिल्टन, स्काट, बायरन, गेटे आदि विदेशियों का प्रभाव बढ़ा। परन्तु रोमान्टिक आन्दोलन कोई सुसम्बद्ध आन्दोलन नहीं था। क्लासिक युग के मूल्य जब गिर गये और शिक्षित वर्ग तथा अकादमी आदि का अनुशासन जाता रहा—और इसमें महान् फ्रेंच क्रान्ति का भी, जिसने दिखला दिया कि मनुष्य-कृत किसी भी चीज को नये ढाँचे में ढाला जा सकता है, हाथ था—तो प्रत्येक लेखक ने अपने ढंग से प्रतिकार की चेष्टा की। उसका व्यक्तिगत मनोभाव अपना था और उसकी अभिव्यक्ति भी स्वकीय थी। यही कारण है कि रोमांटिक लेखकों की मोटी एकता के बीच बहुविध भिन्नता भी है। क्रान्ति के स्वल्पकाल बाद ही दो मुख्य धाराएँ परिलक्षित होती हैं। पहली है संरक्षणशील, आदर्श-

वादी, पुनः प्रतिष्ठित राजशासन और ईसाई संघ की समर्थक; दूसरी है उदार, यथार्थवादी, बुद्धिवादी और बुर्जुआ (मध्यम) श्रेणी की समर्थक। "ला प्रेस" जैसे सस्ते समाचार पत्रों (१८३६ में एमिल् द गिरार्द्रे द्वारा संस्थापित) में या "र्‌व्ही दे द्यो मॉंद" आदि साहित्यिक-राजनीतिक सामयिक पत्रों में, इन दो विरोधी धाराओं का संघर्ष प्रतिबिम्बित हुआ। साहित्य क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण दैनिक "ल ग्लोब" में एक प्रतिभाशाली समालोचक सैं बव्ह ने अपना सिक्का जमा लिया और रोमांटिक प्रवृत्ति में उसने सुधारवादी उमंग का भी समावेश किया। १८३० की दूसरी क्रान्ति के बाद प्रतिक्रियावादी प्रचेष्टाओं को एक धक्का पहुँचा और तब से मानवतावादी सुधार-आन्दोलन जोर पकड़ता गया। जनसमूह पर इस आन्दोलन का प्रभाव बढ़ने के साथ ही साहित्यिकों की भी प्रतिष्ठा बढ़ी। परन्तु यह तब सम्भव हुआ जब कि शिक्षा के प्रसार के साथ उस समह में विक्टर ह्यूगो या बालजैक-जैसे लेखकों को समझने की शक्ति पैदा हुई। १८३० के बाद हम साहित्य में गम्भीरता के प्रति झुकाव और सामाजिक या दार्शनिक विचार के विस्तार की तीव्र इच्छा पाते हैं। प्रथम स्तर पर रोमान्टिक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति गहरे अनुराग का परिणाम है। इस अभिव्यक्ति का विषय संवेगात्मक है। परवर्ती स्तर पर इस प्रवृत्ति में नैतिक उत्तरदायित्व का बोध पैदा होता है जिसके प्रति फ्रांस का राष्ट्रीय विचार सभी पूर्ववर्ती युगों में वफादार रहा है।

रोमान्टिक युग के चार प्रधान कवि हैं—लामार्तीन, विनी, ह्यूगो और मीसे। लामार्तीन (१७९०—१८६९) की पहली पुस्तक 'मेदिताशिओं पोएटीक' ने फ्रेंच काव्य में एक नये तार पर झंकार दिया। इस ग्रंथ की कविताओं में शब्दों का केवल बौद्धिक संयोग नहीं है, उनकी पंक्तियों में मृदु संगीत की धारा प्रवाहित होती है। यह संगीत बुद्धि, हृदय और कल्पना तीनों को सम्बोधित करता है। उनकी कविताएँ ध्यानमग्न भावुकता के तारों को छेड़ती हैं और कवि तथा पाठक के बीच एक निविड़ आत्मीयता स्थापित कर देती हैं। 'मेदिताशिओं' और 'नूवेल मेदिता-

शिओं' में उनके शैशव और नव-यौवन काल की स्मृतियाँ सैवॉय और इटली में भ्रमण, जंगलों और पहाड़ों पर घूमते हुए एक नवयुवक की आशाएँ और निराशाएँ, एक रमणी से प्रथम प्रेम, छन्दों के वाहन पर हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। इनमें प्राकृतिक दृश्य और संवेग एक लय में बँधे हुए हैं।

'मेदिताशिओं' और 'नूवेल मेदिताशिओं' से लेकर 'हारमनी पोएटिक ए रिलिज्योस' तक लामार्तीन के काव्यों में एक विकासक्रम दिखाई पड़ता है। कैथलिक धर्म और गिरजे के अनुष्ठानों के प्रति प्रेम और पारिवारिक परंपरागत राजभक्ति से प्रशस्त होकर उनका विश्वास आत्मा के धर्म और हृदय के लोकतंत्र में परिणत होता है। इन विषयों के अतिरिक्त प्रति दिन की घटनाओं की प्रतिक्रिया संगीत के स्वर में प्रतिध्वनित होती है। 'मोर द सोक्रात्' (सुकरात की मृत्यु) में संवेग और चिन्तन का समन्वय दार्शनिक उमंग का रूप धारण कर लेता है। 'शूत द नांज' (फरिश्ते का पतन) उनकी एक असफल परन्तु महान् कृति है। इसके आठवें दैव-दर्शन में जिन पंक्तियों में भगवान् की धारणा की अभिव्यक्ति की गयी है वे संगमरमर की तरह ठोस और त्रुटिहीन हैं। संगीत और छन्दों का प्रवाह तो प्रकृति ने उन्हें दिया था, परन्तु शब्दों और वाक्यों की कारीगरी में उनका सश्रम प्रयत्न मौजूद है। उनके गद्य में भी उनके काव्यों के गुण मौजूद हैं। ये कुछ उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन के आधार पर लिखे और बाकी भी उनके जीवन के अन्यान्य पहलुओं की झाँकी हैं। सालों वे राष्ट्रीय पार्लमेन्ट के सदस्य रहे और एक लघु क्रान्तिकारी के रूप में लुई बोनापार्त के जमाने में उन्हें राजनीति से अवसर ग्रहण करना पड़ा। अन्तिम जीवन में आर्थिक कठिनाई के कारण उन्होंने जल्दबाजी में कई कविताएँ और ग्रन्थ लिखे जिन्हें वे स्वयं उच्च कोटि के नहीं मानते।

आलफ्रे द विनी (१७९७—१८६३) और लामार्तीन की कविताओं में असादृश्य बहुत स्पष्ट है। विनी की कविताओं में शब्दों और विचारों की सहज धाराओं का प्राकृतिक संगम नहीं हुआ है। उनकी आयासलब्ध रचना के प्रत्येक शब्द और शब्दांश गुरुत्वपूर्ण हैं, गूढ़ अर्थ से भरे हुए हैं।

यातनाओं का वीरोचित सहन, उनके दृष्टिकोण का वर्णन है। यही 'ला मोर दी लू' का नीति-निष्कर्ष भी है जो यह प्रश्न उठाता है कि "पशु यदि बिना भुनभुनाये अपनी नियति का सामना कर सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं कर सकता ?" उनकी सारी कविताओं की एक ही जिल्द है, लेकिन इसमें एक दर्जन ऐसी कविताएँ हैं जिनमें से कोई एक किसी भी कवि को यशस्वी बनाने के लिए पर्याप्त है। इसी एक जिल्द में कई प्रकार की कविताओं का समावेश है। अतीत को, चाहे वह बाइबिल वर्णित हो, या गैर ईसाइयों का हो, वे भावावेश में कल्पना का रंग चढ़ाकर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। "पोएम् आन्तीक ए मॉदर्न" (कविताएँ–प्राचीन और आधुनिक) में उन्होंने यहोवा का वर्णन विभिन्न रूपों में किया है। 'मोईस' (मूसा) में यह यहोवा एक निर्मम देवता है जो महान् व्यक्तियों पर इतना बोझ डाल देता है कि वे मानव-समाज से ही विच्छिन्न हो जाते हैं। 'ल देलीज' (वाढ़) में यहोवा मानव-समाज का ही प्राकृतिक प्रकोपों के द्वारा विनाश करता है। 'एलोआ' में अति पावन फरिश्तों को भी वे शापग्रस्त करते हैं क्योंकि मानवजाति के प्रति करुणावश वे स्वर्ग से मर्त्य में अवतरण करते हैं। समसामयिक समस्याओं की सामाजिक पृष्ठभूमि भी उनके विचारों का एक विषय है। उनके गद्य-नाटक "शातर्तां' की समस्या है समाज और कलाकार का संघर्ष। 'स्टेलो' में भी कवि को विरोधी समाज के निर्यातन (प्रतिशोध) का सामना करना पड़ता है। 'ला फ़ाम आदल्तेर' (कुलटा रमणी) में वे अतिशय श्रद्धा के साथ ईसा की क्षमा का आह्वान करते हैं। उनकी अन्तिम कवितामाला "ले देस्तिने" में तो दर्शन को ही सर्वोच्च आसन प्राप्त है। कोई सिद्धान्त पाठक पर लादा नहीं गया है। आधुनिक युग के उद्वेगों से प्रपीड़ित चिन्तक के सत्यान्वेषण पर ही बल दिया गया है। कट्टर धर्म से विनी को कोई सहारा नहीं मिलता, लेकिन गहरे आन्तरिक विचार की आध्यात्मिक मर्यादा के प्रति वे सचेत हैं। मनुष्य के विषादपूर्ण भाग्य की अनुभूति उन्हें है, लेकिन निराशा को वे अदम्य साहस के उपादान में परिणत करते हैं। कटुता और बलप्रयोग

को वे दूर रखते हैं और शान्त, गर्वित परन्तु अनुद्धत आत्म-समर्पण तथा करुण सहानुभूति का वे आश्रय लेते हैं। "देस्तिने" की काव्यमाला की ये ही मुख्य विशेषताएँ हैं। 'ल मांत दे ऑलिविएर' में वे प्रश्न करते हैं—"क्या भगवान् ने ईसा को अपने भाग्य पर ही छोड़ नहीं दिया ?" 'ला वूतेइए आ ला मेर' विज्ञान के लिए उत्सर्गीकृत जीवन का प्रतीक है। नाटक-कार और औपन्यासिक के रूप में भी उनकी ख्याति सुप्रतिष्ठित है। 'ओथेलो' का उनका फ्रेंच संस्करण शेक्सपियर के मूल भाव के बहुत निकट है। 'सैंक मार' में स्काट का अनुकरण करते हुए भी उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास में एक प्रतीकपूर्ण अर्थ जोड़ दिया है। 'जूर्नाल दां पोएट' उनका आत्म-प्रकाश है—'कवि' समाज के लिए आवश्यक है, किन्तु समाज में उसका बलिदान ही होता है।

विक्तर ह्यूगो (१८०२-१८८५)

फ्रांस के श्रेष्ठतम कवि और राष्ट्रीय गायक विक्टर ह्यूगो ने अपने सम्बन्ध में कहा है कि बचपन में उनके तीन शिक्षक थे—बगीचा, एक बूढ़ा पादरी और स्वयं उनकी माता। परन्तु उनके अन्दर वह वस्तु थी जिसे कोई शिक्षक प्रदान नहीं कर सकता। वह वस्तु थी कविता के बीज जो अति शीघ्र प्रस्फुटित हो उठे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने फ्रेंच अकादमी को अपनी कविता भेजी जिससे उन्हें "उदात्त बालक" की उपाधि मिली। पुरस्कार के लिए एक और एक सौ बीस लाइनों की कविता उन्होंने एक ही बैठक में लिख डाली। दूब प्रदेश की राजधानी बेसान्सों में उनका जन्म हुआ। उनके पिता सेनाध्यक्ष थे। जब उनकी मृत्यु हुई तो ज्ञात हुआ कि वे मनुष्य-स्वरूप ही नहीं बल्कि साहित्य के मूर्त रूप थे।

उनकी कविताओं के संबंध में उनके एक समसामयिक गुणी कवि थिओडोर द बानव्हिये ने लिखा—"बीच-बीच में विक्टर ह्यूगो की एक नयी कविता प्रकाशित होती है और सब कुछ उजाला हो उठता है, प्रति-ध्वनित होने लगता है, गुनगुनाता है, गाने लगता है। चमकता, बोलता,

मोहनी छन्द, स्वर, वर्ण और लय के हजारों चमत्कार लेकर, एकतान वाद्य की गुरु, गम्भीर, मधुर ध्वनि की नाईं फट पड़ता है। शब्दों के झूले में वह हर मुहूर्त नया कुछ जोड़ देता है—छन्दों का एक मधुर गीत, जो फ्रांस की कविता का गौरव और लावण्य है।"

इस प्रशस्ति में कोई अतिरंजन नहीं है। जिन प्रतिमाओं को वे हमारी आँखों के सामने ला देते हैं, वे स्वीकृत नमूनों की पुनरावृत्ति नहीं हैं, वे सदा ताजी, मुग्ध करने वाली हैं। "ओड ए बैलाड" (सम्बोध कविताएँ और लोकगाथा) में मध्ययुगीन या वैदेशिक विषयों को लेकर एक सजीव कल्पनाशक्ति भाषा में ऐसा जादू फैला देती है जैसा कि फ्रेंच काव्य ने अभी तक देखा नहीं था। 'ओरियेन्टेल' पढ़कर कोई पाठक उठता है तो उसके मन में चित्रों का एक मेला लग जाता है। वह देखता है सुलतान को अपने महल में, सुन्दरी रमणियाँ उसे घेरे हुए हैं और अपने पालतू शेर की मृत्यु पर किसी भी प्रकार से वह सान्त्वना प्राप्त करना नहीं चाहता। वह देखता है आग का बादल जो भगवान् के आदेश से जमीन और समुद्र, मिस्र और पिरामिड, गुलाबी पत्थर की बनी स्फिन्स्क् और पीली नील नदी और रेत के बीरान पर भागता जाता है जब कि गैब से आवाज आती है "रुको"। आग का बादल रुक जाता है और वहीं निनेवे पर गिरता है और आमोद-पूर्ण पाप में डूबा हुआ वह शहर धधकने लगता है। निनेवे जलती हुई आग का एक चूल्हा बन जाता है।

इन कविताओं में कवित्व-शक्ति का पर्याप्त परिचय मिलता है, लेकिन ये रोमांटिक सिद्धान्तों के ऊपरी स्तर के व्यावहारिक प्रयोग मात्र हैं। इनमें नयी दिशा का कोई संकेत नहीं है। यह संकेत मिलता है उनके परवर्ती ग्रन्थों में, 'पतझड़ की पत्तियाँ,' या 'प्रकाश और छाया' में। प्रतिमा और गीत अब कवि की वाणी के माध्यम हैं। कवि को अब दिव्य दर्शन मिलता है। अस्पष्ट और रहस्यमय की उनकी आकांक्षा प्रकट होती है। 'रेओं ए ले सौम्ब्र' (प्रकाश और छाया) में कवि गाते हैं—"वह लौटता है और देखता फिरता है वह तालाब और बाग, ओक वृक्ष के तले

और जंगल की छाया में, काई लगी घाटी और बगीचे में जहाँ गुलाब खिलते थे—हर जगह जहाँ दोनों मिलकर तुरीयानन्द में सब कुछ भूल जाते थे. . .लेकिन तनिक समय सब कुछ बदल देता है। . . .(फिर वह पूछता है) क्या हमारा खेल अब खत्म हो चुका है? हमारा समय क्या अब खत्म हो चुका? क्या हमारा सब सुख मिट चुका? हमारा आनंद समाप्त हो चुका? मैं रोता हूँ और धूप में फूल मुसकरा रहा है। जो जगह मुझे जानती थी अब मुझे नहीं पहचानती। जहाँ हम चलते थे वहाँ अब दूसरों के चरण पड़ेंगे। हमारे चले हुए रास्ते अब अन्यों को सुन्दर और मधुर जान पड़ेंगे। . . .ईश्वर कुछ समय के लिए हमें जंगल और मैदान, उषा की लालिमा और संध्या की मधुरिमा और उन दृश्यों को उधार देता है जहाँ मधुर आनंद का राज्य होता है। फिर एक चोट में ही हम सब कुछ से वंचित हो जाते हैं. . .लेकिन हे प्रेम, उस रात में जब तारे भी दिखाई नहीं देते, तुम्हारा विनाश कौन कर सकता है? तुम पर कौन विजय प्राप्त कर सकता है? गहनतम रात्रि में भी दूर एक रोशनी चमकती रहती है, वह है तुम्हारी मशाल, तुम्हारी पथ-निर्देशक ज्योति, तुम्हारी पावन स्मृति।" (त्रिस्तेस दोलिम्पिओ)

लेकिन ह्युगो ने हीरा मोती का बाजार लगा दिया है 'ले शातिमां' (निर्यातन), 'ले कॉन्तांप्लाशिओं' (विचार) और 'ला लेजांद दे सिएक्ल्' (युगों की कथा) में। 'शातिमां' में कवि का राजनीतिक और नैतिक रोष आग बरसाता है। ह्यूगो लुई नेपोलियन के कट्टर विरोधी थे; १८५१ में जब लुई नेपोलियन ने अपने को सम्राट् घोषित किया तो ह्यूगो पेरिस से निर्वासित किये गये और उनके सिर की कीमत घोषित की गयी। वे भागकर चैनेल द्वीपों में जर्सी नामक स्थान पर पहुँचे। बाद को वे जेर्न्सी को गये जहाँ उन्होंने अपना घर बसाया। वहीं उन्होंने अपनी श्रेष्ठतम कृति 'लेजांद दे सिएक्ल' की रचना की। बच्चों के विषय पर लिखी गयी कविताएँ, 'पितामह होने की कला', भी वहीं लिखी गयी।

'क्षुद्र नेपोलियन' पर वे विद्रूप की बाण-वर्षा करते हैं। वे मधु-

मक्खियों का आह्वान कर कहते हैं—"ऐ हवा में उड़नेवाली छोटी योद्धाओं, सब जुटो और उस नीच विश्वासघातक पर डंक चुभा दो।...चूँकि फ्रांस के मनुष्य डरते हैं, इसलिए फ्रांस की मधुमक्खियों, तुम लोग ही उस दानव का पीछा करो।" (ले शातिमां—"शाही लिवास")

अपनी लड़की की मृत्यु से ह्यूगो का मन व्यथा से भर उठा और 'ले कान्तांप्लाशिओं' में उस वेदना की अभिव्यक्ति है, यातना-भोगी आत्मा का उच्छ्वसित क्रन्दन है। अब संवेगों की शुद्धि में वाक्पटुता का कोई स्थान नहीं है।

फ्रांस की जनता पर सब से गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा है 'लेजांद दे सिएक्ल' का। यह रचना एक प्रमाण स्वरूप है कि निजी और सार्वजनिक विपत्तियों के बावजूद ह्यूगो ने अपना मानवीय और आशापूर्ण विश्वास कभी खोया नहीं। इसमें दो सम्पूर्ण भिन्न प्रकार की कविताएँ हैं। कुछ अति सरल गीतों में उनका परिपूर्ण आत्म-समर्पण है और कुछ में वे एक विजयी द्रष्टा हैं, जो निडर होकर अमूर्त को अपनी मुट्ठी में पकड़ लेता है और गहनतम आध्यात्मिक विश्वासों को सहज बोध्य प्रतिमाओं में व्यक्त करता है। 'ला कांसिआंस' (अन्तश्चेतना) बाइबिल वर्णित केन की कहानी है। हत्या करने के बाद केन परिवार सहित भाग रहा है, लेकिन एक आँख, एक महान् आँख उसका पीछा कर रही है। उस दृष्टि से भाग निकलने का कोई स्थान उसे नहीं मिलता। अपनी कल्पना की आँखों से कवि देखता है कि उसके लड़के अपने पिता के लिए जमीन के ऊपर किला बनाते हैं, फिर जमीन के नीचे तहखाना बनाते हैं, लेकिन वे आँखें—अन्तश्चेतना की आँखें—सदा उसका पीछा करती हैं। सुलतान मुराद एक अतिशय क्रूर राजा है, लेकिन अपने निर्दय जीवन के एक क्षण में वह एक सूअर पर रहम खाता है। कवि के लिए इतना ही काफी है। परम दयालु भगवान् सुलतान मुराद के कार्यों को तोलता है; एक पल्ले पर पिसी हुई दुनिया है और दूसरे पल्ले पर वह सूअर और यही पल्ला नीचे को झुकता है। कवि कहता है, "अति क्रूर को भी, खून से लथपथ

हत्यारे को भी मुक्ति मिल सकती है; यदि वह क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति की स्वल्पतम सहायता मात्र भी करता है।" ह्यूगो की करुणा और आशा दोनों असीम हैं। उनकी सब से ओजस्वी कविताएँ हैं "लाने टेरिब्ल्" (भयंकर वर्ष)। १८७१ में जर्मनों ने पेरिस को घेर लिया और कवि के हृदय में देशप्रेम उमड़ पड़ा। जर्मन आक्रमण ने उनके हृदय को क्षत-विक्षत कर दिया। वे पुकार उठते हैं—"वे (जर्मन) तुम्हारी नीति पर, तुम्हारे धर्म पर दोषारोप करते हैं, अपने कत्ल की सफाई के लिए तुम्हारे ऊपर अपमान की बौछार करते हैं। हत्या का उद्देश्य लेकर वे निन्दावाद करते हैं। महान् नगरी और जनता, वह नगरी जो कला का पालन करती है और झोंपड़ी वालों के अधिकारों की रक्षा करती है, उठो, म्यान से तलवार निकालो और युद्ध करो (पेरिस की निन्दा)।" फिर वे कहते हैं—"मैत्री की चर्चा किसी उपयुक्त समय के लिए रख छोड़ो, लड़खड़ाती ज़बान में भ्रातृत्व के शब्द पर दुश्मन हँसी उड़ाता है, वह इसे अवज्ञा की दृष्टि से देखता है। मैत्री और निर्द्वेष की बातें कल अच्छी सुनाई देंगी, लेकिन आज तो ये तुच्छ समझी जाती हैं।"

ह्यगो के उपन्यासों ने पश्चिमी राष्ट्रों को प्रबल रूप से आकर्षित किया है। 'ले मिजेराब्ल' और 'नॉत्र दाम द पारी' (हंच बैक ऑव नॉत्र दाम) आपेक्षिक रूप से अधिक सुपरिचित हैं। ये दोनों और 'ले त्रावेल्योर द ला मेर' उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। उनके उपन्यासों का कोई न कोई उद्देश्य है—ऐतिहासिक, नैतिक या सामाजिक, या तीनों एक साथ। उनके नाटक भी मनोरम हैं। 'हरनानी' और 'रीब्ला' की ख्याति जिसमें सत्रहवीं शती के स्पेन का सटीक चित्र उतारा गया है, आज भी वैसी ही बनी हुई है।

आलफ़्रे द मीजे (१८१०—५७) नवयुवक लेखकों की उस गोष्ठी के थे जो लारसेनाल के सालां पर इकट्ठी होती थी। शार्ल नोदियेर ने इसे एकत्रित किया था और ह्यगो उसके पथप्रदर्शक थे। कविता में लिखी गयी उनकी प्रथम पुस्तक 'ले कांत देस्पान ए दिताली' (स्पेन

और इटली की कहानियाँ) पर ह्यूगो की 'ओरिएन्टेल' का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। इसमें रोमांसिक कल्पना प्रचुर है। प्रेम, ईर्ष्या, प्रतिशोध और मृत्यु की कहानी के उनके वर्णन में वाग्वैदग्ध्य, आवेगहीनता और विश्व के प्रति अवज्ञा है। "मारडोक" और "नामूना" जैसी कविताओं में ब्रिटिश कवि वायरन का स्पष्ट प्रभाव भी परिलक्षित होता है। परन्तु उनकी रचनाओं में रोमांसिक के साथ एक और धारा का भी संयोग हुआ है। निविड़ संवेग के क्षणों में जब हृदयोद्‌गार की उनकी भाषा आसमान छूने लगती है और उनके छन्द एक व्यापक आन्दोलन ला देते हैं उस समय उनकी शैली में क्लासिक रचना के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। परन्तु अपने जीवन के तिक्त अनुभवों से ही उनकी महान् कविताओं की उत्पत्ति हुई। प्रख्यात औपन्यासिक जॉर्ज सँद् के प्रति उनके प्रेम और बाद को उसके विच्छेद ने उनकी तिक्तता के घट को परिपूर्ण कर दिया। इन अनुभवों के प्रत्यक्ष परिणाम स्वरूप ही उन्होंने तीन सुन्दर नाटक लिखे—"लोरेन-ज़ाचिओ", "फैन्टासिओ' और "आं न बादीन पा आव्हेक लामूर'—आत्म-जीवनी पर आधारित उपन्यास "ला कॉनफासिओं दां आंफां दी सिएक्ल' लिखा और काव्यगुच्छ 'ले नूई' (रात्रि) लिखा। उनकी रचनाओं में रोमांसिक प्रवृत्ति और क्लासिक्ल मूल्यों तथा मर्यादाओं का अपूर्व मिलन हुआ है।

इस काल के अन्य कवियों में उल्लेखनीय नाम है गेरार द नरवाल (१८०८—५५)। उनके चतुर्दशपदी गीत "ले शीमेर" की तकनीक प्रतीकवादी है, जिसमें विचार और धारणाएँ प्रतिमाओं में जा मिलती हैं और ये सारे ही रहस्यमय आवरण के नीचे ढक जाते हैं।

पैंतीसवाँ अध्याय

उपन्यास

ला मार्तीन, विनी, ह्यूगो और मीजे के उपन्यासों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। रोमान्टिक युग के उपन्यासों में रोमांस ही सब कुछ नहीं है। इन उपन्यासों के विभिन्न तत्त्वों में रोमांस भी एक है। स्टेन्डाल (१७८३–१८३१) रोमान्टिक लेखकों के मतवाद के प्रति सहानुभूति-सम्पन्न थे, शेक्सपियर को रासीन की तुलना में अधिक मर्यादा देते थे, अकादमी के प्रति उन्हें कोई श्रद्धा न थी, लेकिन अपने श्रेष्ठतम उपन्यास 'ल रूज ए नोआर' (लाल और काला) में उन्होंने समसामयिक जीवन का यथार्थवादी चित्र ही प्रस्तुत किया है। "लाल काला" का नायक घिसा हुआ बदमाश जुलियां सोरेल अपने पूर्णतः नीति-निरपेक्ष चरित्र के बल पर जीवन के मजे लूटता है। इसमें समाज का व्यंग्यात्मक सर्वेक्षण है। लाल-काले की एक राजनीतिक पृष्ठभूमि भी है। नायक जुलियां पलटन के लाल की अपेक्षा पादरियों के काले को ही अधिक पसन्द करता है। वह दो औरतों को भगा ले जाता है, उनके साथ अत्याचार करता है और अन्त को अपने सिर से अपनी करनियों की कीमत चुकाता है। स्टेन्डाल का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण स्पष्ट, भ्रमविहीन और अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न है, यद्यपि मानव जाति की युक्ति-हीनता के लिए उन्होंने कोई जगह छोड़ी नहीं है। स्टेन्डाल प्रश्न करते हैं—"रोमान्स इसके अतिरिक्त और क्या है कि आधुनिक पाठक यह चाहता है कि उसे अपने पसन्द की चीज मिले और क्लासिक की जिद्द यह है कि पाठक को उसके पितामह और प्रपितामह के पसन्द की चीज दी जाय।" फिर भी उनकी प्रवृत्ति यथार्थवादी है और सत्य के प्रति अटूट श्रद्धा तथा बौद्धिक ईमानदारी

के उनके संकल्प के परिणामस्वरूप ही टेन, बूर्जे और जीद जैसे लेखकों को हम उनके शिष्य के रूप में पाते हैं। 'ला शारव्योस द पाम' भी सुन्दर उपन्यास है। इसके एक अध्याय में वाटरलू के युद्ध का अस्तव्यस्त वर्णन अति मनोरम है।

बालज़ैक (१७९९–१८५०) में यथार्थवादी प्रवृत्ति और भी प्रबल है। परन्तु परवर्ती युग के वैज्ञानिक उपन्यास के वस्तुगत दृष्टिकोण तक वे अभी नहीं पहुँचे हैं और उनकी कला में वीरोचित, रोमांचपूर्ण और रहस्यपूर्ण घटनाओं का भी स्थान है। वे केवल प्रति दिन की सामान्य घटनाओं का परिचित रूप ही हमारे सामने नहीं रखते, बल्कि साहसिक, कारुणिक और रोमांसिक प्रवाह में भी हमें ले चलते हैं, यद्यपि वे स्वयं कहते हैं कि रोमान्टिक औपन्यासिक शून्य पर घुड़सवारी करनेवाले हैं। 'कॉमेडी' ह्युमेन में उन्होंने विभिन्न प्रकार के सामाजिक मनुष्यों के श्रेणीकरण की चेष्टा की है। वे स्वयं इस श्रेणीकरण को वैज्ञानिक मानते हैं, परन्तु सत्य यह है कि अनेक उपन्यास लिखने के बाद उन्होंने यह नामकरण किया और बाद को अन्य और उपन्यासों को इस नाम के साथ जोड़ दिया। इसके दो मुख्य भाग हैं, "एतीद द म्योर" (रीति-रिवाजों का अध्ययन) और "एतीद फिलोसोफीक" (दार्शनिक अध्ययन)। पहले और बड़े भाग में कई छोटे-छोटे भाग हैं, जैसे "व्यक्तिगत जीवन की झाँकी—लपेर गोरिओ", "प्रादेशिक जीवन की झाँकी—युजेनी ग्रान्दे", "ले इल्युजिओं पेरदी", "उर्सूल मिरूई;" "ग्राम्य जीवन की झाँकी—ल मेदसैं द काम्पानिये" आदि; पेरिस के जीवन की झाँकी—'सीजार विरोतो' आदि। दूसरे भाग में हैं "ला पो द शाग्रैं", "ल रेशर्श द ला बसुली" और दो रहस्यवादी उपन्यास, "लुई लाम्बेर" तथा "सेराफिटा"। उन्होंने पहले १३० जिल्दों में इस उपन्यासमाला के लिखने की योजना बनायी थी, परन्तु अपनी योजना वे पूरी नहीं कर सके। फिर भी इतने बड़े पैमाने पर किसी और औपन्यासिक ने नहीं लिखा है।

उन्होंने प्रति दिन के जीवन के नाटक का, अति साधारण जीवन में

संवेगों का सफल प्रदर्शन किया है। उनके औपन्यासिक पात्र आधुनिक दुनिया के उद्देश्यों से प्रेरित आधुनिक नर-नारी हैं। अधिकांश यथार्थवादी लेखकों का एक विशेष गुण उनमें भी है। महान् और आकर्षक चरित्रों की अपेक्षा कदर्य और घृण्य चरित्रों का चित्रण ही वे अधिक सफलता के साथ करते हैं। ब्रिटिश औपन्यासिक डिकेंस की तरह ही उन्होंने बहुविध चरित्रों का शानदार चित्र खींचा है। ब्रिटिश औपन्यासिक स्कॉट के अनुरूप धन की आवश्यकता ही उनकी अनवरत साहित्यिक प्रचेष्टा का प्रमुख कारण था। परन्तु बालज़ैक के क्षेत्र में आर्थिक कठिनाई स्वयं उनकी ही सृष्ट है। बालज़ैक का धन किस तरह उड़ जाया करता था इसका एक आकर्षक वर्णन "पेरिस में एक अंग्रेज" के लेखक से सुनिए : "बालज़ैक का रुपया हवाई किलों पर, स्वप्नलोक के गुब्बारों पर खर्च होता था। मेहनत की कमाई से वह गुब्बारों का निर्माण करता था और इनमें अपने दिव्य दर्शन की हवा भर देता था, लेकिन जमीन से तीन फुट ऊपर भी ये उड़ नहीं पाते। बालज़ैक का दृढ़ विश्वास था कि अपने उपन्यासों में उसने जिन पात्रों का चित्रण किया था, वास्तविक जीवन में भी उनका अस्तित्व था, विशेष रूप से वे पात्र जिन्होंने सामान्य अवस्था से शुरू कर बाद को प्रचुर धन उपार्जित किया। उसने सोचा कि कागज पर जिस सफलता की कुंजी उसे मिल गयी थी उसका प्रयोग व्यावहारिक जीवन में किया जा सकता था। उसने तरह-तरह की योजना बनायी। अपने मकान का नक्शा उसने खुद बनाया और मिस्त्री को आज्ञा दी कि हूबहू नक्शे के अनुरूप ही मकान बने। मकान बनकर तैयार हुआ तो उसमें कोई सीढ़ी ही नहीं थी। सीढ़ियाँ बाहर से जोड़नी पड़ीं। ऊपर चढ़ने के जरिये पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया।"

पोलैण्ड की एक काउन्टेस, मादाम दी हांस्का से उनकी चिट्ठी-पत्री होती रही और मृत्यु के थोड़े ही दिनों पहले दोनों की शादी भी हुई। मादाम हांस्का को लिखे गये उनके पत्र वास्तव में आनन्ददायक हैं।

आमान्दीन लीसिल्ल ओरोर दीपैं (१८०४–१८७६) ने जॉर्ज सँद् के

छद्म नाम से कोई सौ उपन्यास आदि पुस्तकें लिखीं। "अनादृत नारी" का, जिसे बाद के अनेक औपन्यासिकों ने अपनी कथावस्तु बनाया, आविष्कार करनेवाली जार्ज सँद् हैं। उनके उपन्यासों का क्रमविकास एक लक्षणीय वस्तु है। "इण्डियाना" (जिससे उन्हें प्रथम ख्याति मिली) और "व्हैलेन्टीन" में उन्होंने नारीप्रेम की पहल और स्वतंत्रता की सुन्दर वकालत की है। राजनीतिक स्तर पर नहीं बल्कि नैतिक और सामाजिक स्तर पर उन्होंने नारी के अधिकारों का समर्थन किया है। उनका कहना है कि संवेगात्मक प्रयोगों के लिए पुरुष और नारी को समान स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। 'ल मेनिएर दाग्निबोल' और 'ल पेशे द मोशिए आंतोआन' दूसरी श्रेणी के उपन्यास हैं जिनकी प्रेरणा उन्होंने आदर्शवादी समाज से ली है। 'ला मार ओ दियाब्ल' और 'फ्रांसोआ ल शांपी' तीसरी श्रेणी के उपन्यास हैं जिनमें ग्राम्य जीवन का चित्र उतारा गया है। मीजे से अपने प्रणय-संबंध और तज्जनित क्रूर अनुभवों को उन्होंने 'एल् ए लुई' में लिपिबद्ध किया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास का ढिंढोरा न पीटते हुए उन्होंने जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है वह कोई गुणी व्यक्ति ही कर सकता है। जॉर्ज सँद् में उदारता है और उद्देश्य की महानता है और भावुकता का भी एक पुट है, परन्तु उससे करुण रस की कहीं विकृति नहीं हो पायी है। गुस्टाव्ह फ्लोबेर से उनका काफी पत्र-व्यवहार हुआ और उनके पत्रों में अद्भुत रमणीयता तथा बोधशक्ति है।

आलेकजान्ड्र डूमा-पिता (१८०३-७०) ने अतीत के प्रति रोमांसिक दिलचस्पी का इस प्रकार विकास किया कि प्रत्येक उसका आनन्द ले सके। ह्यूगो ने जिस समय कविता लिखना शुरू किया, उस समय डूमा ने ऐतिहासिक नाटक लिखना आरम्भ किया। इसके दस साल बाद उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास में हाथ लगाया। इन उपन्यासों में ऐतिहासिकता कम हो या अधिक, अपने जीवटदार हिम्मती चरित्रों से और उत्तेजनापूर्ण साहसिक घटनाओं से उन्हें एक ऐतिहासिक काल की प्रतीति तो उन्होंने दे ही दी है। 'तीन बन्दूकधारी', 'बीस साल बाद' तथा 'गेलोन के ड्यूक'

में उन्होंने तेरहवें और चौदहवें लुई के फ्रांस का एक चमत्कारिक चित्र खींचा है। उपन्यासवर्णित ऐतिहासिक घटनाओं में कुछ गलतियाँ भले ही हों, परन्तु उनके रंग और वातावरण में वास्तविकता का आभास है। रोमांसिक उत्तेजना और आकर्षण में उनका 'मॉन्टे क्रिस्टो का काउन्ट' बेजोड़ है। यू जीन सू और आलेकजान्ड्र डूमा ने अखबारों में किस्तों से उपन्यास लिखना प्रचलित किया।

प्रॉस्पेर मेरिमे (१८०३-७०) का 'कारमेन' एक सुप्रसिद्ध उपन्यास है। छोटी कहानियों के कलाकारों के वे श्रेष्ठ प्रतिनिधि स्वरूप हैं। रूसी साहित्य में दिलचस्पी लेनेवाले अग्रणियों में से वे एक हैं। गोगोल और तुर्गेनीव के कुछ उपन्यासों तथा कहानियों का उन्होंने अनुवाद किया। वे रोमान्टिक लेखकों की श्रेणी में ही पड़ते हैं, परन्तु उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'नवम चार्ल्स के राज्य' में यथार्थवाद की सूचना मिलती है।

छत्तीसवाँ अध्याय

इतिहासकार और चिन्तक

जूल मिशले (१७९८-१८७४) के लिए इतिहास एक दिव्य-दर्शन का विषय है जिसमें देश का अतीत जीवित, जाग्रत, गतिमान् हो उठता है। रोमान्टिक इतिहासकारों में सब से महान् इस लेखक के इतिहास की प्रकृति काव्य-प्रकृति के अनुरूप है। दिव्यद्रष्टा की सर्जनात्मक शक्ति के द्वारा सामर्थ्यशाली प्रतिमाओं को छन्दोमय शैली में वे हमारे सामने उपस्थित करते हैं। रोम के राज्यकाल से लेकर अठारहवीं शती तक फ्रांस का इतिहास उनकी मुख्य कृति है। महान् फ्रांसीसी क्रांति का एक पृथक् इतिहास भी उन्होंने लिखा। वे गरीब घराने में पैदा हुए थे, परन्तु विद्याबल से वे अति उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हुए। राष्ट्रीय संग्रहालय के इतिहास-विभाग के वे प्रधान नियुक्त किये गये और कॉलेज द फ्रांस के वे प्राध्यापक बने। लेकिन अति उदार मत का पोषण करने के कारण उन्हें एक-एक कर सभी पदों से मुक्त किया गया। क्रांति का लोकतान्त्रिक उत्साह उनमें भरपूर था और उनकी आँखों में अतीत का इतिहास अत्याचारों तथा विलम्बित न्याय की जन्म-यातना की लम्बी कहानी है। इतिहास के अतिरिक्त 'नारी', 'परिवार' आदि पुस्तकों में उन्होंने विवादग्रस्त धार्मिक और राजनीतिक प्रश्नों को छेड़ा है। "चिड़िया", "कीड़े", "पहाड़", "समुद्र" आदि निबन्धों में उन्होंने सहजात सहानुभूति से प्रकृति का अध्ययन किया है, लेकिन उनमें सत्य की खोज की प्रबल आकांक्षा है।

इस युग के फ्रेंच इतिहासकार १७८९ की फ्रेंच क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित थे। इस क्रान्ति को या तो वे एक युग के अन्त के रूप में देखते

थे या अपने युग की एक कुंजी के रूप में। लुई ब्लाँक ने "फ्रेंच क्रान्ति के इतिहास' में घटनाओं का विश्लेषण समाजवादी दृष्टिकोण से किया है। राजनीतिज्ञ एडाल्फ थिएर ने, जो बाद को तीसरी फ्रेंच रिपब्लिक के प्रथम राष्ट्रपति हुए, 'क्रान्ति के इतिहास' और 'कॉनसलेट तथा नेपोलियन के साम्राज्य के इतिहास' में वर्णनात्मक ढंग अपनाया है, लेकिन उनका तरीका घटनाओं का ब्यौरा इकट्ठा करना था, अतीत के वातावरण का पुनःसर्जन करना नहीं। उनके राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसोआ गीजो का तरीका अधिक विश्लेषणात्मक था और उन्होंने फ्रेंच क्रान्ति का उतना नहीं, जितना कि मध्यम वर्ग के राजनीतिक उत्थान का अध्ययन किया। इसे उन्होंने यूरोपीय इतिहास का सबसे बड़ा सबक माना है। उन्होंने ब्रिटिश क्रान्ति का इतिहास और यूरोप तथा फ्रांस की सभ्यता के इतिहास भी लिखे। यूरोप की सभ्यता के इतिहास को आधुनिक समाजतात्त्विक इतिहास का एक प्रारम्भिक प्रयत्न माना जा सकता है। गीजो को दार्शनिक इतिहासकारों की श्रेणी में डाला जा सकता है। इस क्षेत्र में आलेक्सी द तोकविये और भी अधिक ख्याति-सम्पन्न हैं। 'ला डिमोक्राती आं आमेरीक' में उन्होंने पहली बार आधुनिक लोकतन्त्र की कार्यप्रणाली को फ्रेंच जनता के सामने रखा। फ्रेंच क्रान्ति के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित थी कि इसने क्रान्ति-उत्तर फ्रांस को फ्रेंच राष्ट्र के गहनतम जीवन से विच्छिन्न कर दिया। तोकविए ने 'प्राचीन शासन और क्रान्ति' में इस नितान्त सरल व्याख्या की त्रुटियों पर प्रकाश डाला और वास्तविकता की जटिलताओं को सामने रखा।

इस बीच, क्रान्तिकारी उथल-पुथल और पुनर्निर्माण-जनित जिन दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का सामना १९वीं सदी को करना पड़ रहा था, उन पर अन्य चिन्तक विचार कर रहे थे। विक्टर कूजें और जूफ्रॉए ने विशेषज्ञों की कठिन दुर्बोध्य भाषा को छोड़कर दार्शनिक तत्त्वों की नितान्त सरल व्याख्या की। उन्होंने दर्शन को उच्चतर ज्ञान के रूप में देखा, जैसा कि वह युगों की विचारधारा से छनकर, जनसाधारण के

लिए, उन व्यापक सिद्धांतों का रूप ग्रहण करता है जिन्हें जीवन का आधार बनाया जा सकता है। कूजैं की आध्यात्मिकता अतीत की प्रणालियों का एक समन्वय था और जूफ़ाँए के आदर्शवाद ने सरल अभिव्यक्ति को ही सचाई की एक कसौटी बनाया। इनकी पुस्तकों ने कट्टर धर्मविश्वास के संकट से पीड़ित व्यक्तियों को निराशावाद से राहत दी। समाजवादी प्रवृत्तियां जो फ्रांसीसी क्रान्ति की उत्तेजना के बीच काम कर रही थीं, रोमान्टिक युग में चरम सीमा पर पहुँचीं। 'नव-ईसाइयत' के लेखक काउन्ट क्लोड-हांरी द सैं-सीमों ने औद्योगिक संगठन, श्रमिकसंघ और सम्पत्ति के बटवारे के संबंध में कुछ अस्फुट विचार लोगों के सामने रखे। फूरिए और प्रूधों में फ्रेंच समाजवाद का एक राष्ट्रीय रूप लोगों के सामने आया। इन तीनों के प्रभावस्वरूप सामाजिक कर्तव्य का एक नया बोध उत्पन्न हुआ और जॉर्ज सैंद् जैसे लेखकों के साहित्य में इसने मानसिक पृष्ठभूमि का रूप ग्रहण किया।

आठवाँ भाग

यथार्थवाद (१८५०-८५)
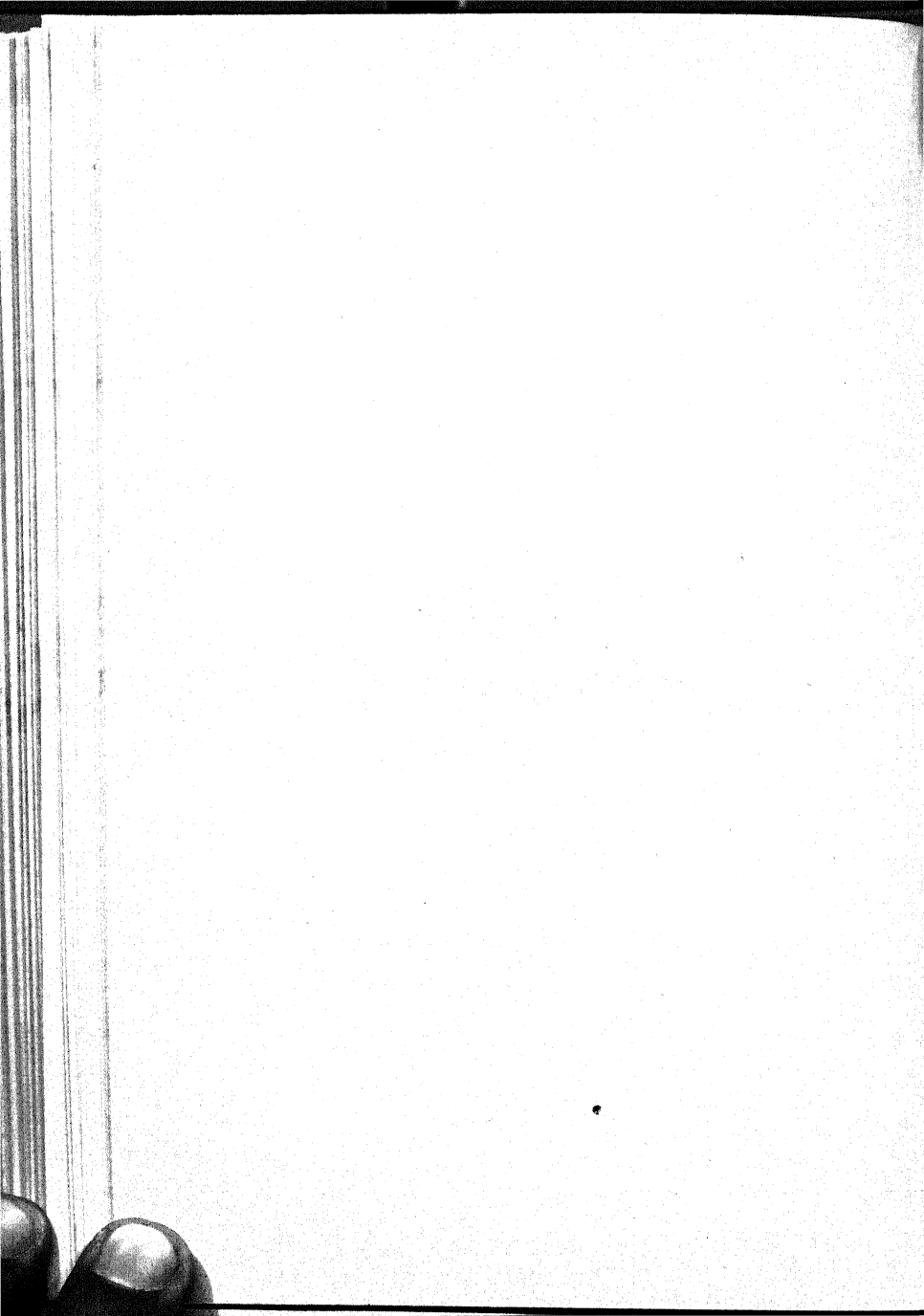
सैंतीसवाँ अध्याय

काव्य

रोमान्टिक युग के बाद का फ्रेंच साहित्य मुख्यतः यथार्थवादी साहित्य है। रोमान्टिक साहित्य का मुख्य लक्षण यह है कि यह वास्तविकता के अनुरूप न होकर, जो हो सकता था या जो होना चाहिए उसके अनुरूप है। रोमान्टिक प्रवृत्ति कल्पना-मूलक और भावुकतापूर्ण थी। कल्पना की प्रवृत्ति वास्तविकता का यथार्थ सादृश्य पैदा करना नहीं, बल्कि नयी सृष्टि करना है, कल्पना के आधार पर यथार्थ का पुनर्निर्माण करना है। इसकी दुनिया वास्तविक अनुभव की दुनिया नहीं बल्कि आकांक्षा और स्वप्न की दुनिया है। रोमान्टिक साहित्य में तीव्र अनुभूतियों की उत्तेजना होने के कारण साधारण घटनाओं की तुलना में उसका स्वर काफी ऊँचा है। लेकिन कल्पना का प्राचुर्य भी थकावट ला देता है। फिर वह आनन्ददायक नहीं रह जाता। इसके संशोधन के लिए ही स्वस्थ सन्तुलित बुद्धि इसमें वास्तविकता के समावेश का प्रयास करती है और यथार्थवादी कला की यही मूल प्रकृति है। रोमांसिकता की प्रतिक्रिया स्वभावतः सन्तुलित बुद्धि की ओर अग्रसर होती है। रोमान्टिक साहित्य की इस प्रतिक्रिया का लक्षण १८४० में ही स्पष्ट हो गया था और १९वीं शती के मध्य भाग में पूरी शक्ति के साथ यथार्थवाद का आविर्भाव हुआ। उसी समय भौतिक और नैतिक विज्ञानों की मर्यादा भी सुप्रतिष्ठित हो रही थी और साहित्य के यथार्थवाद की ओर अग्रसर होने का यह भी एक कारण है। डारविन की "ऑरिजिन ऑव स्पीसीज़" और कौंत के दार्शनिक विचारों ने भी साहित्य पर यथार्थवादी प्रभाव डाला।

यथार्थवाद के अभ्युदय के साथ एक और उग्र आन्दोलन "प्रकृतिवाद" के नाम से चल पड़ा। साहित्य में वैज्ञानिक परीक्षा के उपायों का अवलम्बन

प्रकृतिवादी दल का ध्येय था। वे केवल उग्र यथार्थवादी थे यह कहना गलत होगा। सत्य यह है कि वास्तविकता के कुछ पहलुओं से वे अधिक आकर्षित हुए। चरित्रों का चित्र वे फोटो की तरह सही उतारने का प्रयत्न करते थे, परन्तु उनका दृष्टिकोण यह था कि शरीर और उसकी माँगें ही हमारे साधारण व्यवहार में निर्णायक भाग लेती हैं। फिर भी यथार्थवादी मनोवृत्ति की व्याख्या बहुत सरलता के साथ नहीं की जा सकती। यद्यपि रोमान्टिक प्रवृत्ति के यह विपरीत ही जान पड़ती है, परन्तु दोनों में मूलतः सादृश्य भी है। दोनों अपनी-अपनी दुनिया का जीता-जागता, चमकता चित्र उतारना चाहते थे, चाहे वह दुनिया यथार्थवादी हो चाहे काल्पनिक और आदर्शवादी हो। प्रत्येक क्षेत्र में दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा भी खींची नहीं जा सकती। बालजैक, स्टेनडाल या मेरिमे में दोनों प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। इसी प्रकार यथार्थवादी साहित्य में भी रोमांसिक अनुभूति का एक पुट वर्तमान है।

शार्ल् बोदल्येर (१८२१–६७) की कविताएँ यथार्थवादी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत हैं, परन्तु स्वयं उनका रोमांसिक वाद से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में वे किसी भी "वाद" से परे हैं। उनकी कविताओं में प्रतीकवाद की स्पष्ट सूचना है और प्रतीकवाद के परवर्ती विकास की ओर भी वे आगे बढ़ते हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ एक ही पुस्तक 'फ्लेर दी माल' (बुराई का फूल) में हैं। इन कविताओं की यथार्थवादिता कड़वी किस्म की है। इनमें कदर्यता और आतंक के प्रतिबिम्ब हैं, पाप और जुर्म के चित्र घोर सचाई के साथ खींचे गये हैं। उनका उद्देश्य जटिल है, जो है, उसे वैसे ही दिखाने को वे कृतसंकल्प हैं। स्वभावतः वे जीवन के उन पहलुओं पर झुकते हैं, जिनकी परम्परागत साहित्य उपेक्षा करता है। उनकी पुस्तक के नाम में ही यह झुकाव स्पष्ट हो जाता है। सभ्यता के सुदर्शन परदे के पीछे की जघन्यताओं को वे सामने ला देते हैं। लेकिन गहराई में जाने पर उनके शैतान का यह मुखड़ा खुल जाता है और एक अद्‌भुत ईमानदार मानस, युग-युग से चले आ रहे भौतिकता और आध्यात्मिकता के विरोध से

संघर्षरत दिखाई पड़ता है। बोदल्येर का धर्मविश्वास प्रगाढ़ था, शायद भगवान् और शैतान में उनका समान विश्वास था, परन्तु स्वयं अपनी मानवीय प्रकृति से वे विच्छिन्न होना नहीं चाहते। उनके दृष्टिकोण के अनुसार रक्तमांस-युक्त शरीर का प्रत्याख्यान करना और सन्त बन जाना विश्वासघातकता है। उन्हें तो मानवीय परिस्थितियों में ही रहना है चाहे वे जितनी वेदनादायक हों। उनकी कविताएँ सार्वजनिक रुचि को असहनीय प्रतीत हुई और उन पर मुकदमा चलाया गया।

उन्होंने फ्रेंच काव्य को कुछ हृदयग्राही अतिशय मनोरम कविताएँ दी हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ छोटी हैं, बहुतेरी चतुर्दशपदी हैं। उनकी मात्राएँ आलेकजान्ड्रीन या उससे छोटी मात्राओं तक सीमित हैं। कविता का प्रत्येक शब्द निर्भूल चुना गया है और वाक्यों का संगठन सुन्दर है। छन्द और शब्दों की ध्वनि में ऐसा मेल है कि उसका गीतात्मक सौन्दर्य मन को मोह लेता है। लेकिन इनके आगे उनकी निजी विशेष देन है; भिन्न जातीय वस्तुओं, संवेदनाओं और धारणाओं में तुलनात्मक संबंध का बोध। "कॉरेस्पॉन्दांस" की पंक्तियों में इसका प्रकाश हुआ है। एक प्रकार की प्रतिमाओं से वे दूसरे प्रकार की प्रतिमाओं का उद्भावन करते हैं। अनोखी, अनभ्यस्त प्रतिमाओं, शब्दांश और छन्दों की रहस्यपूर्ण भाषा के गहन अर्थ को पूर्णतः व्यक्त करना असम्भव नहीं तो सुकठिन है। इन पदों की सम्मोहनी शक्ति कल्पना, इन्द्रियबोध और बुद्धि से जिस भाषा में बातें करती है वह किसी अन्य प्रकार की कविता की भाषा से अधिक समृद्ध है।

"कॉरेस्पॉन्दांस" की निम्न लिखित पंक्तियों का एक सहज आकर्षण है और इसका मुख्य कारण उपमा की विचित्रता है।

> ईल ए दे पारफीम फ्रे कॉम् दे शेर दांफ़ां,
> दू कॉम् ले ओतबोआ, व्हेर कॉम् ले प्रेअरी,
> ए दोत्र्, कॉरॉम्पी, रिश, ए त्रिओम्फांत,
>
> ... ...

(कुछ सुगन्धें बच्चों के गाल की तरह ताजी हैं, कुछ रसभरे हरे मैदान की तरह मीठी हैं और अन्य प्रकार की सुगन्ध विजयी, धनी और कलुषित हैं।)

बोदल्येर अमेरिकन कवि एड्गर ऐलेन पो से अतिशय प्रभावित थे। पो की रहस्यात्मक और कल्पनात्मक कहानियों का उन्होंने अनुवाद भी किया। पो ने एक स्थान पर बेकन को उद्धृत कर कहा है—"कोई परम सुन्दर ऐसा नहीं है जिसमें वैचित्र्य का एक पुट न हो।" बोदल्येर में भी यह प्रतिध्वनित हो उठती है—"एत्रांजते, कॉन्दिमा ऐंदिस् पांसाब्ल द तोत् बोते"। (वैचित्र्य हर सौन्दर्य का एक अनिवार्य उपादान है।) बोदल्येर की गद्य-रचनाएँ (ले पति पोएम आं प्रोज, "कृत्रिम स्वर्ग" जो अंशतः डे क्विन्जी के "ओपियम ईटर" का अनुवाद है) भी भविष्य के इंगितों से परिपूर्ण हैं। जीवन का तुरीयानन्द और जीवन की भयावहता के बीच संघर्ष का बोध पो और बोदल्येर दोनों में विद्यमान है। बोदल्येर के अनुसार काव्य आत्मा की एक उत्तेजना है जो मनुष्य को ऊँचा उठाती है, परन्तु यह न संवेगों पर निर्भर है जो हृदय की मादकता है और न सत्य पर, जो बुद्धि की तुष्टि मात्र है।

बोदल्येर के ध्वनिपूर्ण पदों के सन्धिसमास-युक्त शब्दों में विशालता की प्रतिध्वनि मिलती है, जैसे कि सामुद्रिक कौड़ी में समुद्र की मर्मर ध्वनि आबद्ध रहती है। उनकी सुन्दर कविता "ल ग्रूफ़" में उनके शब्द हैं—"मुझे सभी खिड़कियों से असीम के अलावा और कोई चीज दिखाई नहीं देती।"

बोदल्येर काव्य के सुदक्ष ज्ञाता थे। उनसे निम्न श्रेणी के कवि होते हुए भी थियोफील गोतिएर (१८११-७२) उनकी प्रशंसा के पात्र इसलिए बन सके कि छन्द और भाषा के त्रुटिहीन प्रयोग का कौशल उन्होंने प्राप्त कर लिया था। पहले गोतिएर की आकांक्षा चित्रशिल्पी बनने की थी। उनकी कविताओं में भी चित्रकार की तूलिका की छाप है। इन कविताओं की पंक्तियाँ मानो रंगभरी बुरुश की लकीरें हैं या किसी प्रस्तर-मूर्ति पर छेनी की चोटें हैं। काव्य या चित्रकला दोनों में उन्होंने ग्रीक आदर्श का अनुसरण किया। व्यावहारिक रूप से उन्होंने अपने काव्य में रोमान्टिक और क्लासिकल सिद्धान्तों का समन्वय किया है। वे अपने को 'ओरियेन्टेल'

के लेखक ह्यूगो का अनुयायी मानते थे और उनकी कविताओं में भी 'ओरि-येन्टेल' की भाँति स्थानीय रंग की चमक है। उनकी मुख्य कृति 'एनामेल और कैमिओ' ने (दुरंगा पत्थर जिसमें खुदाई एक रंग पर होती है और पृष्ठभूमि दूसरे रंग की होती है) ब्रिटिश कवि स्विन्‌बर्न को मुग्ध किया। इनमें कुछ कविताएँ फ्रेंच काव्य-जगत् की मणि-मुक्ताएँ हैं। "सफेद रंग और कला के संगीत" में हर चीज सफेद है। गोरी नारी सफेद कपड़े पहने हुए है। उसके स्तन सफेद कैमिलिया के फूल से भी अधिक सफ़ेद हैं। सफेदी की तुलना के रूप में चन्द्रकिरणों से उद्‌भासित हिमखण्ड, काँच के वातायन पर पाले से खींचे हुए फूल, आल्प्स पर्वत पर तुषार आदि का वर्णन किया गया है। अपने उपन्यास 'मादमोआसेल द मोपैं' की भूमिका में उन्होंने "कला के लिए कला" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से पारनेसियन कवि-गोष्ठी के वे एक अग्रज स्वरूप हैं।

गोतिएर के सिद्धान्त, "कला के लिए कला" के मुख्य अनुयायी थे थियोडोर द बॉनविए। छन्दों और शब्दों की कारीगरी उनमें प्रचुर है। बैलॉड और रोंदो जैसे पुराने छन्दरूपों को भी उन्होंने पुनः प्रचलित किया। १९वीं शती के उत्तरार्ध में भी इन उदाहरणों का प्रभाव बना रहा। उन्होंने इस दावे पर भी पुनः बल दिया कि यावतीय सौन्दर्य का स्थायी उद्‌गम ग्रीक संस्कृति ही है।

कला की पूजा और ग्रीस-पूजा, दोनों ही लुई मेनार के व्यक्तित्व और कृतियों के अविच्छेद्य उपादान हैं। उनकी कविताएँ १८५५ ई० में प्रकाशित हुईं। उनके गद्य-काव्य 'ले रीवरी द पेईआं मिस्तीक' में गम्भीर और शक्तिशाली चतुर्दशपदी कविताएँ बिखरी हुई हैं। विभिन्न धर्मों के तुल-नात्मक अध्ययन और व्यावहारिक विज्ञान के अध्ययन में भी वे अपने मौलिक विचारों के चिह्न छोड़ गये हैं। पारनेसियन कवि-समह में लुई मेनार भी एक थे। १८६६, १८७१ और १८७६ में "पारनास कॉन्तेम्पौरें" नाम से नयी कविताओं के संग्रह प्रकाशित किये गये थे और इसी से इस कविदल का यह नाम पड़ा।

लकॉंत द लील (१८१८-९४) ने पारनेसियन दल के सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध करने में मुख्य भाग लिया और वे ही इस दल के नेता बन गये। इन सिद्धान्तों में कला की प्रधानता ने मुख्य स्थान अधिकृत किया। पारनेसियन दल के सभी कवि रोमान्टिक कवियों के भावोच्छ्वास पर व्यंग्य करते थे और उनकी शैली की शिथिलता की हँसी उड़ाते थे। उन्होंने रूप और अभिव्यक्ति की स्पष्टता पर बल दिया और व्यक्तिगत भाव नहीं बल्कि विचारों को ही अभिव्यक्ति का विषय बनाया। इस प्रकार विज्ञान, दर्शन और चिन्तन को पुनः एक ऊँचा स्थान मिला और बौद्धिक आदर्श की पुनः प्रतिष्ठा हुई। काव्य की क्लासिकोत्तर धारणा से पारनेसियन कवियों की धारणा बहुत भिन्न न थी, परन्तु इसके दो महत्त्वपूर्ण व्यतिरेक हैं। एक है कला पर अत्यधिक बल और दूसरा है नीति-मूलक साहित्य पर प्रतिबन्ध।

ग्रीक साहित्य के प्रति लकॉंत द लील का स्वाभाविक आकर्षण था और अपने मित्र लुई मेनार के प्रभाव से ग्रीक साहित्य के प्रति उनका प्रेम और भी बढ़ गया। लेकिन उनकी कविताओं के प्रथम संग्रह में ही ग्रीक आशावादिता पर तुषारपात होता दिखाई देता है। उनमें मानवीय आशाओं की व्यर्थता की छाया पड़ी है। अनेक धर्मों ने आदि काल से मानवीय स्वप्नों को बल दिया है, समृद्ध किया है, साथ ही विकृत भी किया है। इस विचार को उन्होंने अपने रूपक गीतों में नाटकीय रूप दिया है। मध्य युग उनके लिए अभिशाप स्वरूप था और धार्मिक संगठनों की उन्होंने निन्दा की। इस निन्दावाद में प्रतिभा की दीप्ति है, परन्तु इसका स्वर कर्कश है। जब वे संसार की अविनश्वरता का राग गाते हैं और जब उनका व्यथित चित्त पुकार कर कहता है कि मनुष्य स्थायित्व का अनुसन्धान करता है, परन्तु उसे कोई सहारा नहीं मिलता, तो उनका सुर भी कोमल और हृदयग्राही बन जाता है। अपने तीन मुख्य काव्यग्रन्थों (पोएम् आन्तीक्, पोएम् बारवेर और पोएम् त्राजीक) में उन्होंने धर्मों के विकास के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। प्रत्येक धर्म अपनी विशिष्ट सभ्यता के साथ उठता है, फिर उसकी अवनति होती है। ईसाई धर्म सबसे बाद को आया, अब उसकी

भी अवनति की पारी आयी है। न व्यक्ति का और न मानवजाति का ही कोई भविष्य है। उसका विनाश अनिवार्य है।

रंगीन चित्रमय पूरवी देशों से उन्हें बहुत प्यार है। मरूद्यान के एक मात्र खजूर के पेड़ से बेदुईन अपने घोड़े को बाँध रहा है, बरामदे में लाल गद्दे पर बैठी ईरान-सुन्दरी झरनों का संगीत सुन रही है और हुक्के से उठता हुआ नीला धुआँ देख रही है, गूलर के पेड़ के नीचे ब्राह्मण आसन लगाये बैठा है, बर्फीले उत्तर से जंगली दक्षिण तक विभिन्न प्रकार के पशु विचरण करते फिरते हैं। जंगली जानवरों के अध्ययन के लिए वे विख्यात हैं। उनका प्रकृति-वर्णन भी अतिशय मधुर और मनोहर है। 'लेक्लेर द लीन' में समद्रतट पर चाँद धीरे-धीरे आकाश पर चढ़ता दिखाई देता है।

पारनेसियन दल के प्रख्यात सदस्य सली प्रूधों, मानव-हृदय और मानवीय-आत्मा की खोजबीन करनेवाले एक उदास, भावुक, किंचित् निराशावादी दार्शनिक हैं।

अड़तीसवाँ अध्याय

गुस्टाव्ह फ्लोबेर

पूर्णतया यथार्थवादी फ्रेंच कहानी का सबसे पहला और श्रेष्ठ उदाहरण गुस्टाव्ह फ्लोबेर का उपन्यास "मादाम बोव्हारी" है। बालज़ैक के अर्ध-भावुकता पूर्ण यथार्थवाद की तुलना में इस उपन्यास को पूर्णतः यथार्थवादी कहना पड़ता है। इस उपन्यास के लिखने में फ्लोबेर (१८२१-८०) को छः वर्ष लगे (१८५०-५६)। 'मादाम बोव्हारी' मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रेंच प्रादेशिक जीवन का एक वास्तविक चित्र है। फ्लोबेर स्वयं इसी जीवन की उपज थे और इसकी उन्हें पूरी जानकारी भी थी। मध्यम वर्ग से उत्पन्न अधिकांश कलाकारों की भाँति फ्लोबेर को भी अपने वर्ग के प्रति अत्यन्त विद्वेष था और 'मादाम बोव्हारी' में वे यही प्रतिपादित करना चाहते हैं कि बुर्जुआ (मध्यम वर्ग) सदा ही हास्यास्पद होता है और सबसे अधिक हास्यास्पद तब होता है जब किसी विशेष गुण से सम्पन्न न होते हुए भी वह अपनी दुनिया से भाग निकलना चाहता है। एक प्रादेशिक डाक्टर की पत्नी एमा बोव्हारी अपने एकरस जीवन से छुटकारा पाने के लिए अवैध प्रेम में मुक्ति का मार्ग खोजती है, लेकिन उसमें वह शक्ति नहीं है कि वास्तव में उसे मुक्ति मिल सके। विभिन्न प्रकार के उपायों के प्रयत्न के बाद अन्त में वह जिन परिस्थितियों में आत्महत्या कर लेती है उनका वर्णन इस उपन्यास में विक्षोभकारी ब्यौरे के साथ किया गया है। 'मादाम बोव्हारी' लिखने के कारण फ्लोबेर पर मुकदमा चलाया गया। आरोप यह लगाया गया कि यह एक नीति-गर्हित उपन्यास था। परन्तु सत्य यह है कि यह उपन्यास निर्मम रूप से नैतिक है क्योंकि सारा बल इसी पर दिया गया

है कि भाग्य ने जिसे जिस श्रेणी में रखा है उसे उसी श्रेणी का जीवन बिताना चाहिए। जो वास्तविकता से नाटकीय रोमांस की दुनिया में भाग निकलना चाहता है वह मूर्ख है।

मोलिएर और बालज़ैक की तरह फ्लोबेर भी फ्रेंच अकादमी के सदस्य नहीं थे। यद्यपि साहित्यिक इतिहास में 'मादाम बोव्हारी' के लेखक का नाम यथार्थवाद के स्रष्टा के रूप में ही अमर रहेगा, परन्तु फ्लोबेर की मनोवृत्ति रोमान्टिक ही थी। रंग और रोशनी से उन्हें प्रेम था, रहस्यवाद का उन्हें मोह था, और विक्टर ह्यूगो की तरह ही वाग्मिता उन्हें प्यारी थी। इसका निदर्शन इसमें मिलता है कि प्रति दिन के फ्रांस का जीवन, 'मादाम बोव्हारी' लिख चुकने के बाद उन्होंने 'सालाम्बो' लिखा जिसमें प्राचीन कार्थेज के जीवन को उन्होंने पुनर्जीवित किया। जब यह उपन्यास वे लिखने बैठे तो एक मित्र को उन्होंने लिखा "मैं कुत्सित वस्तुओं और जघन्य वातावरणों से थक गया हूँ। मैं कुछ वर्षों के लिए सम्भवतः एक सुन्दर विषय में, और जिस आधुनिक दुनिया ने मुझे रुग्ण कर दिया है उससे दूर, अपना जीवन बिताने जा रहा हूँ।" यह भी एक रोमांसवादी की आवाज है, जो वास्तविकता से भागना चाहता है। 'सालाम्बो' मोटे तौर पर एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें और 'ल तान्ताशिओ द सें तातोआन' में फ्लोबेर की प्रतिभा का एक और पहलू परिस्फुट होता है।

'एडुकाशिओं' सेन्टीमेन्टाल फ्लोबेर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। यह उनके सिद्धान्तों का भी पर्याप्त उदाहरण स्वरूप है। उनका सिद्धान्त अ-वैयक्तिकता का सिद्धान्त है। उनका यह अभिमत था कि कलाकार को कथायोजना इस प्रकार बनानी चाहिए कि बाद की पीढ़ियों को यह विश्वास हो जाय कि वह कलाकार कभी जीवित नहीं था। पुलिस थाने की रिपोर्ट में जिस तरह घटनाएँ हूबहू दर्ज की जाती हैं, उसी तरह विच्छिन्न टुकड़ों में यह कहानी लिखी गयी है। लेकिन कुल मिलाकर एक पक्षपात-हीन बयान की प्रतीति हो आती है। सूखी हड्डियों में जान आ जाती है, अस्थिर-मना नायक की बहुतेरी निराशाओं में प्रहसन की खुराक मिलती है, लेकिन

साथ ही उसके संघर्षों की विषादपूर्ण कहानी के पीछे हार्दिक सहानुभूति की भावना भी नज़र आती है।

फ्लोबेर की शैली कठिन साधना का फल है। सही शब्द और उपयुक्त वाक्य चुनने में उन्हें एक यातना का अनुभव होता था। जार्ज संद् को एक पत्र में वे लिखते हैं—"तुम यह धारणा नहीं कर सकतीं कि एक शब्द के पीछे दिन भर सिर पर हाथ रखकर दिमागपच्ची करना क्या मुसीबत है।" अभिव्यक्ति के रूप में उन्हें इतनी दिलचस्पी थी कि अन्त को उनकी सारी चिन्ता यह थी कि कैसे लिखा जाय। क्या लिखा जाय, इसके सम्बन्ध में उन्हें बहुत परेशानी न थी। एक बार उन्होंने लिखा—"मैं एक ऐसी पुस्तक लिखना चाहता हूँ जिसका कोई विषय ही नहीं होगा; जैसे यह दुनिया बिना किसी सहारे के शून्य में टिकी हुई है उसी प्रकार वह पुस्तक केवल आन्तरिक शैली के सहारे टिकी होगी।"

उन्तालीसवाँ अध्याय

प्रकृतिवादी औपन्यासिक

फ्रेंच औपन्यासिकों के प्रकृतिवादी दल में गांकूर भ्रातृद्वय, एमिल ज़ोला, गी द मोपासां और कुछ हद तक आलफोंस डोडे और जोरी कार्ल हुइसमान् शामिल हैं। इसे दल का नाम मोटे रूप से ही दिया जा सकता है, क्योंकि इन लेखकों में महत्त्वपूर्ण प्रभेद भी है। प्रकृतिवाद का आधारभूत दार्शनिक दृष्टिकोण यह है कि मानवमानस में कोई ऐसी चीज नहीं है जो इन्द्रियों की अनुभूति से उद्भूत न हो। परिणामस्वरूप अति भौतिक का तो कोई स्थान इसमें है ही नहीं, बल्कि अन्तर्दर्शन और अन्तर्विश्लेषण के औजार के रूप में मनोविज्ञान का भी इसमें कोई स्थान नहीं है। १८४० ई० के बाद का युग विज्ञान के विजय-अभियान का युग था और फ्रांस में ऑगस्त कोंत के दर्शन का युग था; और प्रकृतिवाद इन दोनों की उपज है। यदि उस समय कोई वैज्ञानिक नहीं था तो वह कुछ नहीं था। गीतात्मक कविता या नाटक तो वैज्ञानिक नहीं हो सकते थे, लेकिन उपन्यास का वैज्ञानिक होना सम्भव था। गांकूर और ज़ोला ने यही कहा। औपन्यासिक, मनुष्यों का वैज्ञानिक निरीक्षक बन गया। इन्द्रियानुभवों को ज्यों के त्यों प्रस्तुत करना कला बन गयी। इन्द्रियों की अनुभूतियों के चित्र शब्दों में उतारने की शैली प्रचलित हो गयी।

एडमण्ड और जूल गांकूर, दोनों भाई प्रकृतिवादी औपन्यासिकों के अग्रणी थे, परन्तु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में भी उन्हें रुचि और पारदर्शिता थी। एडमण्ड द गांकूर (१८२२-१८९६) और उनके छोटे भाई जूल (१८३०-७०) अतिशय परिश्रमी थे, विभिन्न कलाओं में उन्हें दिलचस्पी थी। फ्रांस को उन्होंने जापानी कला से परिचित कराया। एडमण्ड की

अन्तिम पुस्तक प्रसिद्ध जापानी कलाकार होकुसाई पर थी। अठारहवीं शती के फ्रेंच समाज पर लिखे गये अपने निबन्धों ('क्रान्ति कालीन फ्रेंच समाज का इतिहास', 'अठारहवीं शती की नारी', 'अठारहवीं शती में कला') में उन्होंने पत्रों, चित्रों, नक्काशी और सजावट, असबाब आदि जीवन की भौतिक पृष्ठभूमि संबंधी सामग्रियों का, जिन्हें आज "मानवीय दस्तावेज" कहा जाता है, उपयोग किया। उन्होंने अपने नाटकों (हारिएत् मारेशाल आदि) को—और अपने अधिकांश उपन्यासों का भी उन्होंने नाटकीकरण किया—रंगमंच की मर्यादा को क्षुण्ण न करते हुए, प्रति दिन के साधारण कथनोपकथन से सजीव किया। प्रायः प्रथम से ही किसी आधुनिक समस्या को उन्होंने प्रत्येक उपन्यास का विषय बनाया और उसमें निरीक्षण या दस्तावेजों से प्राप्त स्पष्ट जानकारी को समाविष्ट किया। प्रकृतिवादी अन्य लेखकों की भाँति बाह्य प्रकृति पर ही अपना पूरा ध्यान निविष्ट न कर, उन्होंने मानस की गुप्त कार्य-प्रणालियों को भी ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया। 'रने मोपेरां' तत्कालीन युवक का एक समझदारीपूर्ण चित्र है। 'मादाम गर्वेसे' धार्मिक खब्त का अध्ययन है। स्टूडिओ-जीवन संबंधी उपन्यास 'मानेत् सालोमों' में यह प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार कलाकार और उसकी पत्नी के बीच धीरे-धीरे गहरी खाईं पड़ जाती है। एक साधारण व्यक्ति पतित होकर किस प्रकार मुसीबतों में डूब जाता है, इसका अतिशय प्रभावशाली वर्णन उन्होंने अपने निर्मम नाटक 'जर्मिनी लासेरत्येए' में बड़ी सहानुभूति और संयम के साथ किया है। अधिकांश नाटक, उपन्यास, निबन्ध और इतिहास दोनों भाइयों ने मिलकर लिखे। एडमण्ड ने अकेले बहुत कुछ लिखा। अपने उपन्यास 'ज़ेमगानो भ्रातृद्वय' में उन्होंने भ्रातृ प्रेम के गहरे स्तरों में प्रवेश करने का प्रयत्न किया है। 'एलिसा कन्या' वेश्या और तनहाई कैद संबंधी उपन्यास है। चित्रकारी के प्रशिक्षण के कारण उन्हें सूक्ष्मदर्शिता का गुण भी प्राप्त हुआ था और परिणामस्वरूप उनकी भाषा रँगीली तथा अनुभवात्मक है। परन्तु 'जूर्नाल' (पत्रिका) के कारण उन्हें साहित्यिक इतिहास में विशेष स्थान प्राप्त है। सन्

१८५१ और १८९५ ई० के बीच इस पत्रिका में ह्यूगो, डूमा, बोदल्येर, ज़ोला, डोडे, फ्रांस, पिएरलोटी, क्लेमांसो आदि दर्जनों साहित्यिकों का निगूढ़ परिचय मिलता है।

मनोवैज्ञानिक टेन ने कहीं कहा था कि तूतिया या चीनी की तरह ही पाप, पुण्य रासायनिक उपज हैं। शरीर-वैज्ञानिक क्लोड बर्नार का कहना था कि परख और प्रयोग के द्वारा ही औषध का निर्णय किया जाना चाहिए। चिकित्सक लूका ने मानव-जीवन में वंशानुक्रम के प्रभाव पर बल दिया। ज़ोला का औपन्यासिक सिद्धान्त इन तीनों सिद्धान्तों का योग है। एमिल ज़ोला (१८४०-९२) में प्रकृतिवादी आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँचता है। उनके पिता आधे इटालियन और आधे यूनानी थे। बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी और वर्षों तक उन्हें कष्ट और मुसीबत का जीवन विताना पड़ा। 'रूगां-माकार' उपन्यासमाला—कुल बीस उपन्यास—उनके ३० वर्षों के परिश्रम के फल हैं। उनका विचार एक साधारण परिवार के सदस्यों के जीवन के सामान्यतम ब्यौरों का सटीक वर्णन करना था। इस माला के प्रत्येक उपन्यास का संबंध प्रति दिन के जीवन के किसी एक पहलू से है—"वाँत्र् द पारी" - बाजार; "लासोमोआर" - शराबखाना; "बीत् ह्यमेन" - रेलवे; "जर्मिनाल" - खान; "लार्जे-" - वित्तीय दुनिया; "ला देबाक्ल" १८७० (जर्मन आक्रमण, लुई नेपोलियन का आत्म-समर्पण, फ्रेंच कम्यून) की भयावह घटनाएँ; "लूर्द" अलौकिकता के प्रति जनता का विश्वास और आकर्षण, इत्यादि। अपनी उच्चाभिलाषा का सारांश उन्होंने स्वयं दिया है — "मैं एक परिवार को लेना चाहता हूँ और एक-एक कर इसके सदस्यों का अध्ययन करना चाहता हूँ—कहाँ से वे आये, कहाँ जा रहे हैं, एक दूसरे पर परस्पर प्रतिक्रिया क्या होती है। मानव-समाज का एक पृथक्कृत टुकड़ा, कैसे लोग कार्य करते हैं, किस प्रकार वे बरताव करते हैं। दूसरी ओर अपने चरित्रों को मैं एक विशेष ऐतिहासिक काल में रखूँगा जिससे मुझे वातावरण और अवस्था मिलेगी, अर्थात् इतिहास का एक टुकड़ा।"

उनका उद्देश्य अपने समय का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करना था। इसमें वे असफल रहे। ज़ोला के समसामयिक समालोचक जां कारेर के अनुसार उन्होंने अपने समय के दुर्गुणों और दुर्बलताओं का ही चित्रण किया है—"असन्तुलित व्यक्ति, बदमाश, चोर, वेश्या, शराबी, मूर्ख, स्वप्न-द्रष्टा, अस्वस्थ किसान, पतित श्रमिक, अपवित्र बुर्जुआ, भीरु सिपाही, लोभी मन्त्री, दुर्बल कलाकार, ढोंगी पादरी—उनके आईने में मानवीय प्रकृति के ये रूप ही प्रतिविम्बित होते हैं। कोई बड़ा आदमी नहीं, कोई महान् आत्मा नहीं, कोई सहृदय दृढ़चेता व्यक्ति नहीं, कोई नेता नहीं—यह हमारे काल का मापदण्ड रखा गया है। कोई खुशी नहीं, कोई विजयी प्रयास नहीं, एक भी स्वस्थ विकास नहीं—यह हमारे जीवन का चित्र है। हमें दुनिया दिखाने का वचन दिया जाता है, परन्तु मिलता है हमें अस्पताल। यह या तो अविश्वास्य मूढ़ता है या अविश्वास्य विकार।"

ज़ोला ने "प्रायोगिक उपन्यास" के विख्यात सिद्धान्त को सूत्रबद्ध किया। इस सिद्धान्त का अक्षरशः अर्थ यह है कि टेस्टट्यूब में डाले गये यौगिक पदार्थों की भाँति ही औपन्यासिक चरित्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। उन्हें आशा थी कि इस आधार पर वे ऐसे स्पष्ट परिणामों पर उपनीत होंगे जिनका उपयोग सामाजिक कार्यकर्ता या विधान-निर्माता मानवीय दुर्गुणों को मिटाने के लिए कर सकेंगे। उनकी विकट और साहसिक यथार्थवादिता के बावजूद उनके उपन्यासों का एक मानवीय सन्देश भी है। उपन्यास रचना के लिए सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि की अपेक्षा कला की आवश्यकता कहीं अधिक है और ज़ोला की कला में यही विशेष गुण है। सबल वर्णन-शक्ति, वाग्मिता, और विषादमिश्रित करुणा उनकी कला के श्रेष्ठ अंग हैं।

औपन्यासिक ज़ोला की प्रसिद्धि का एक राजनीतिक कारण भी है। १८९७ ई० में फ्रेंच सामरिक विभाग के षड्यन्त्र से एक निर्दोष यहूदी जेनरल ड्राइफुस को सजा मिली। "मैं आरोप लगाता हूँ" शीर्षक फ्रेंच प्रेसिडेन्ट को लिखे गये अपने सुविख्यात पत्र में उन्होंने इस मुकदमे का भण्डाफोड़ किया। जॉर्ज क्लेमांसो के अखबार "ओरोर" ने १३ जनवरी, १८९८ को

यह पत्र छापा। अब सेना के अपमान के अभियोग पर ज़ोला पर मुकदमा चला और उन्हें इंग्लैंड भाग जाना पड़ा। १८९९ की आम रिहाई के बाद जब वे लौटे तो जनता ने उनका शानदार अभिनन्दन किया। आनातोल फ्रांस ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—"ज़ोला मानव-विवेक के एक मूर्त-स्वरूप हैं।" १८९३ ई० के बाद ज़ोला का एक और पहलू प्रकाश में आता है। 'तीन नगर' (लूर्द, रोम, पेरिस) में उनका स्वरूप रोमान्टिक तीर्थ-यात्री का है। "चार फरिश्ते" (अपूर्ण) में उनका झुकाव टॉल्स्टॉय की भाँति ईसाई समाजवाद की ओर है।

गी द मोपासां (१८५०-९३) की छोटी कहानियाँ अनुपम हैं। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में उन्हें फ्लोबेर से काफी सहायता मिली। प्रारम्भ में ही 'ला बूल द सुइफ' की प्रसिद्धि ने उन्हें साहित्यिक जीवन में सुप्रतिष्ठित कर दिया। मेदा के अपने ग्राम्य भवन में ज़ोला ने जिन पाँच शिष्यों को एकत्रित किया था उनमें मोपासां भी एक थे। ज़ोला और उनके पाँच शिष्यों ने फ्रांस-प्रशा युद्ध के संबंध में एक-एक कहानी लिखी और इन छः कहानियों का संग्रह 'ले सोआरे द मेदा' के नाम से १८८० ई० में प्रकाशित किया गया। इसी संग्रह में मोपासां की कहानी 'ला बूल द सुइफ' भी है। छोटी कहानियों को साहित्यिक रूप देने के लिए जो विभिन्न प्रकार की योग्यताएँ आवश्यक हैं वे सभी मोपासां में मौजूद थीं, साथ ही अपने अथक परिश्रम से उन्होंने इस रूप को परिपूर्णता दी। फ्लोबेर की भाँति ही प्रत्येक शब्द उन्होंने सावधानी से चुना है और एक भी अनावश्यक शब्द का प्रयोग नहीं किया है। उनकी कहानी किफायत-सारी का नमूना है। वे सरल विषय चुनते हैं जिनका अर्थपूर्ण विकास संक्षिप्त वर्णन के द्वारा सम्भव है। अत्यावश्यक परिस्थितियों और अनोखे या कम से कम रँगीले चन्द चरित्रों की प्रमुख विशेषताओं पर वे बल देते हैं। पृष्ठभूमि की दो चार रेखाओं में किसी सामाजिक श्रेणी विशेष अथवा स्थिति या प्राकृतिक दृश्य का एक चित्र उपस्थित हो जाता है। स्वल्प शब्दों के बाहुल्यविहीन बयान पूर्णतः यथार्थवादी हैं। संवेगात्मक टिप्पणी या लेखक

की व्यक्तिगत अनुभूति का उनमें स्पर्श मात्र नहीं है। ये हैं मोपासां की कहानी-कला के मुख्य लक्षण। प्रकृतिवाद में ही छोटी कहानी के संबंध में उनके दृष्टिकोण की कुंजी है। सम्पूर्ण सत्य कहने को वे कृतसंकल्प हैं। जीवन के जिन महत्त्वपूर्ण पहलुओं के प्रकाश पर सामाजिकता और भाषा ने रोक लगा दी है, उन्हीं को वे अपना विषय चुनते हैं। वाक्यों की मर्यादा अक्षुण्ण है, लेकिन जीवन की वास्तविकता का चित्रण करते समय वे अश्लीलता से अपने को नहीं बचा पाते। मोपासां का निराशापूर्ण प्रकृतिवाद श्लेषपूर्ण हास्यरस से बहुत कुछ सहनीय हो जाता है। ज़ोला या गॉनकूर भ्रातृद्वय में इस गुण का विशेष अभाव है।

'पिएर ए जाँ' और 'बेल-आमी' जैसे उनके कुछ बड़े उपन्यास भी प्रसिद्ध हैं। उनकी छोटी कहानियों में 'बूल द सुइफ' के अतिरिक्त, 'ला मेजाॅ तलिएर', 'इस्तोआर दीन फिए द फेर्म', 'मिस् हारिए' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आलफॉन्ज़ दोदे (१८४०-९७) प्रकृतिवादी औपन्यासिकों से कुछ छिटक पड़े हैं। इस श्रेणी में उन्हें डालने का मुख्य कारण यह है कि सम-सामयिक वास्तविक व्यक्तियों को ही उन्होंने अपने कुछ उपन्यासों का नायक या पात्र बनाया। ड्यूक द मॉर्नी के वे कुछ दिनों सेक्रेटरी रह चुके थे। 'नेबॉब' में वे छिप नहीं पाते। 'नूमा रूमेस्तां' के नायक प्रसिद्ध राज-नयज्ञ गेम्बेटा हैं। 'लिम्मॉर्तेल' में उन्होंने फ्रेंच अकादमी के सदस्यों के विरुद्ध आक्रमण किया है। लेकिन उनमें सहज प्रत्यक्षीकरण का नारी-सुलभ गुण भी मौजूद है और उनकी लेखनी में कोमलता तथा परिहास का भी हलका स्पर्श है। अन्तिम गुण में ब्रिटिश औपन्यासिक डिकेन्स से उनका प्रचुर सादृश्य है। 'तारतारैं द तारास्कां' जिसमें उन्होंने डींग हाकने वाले दक्षिण-फ्रांस निवासियों का व्यंग्य चित्र खींचा है, इस सादृश्य का अच्छा उदाहरण है। आत्मकथा पर आधारित 'ल पति शोज़' में भी वे फ्रेंच डिकेंन्स के रूप में प्रतीत होते हैं। लेकिन प्रारम्भिक काल में लिखे गये, छोटी कहा-नियों के संग्रह 'लेत्र् द मो मूलैं' (अपने कारखाने की चिट्ठी) के कारण

ही उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त है। इस पुस्तक के संवेग और कौतुक के मिश्रण में दक्ष कारीगर का हाथ है। दोदे कवि और नाटककार भी थे।

जोरी कार्ल हुइस्मान १८४८ ई० में पेरिस में पैदा हुए थे। उनके पिता डच चित्रकारों के वंशज थे और उनकी माता बरगन्डी के एक मध्यवित्त परिवार की थी। अपने साहित्यिक जीवन के प्रायः प्रारम्भ में ही उन्होंने प्रकृतिवादी दल में योगदान किया। "ले सोआरे द मेदां' में उनकी भी एक कहानी है, 'साक् ओ दो' (१८८०)। इसमें उन्होंने अपने कटु सामरिक अनुभवों का अति यथार्थ, बिलकुल सही, किसी कदर एकरस वर्णन किया है। १८८४ ई० तक के उनके उपन्यासों में ज़ोला की परिपूर्ण छाप है। ज़ोला की तरह ही वे सूक्ष्मतम ब्यौरों को सामने रखते हैं और बिना किसी मिलावट के निर्मम सत्य का आश्रय लेते हैं। इस काल के उनके उपन्यासों में हैं—'मार्थे एक लड़की का इतिहास', जिसका संबंध वेश्याओं से है, 'व्हातार बहनें' जिसका संबंध जिल्द बाँधने वाली औरतों के निम्नस्तरीय जीवन से है और 'आं मेनाज' (वैचित्र्यहीन चरित्रों की प्रेम-लीला, जिसका दम सामाजिक ढांचे के दबाव से घुट जाता है) इत्यादि। १८८४ ई० में उनका उपन्यास 'आ रबूर' प्रकाशित हुआ। यह उनके जीवन में अद्भुत परिवर्तन की सूचना देता है। यह पुस्तक भी कुछ अनोखी है। नायक, दे एसींत अपने समाज से ऊबकर सुन्दर वस्तुओं और म्रियमाण साहित्य तथा कला से उद्भूत संवेदनाओं के बीच अकेले रहने का प्रयत्न करता है। लेकिन इस कृत्रिम स्वर्ग में उसे अपनी समस्याओं का समाधान नहीं मिलता। डाक्टर उसे पुनः दुनियाबी जीवन में प्रवेश करने का परामर्श देते हैं। फिर उसे यह झलक मिलती है कि धर्म में उसे छुटकारा मिल सकता है। लेखक स्वयं भी बचपन के कैथलिक धर्म में प्रत्यावर्तन करता है और इस प्रत्यावर्तन की मंजिलों की कहानी उन्होंने 'आँरूट' (रास्ते में) और 'ला काथीड्राल' में दी है। इन पुस्तकों ने प्रारम्भिक ईसाई वास्तुकला, चित्रकारी और संगीत में रुचि रखने वाली शिक्षित श्रेणी की दिलचस्पी को प्रोत्साहित किया। 'लार् माडर्न' में कला के एक दक्ष समालोचक के

रूप में उनका परिचय मिलता है। इसमें उन्होंने रनीआर, व्हिस्लर आदि चित्रकार तथा प्रभावात्मक (इम्प्रशनिस्ट) कला की प्रशंसा की है। 'लार माडर्न' का प्रभावात्मक कला से जो संबंध है वही संबंध 'आ रबूर' (आत्म-प्रकृति के विरुद्ध) का मालार्मे आदि प्रतीकवादी कवियों से है। स्वयं उन्हें भी आदर्शवादी और प्रतीकवादी कहा जा सकता है। रहस्यवाद से उन्होंने मूल्यवान् साहित्यिक सामग्री का आहरण किया है।

जूल व्हाले और जूल बार्बे दोरेविली, प्रकृतिवादी दल के बाहर, परन्तु एक दूसरे के विपरीत थे। व्हाले थे विद्रोह के अवतार, और दोरेविली राजशासन, कैथलिक संघ, क्लासिक्स और उन्नीसवीं सदी के गीतात्मक कवियों के प्रबल समर्थक। दोरेविली ने 'लां सारसले' और 'शव्हालिएर दे तूश' में क्रान्तिकारी फ्रांस में धार्मिक और शाही लक्ष्य की बुझती राख को प्रज्ज्वलित करने की चेष्टा की है; व्हाले ने 'लैंसर्जे' में पेरिस कम्यून की वीरता और उन्मत्तता को नाटकीय ढंग से लिपिवद्ध किया है। व्हाले ने 'लाफां' और 'ल बाशेलिएर' में पारिवारिक अत्याचार और कष्टदायक शिक्षण-प्रणाली की निंदा की है। पेरिस कम्यून के क्रान्तिकारी आन्दोलन में उन्होंने स्वयं भाग लिया था और इन तीनों उपन्यासों का संबंध आपबीती घटनाओं तथा अनुभवों से है। तीनों को उन्होंने 'जाके वैंत्रा' के नाम से, जो इन उपन्यासों में वर्णित एक चरित्र है, एकत्र प्रकाशित किया। प्रकृतिवाद के इस युग में यूजीन फ्रोमांतें भी सम्पूर्ण भिन्न राग का आलाप करते हैं। उनकी कहानी 'डोमीनीक' आज भी एक श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। यह प्रायः पूर्णतः क्लासिक नमूने पर लिखी गयी है।

चालीसवाँ अध्याय

नाटक

नाटक की सफलता बहुत कुछ सामूहिक स्वागत और औसत व्यक्ति की रुचि पर निर्भर है। दोनों ही उपादान स्थितिशीलता के पक्ष में अपना प्रभाव डालते हैं, परिवर्तन के पक्ष में नहीं। नये मूल्यों को समाज द्वारा समादृत होने में समय लगता है। इसलिए उपन्यास के साथ ही साथ नाट्य-कला में भी यथार्थवाद का प्रवेश तत्काल सम्भव नहीं हो सका। वास्तविक अर्थ में यथार्थवादी नाटक का अभ्युदय १९वीं शती के प्रायः अन्त में "थियेट्र लिब्र" (स्वतंत्र रंगमंच) की स्थापना के बाद ही हुआ। इस बीच द्वितीय साम्राज्य (तृतीय नेपोलिअन के साम्राज्य) की जनता ने न केवल उन नाटक-कारों को प्रोत्साहित किया जो समझौते के मार्ग पर चलने को तैयार थे, बल्कि उन लोगों को भी जिनका दृष्टिकोण विशुद्ध संरक्षणशील (पुरातन-वादी) था।

यूजीन लाविश (१८१५-८८) ने उसी पृष्ठभूमि में नाटकों की रचना की जिससे परम्परागत कौमेडी ने अपनी कथावस्तु का संग्रह किया था। उनके प्रायः सौ नाटकों में शायद एक ही मौलिक उक्ति है कि जिनका उपकार हम करते हैं, हम उन्हें प्यार करते हैं और जो हमारा उपकार करते हैं उन्हें हम घृणा करते हैं। फिर भी 'आं शापो द पेइए दिताली', 'ला पुद्र् येओं', 'ला ग्रामेर' आदि नाटकों ने फ्रेंच जनता को तीस वर्ष तक हँसाया। जीवन-दार, भलमनसाहतपूर्ण बुद्धि-चातुर्य और हलके आमोद की प्रचुर सामग्री इनमें वर्तमान है।

एमिल ओगिए (१८२०-८९) और आलेक्जान्ड्र डूमा (प्रसिद्ध औपन्यासिक आलेक्जान्ड्र डूमा के पुत्र, १८२४-९५), दोनों का यह विश्वास

था कि रंगमंच को नैतिक प्रभाव डालने के काम में लाया जा सकता है। ओगिएर के सुखान्त नाटकों में ठोस वस्तु भी है। 'जीवन के गम्भीर और विषादपूर्ण तत्त्वों से भी हास्यात्मक सामग्री इकट्ठी की जा सकती है,' दिदेरो के इस सिद्धान्त को उन्होंने अपने कुछ वर्णसंकर नाटकों में व्यावहारिक रूप दिया है। तलाक को पुनः कानूनी करार दिये जाने के लिए फ्रेंच जनमत तैयार करने में उनके नाटक 'मादाम काव्हर्ले' ने काफी सहायता दी। नाटकीय तकनीक आलेक्जान्ड्र डूमा के पूर्ण अधीन है। नैतिकतावादी तो वे हैं ही, साथ ही रोमांसिक, भावुकतापूर्ण मृग-मरीचिका के विरुद्ध वे संयत, सन्तुलित बुद्धि की प्रतिक्रिया लाना चाहते हैं, जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे अनुभवलब्ध ज्ञान को प्रयुक्त करना चाहते हैं। उनके लोकप्रिय उपन्यास 'ला दाम ओ कामेलिया' पर आधारित उनके पहले नाटक में ही यह दृष्टिकोण सुस्पष्ट हो उठता है। उनके अन्यान्य नाटकों में रूपभिन्नता है, परन्तु विषयवस्तु यही है। धनान्ध बुर्जुआ समाज के भौतिकवादी दृष्टिकोण पर उन्होंने प्रहार किया है, परन्तु सीमित यथार्थवाद से ही उन्हें सन्तोष करना पड़ा है क्योंकि इससे अधिक ग्रहण करने के लिए शिक्षित श्रोतावर्ग तैयार न था।

चालीस वर्ष से ऊपर दुःखान्त नाटक के प्रतिनिधि थे विक्टोरिआं सार्दू (१८३१-१९०८), परन्तु नाट्यकला को नया रूप देने में उनकी कोई देन नहीं है और न उनके कलात्मक आदर्श ही ऊँचे थे।

प्रकृतिवादी नाटक का पहला उदाहरण मिलता है हांरी बेक (१८३७-९९) के नाटकों में। समाज, व्यक्ति या परिस्थिति का यथार्थ चित्र उपस्थित करने को वे कृतसंकल्प हैं, परन्तु गिरे हुए, कदर्य चरित्रों, या अपनी जघन्यता से चकित करनेवाली स्थितियों को वे नाटक के साधन नहीं बनाते। 'ले कोर्वो' और 'ला पारिज़ियन' में वे निःसंकोच स्वार्थपरता और सभ्यता के परदे के पीछे भ्रष्टाचार को अनावृत करते हैं। लेकिन एक भी अश्लील शब्द इन नाटकों में नहीं है, दुष्ट पात्र भी दिखावटी सुरुचि कायम रखते हैं। हलके व्यंग्य की उनकी शैली नीरस होते हुए भी बलशाली है। चित्रों की

वास्तविकता अपना प्रभाव डाले विना नहीं रह सकती और नाट्यसुलभ उपायों का प्रयोग न किये जाने के कारण निराशावादी चित्र और गहरा रंग पकड़ लेता है। कटु सामाजिक नाटक के स्रष्टा के रूप में, रंगमंच के इतिहास में, कोई बड़ा नहीं तो एक महत्त्वपूर्ण स्थान बेक को प्राप्त है।

आंद्रे आंतोआं द्वारा स्थापित "तिएट्र लिब्र" (१८८७-९६) ने ९ वर्ष की स्वल्पायु में फ्रेंच नाट्यकला पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। श्रोता-वर्ग की रुचि को इसने मार्जित किया, नये अभिनेताओं को इसने जन्म दिया और नये प्रकार के नाटकों को भी। विदेशी नाटकों को भी इस रंगमंच पर स्थान मिला। इबसेन का नाटक पहली बार फ्रांस में खेला गया। फ्रेंच रंगमंच के लिए इसने विदेशी तकनीक भी अपनायी।

इकतालीसवाँ अध्याय

चिन्तक, इतिहासकार और समालोचक

उन्नीसवीं शती का तृतीयांश प्रायः पूर्णतः ऑगस्त कोंत के "पॉज़िटिविस्ट दर्शन" से प्रभावित है। वास्तविक घटनाओं का निरीक्षण विज्ञान का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। यही कोंत का दार्शनिक दृष्टिकोण है। साहित्यिक समालोचना और इतिहास के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण के प्रतिनिधि स्वरूप हैं हिपोलाइट टेन (१८२८-९३)। टेन के अनुसार वंशानुक्रम, वातावरण और ऐतिहासिक क्षण, ये तीनों उपादान मिलकर किसी लेखक के चरित्र का निर्णय करते हैं। वे इस पर बल देते हैं कि जिन भौतिक या नैतिक अवस्थाओं में कोई पुस्तक लिखी जाती है या चित्र खींचा जाता है, उनका उस पुस्तक या चित्र से बुनियादी सम्बन्ध है। "बुद्धि के विषय पर" अपने निबंध में उन्होंने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि मनुष्य की उच्चतर मानसिक शक्तियों के मूल में इन्द्रियगृहीत प्रतिच्छवियाँ हैं। यह मनुष्य और मानवात्मा की यान्त्रिक व्याख्या मात्र है। परवर्ती और आधुनिक दार्शनिक प्रगति ने इस विचार का उन्मूलन किया है। यान्त्रिक व्याख्या चाहे गलत हो, परन्तु किसी लेखक की कृति पर विचार करते हुए, उसके वातावरण, ऐतिहासिक काल आदि पर आज भी ध्यान दिया जाता है। समालोचना पद्धति पर इस विचार का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

ला फॉतेन की नीति-मूलक कविता-कहानियों की समालोचना में टेन ने इसी दृष्टिकोण का अनुसरण किया है। 'अंग्रेजी साहित्य के इतिहास' में भी उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी साहित्य की उनकी समालोचना भी आज निर्मूल नहीं मानी जाती, लेकिन इस साहित्य के संबंध

में उनके सैद्धान्तिक निष्कर्षों को बहुत गलत भी नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत लेखकों का उनका मूल्यांकन औचित्यपूर्ण और दिलचस्प भी है। 'आधुनिक फ्रांस की उत्पत्ति' उनकी इतिहास संबंधी पुस्तक है। इतिहास-रचना में भी उनका दृष्टिकोण वही है जो समालोचना के संबंध में है। इसकी त्रुटियों की भी आलोचना बाद में की गयी। फिर भी यह कहना पड़ता है कि ऐतिहासिक दस्तावेजों का इस्तेमाल उन्होंने ईमानदारी से किया है। अमूर्त, पृथक्कृत विचारों को लेकर उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें कलात्मक रूप भी वर्तमान है। 'पिरेनीज पहाड़ियों की यात्रा' का वर्णन तो दार्शनिक काव्य-जैसा जान पड़ता है।

अर्नेस् रनाँ (१८२३-९२) के बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। उनकी बहन हाँरिएत् पर परिवार के पालन-पोषण का भार पड़ा। धार्मिक जीवन में प्रवेश करने के उद्देश्य से वे पादरियों के स्कूल में भर्ती हुए, लेकिन सात वर्ष पढ़ने के बाद कैथलिक धर्म के संबंध में उनके मन में शंका पैदा हुई। जर्मन दार्शनिक पुस्तकों ने उन्हें प्रोटेस्टेन्ट मतवाद की ओर आकृष्ट किया और वैज्ञानिक अध्ययन ने उन्हें पादरियों के जीवन से विच्युत किया। कैथलिक धर्म उन्होंने त्याग दिया, परन्तु वोल्ट्येर की तरह उन्होंने ईसाई धर्म या पादरियों की खिल्ली नहीं उड़ायी। युक्तिवादी जीवन और विचारों से मनुष्य कितना सुखी हो सकता है, इसका एक उत्साह-पूर्ण चित्र उन्होंने अपनी प्रारम्भिक पुस्तक 'विज्ञान के आगमन' में खींचा है, परन्तु जीवन के अन्त तक उनका यह विश्वास बना रहा कि भौतिकता के परे भी कोई आदर्श शक्ति है। बाईबिल के संबंध में उनका अगाध पाण्डित्य है। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है 'ईसाई धर्म की उत्पत्ति का इतिहास'। ईसा के जीवन से उन्होंने इस पुस्तक का प्रारम्भ किया है। ईसा के अलौकिक कार्यों पर उन्हें विश्वास नहीं है। परन्तु उनके व्यक्तित्व के वे विनम्र भक्त हैं। ऐतिहासिक विषयों की अवतारणा करते हुए भी वे संवेग और सौन्दर्या-नुभूति से अभिभूत हैं। उनके बहुतेरे ऐतिहासिक अनुमान गलत साबित किये गये हैं परन्तु इस पुस्तक का साहित्यिक मूल्य आज भी बना हुआ है।

यह साहित्यिक उत्कर्ष और भी आकर्षक रूप ग्रहण करता है उनकी आत्म-जीवनी' सूव्हनीर दांफांस ए द ज़ोनेस' में। 'पिएर सीर लाक्रोपोल' की, जिसमें उन्होंने यह विवेचन किया है कि आधुनिक संस्कृति में केल्टिक रहस्यवाद और ग्रीक सौन्दर्यवाद के क्या भाग हैं, शैली में अद्‌भुत चमत्कार है। अपनी बहन हांरिएत् को जो भक्ति-नैवेद्य उन्होंने अर्पित किया है वह भी अतिशय हृदयग्राही है। ये दोनों ही उनकी आत्मजीवनी के अंश हैं। रनाँ की लालित्यपूर्ण मनोरम शैली को आनातोल फ्रांस तथा पियर लोटी जैसे सुप्रसिद्ध लेखकों ने अपने लिए नमूना बनाया।

फिस्तेल द कुलांज कठोर प्रकार के इतिहासकार हैं, परन्तु दस्तावेजों का काम पूरा हो चुकने पर सैद्धान्तिक ढाँचा खड़ा करने के लिए कल्पना का आश्रय लेने से वे चूकते नहीं हैं। 'प्राचीन नगरी', 'फ्रेंच बादशाही' आदि उनके इतिहासों की गिनती ऐसी श्रेणी में की जाती है जो इतिहास की दार्शनिक भित्ति खड़ी करने की प्रेरणा देती है। आधुनिक गवेषणा ने उनके व्यापक दृष्टिकोण को भी छोड़ा नहीं है; उनके निष्कर्ष चाहे सब सही न हों, परन्तु उनका तरीका आज भी एक उदाहरणस्वरूप है।

१९वीं शती फ्रेंच साहित्य का एक वैशिष्ट्यपूर्ण सर्जनात्मक युग है। इस युग ने साहित्य की स्वीकृत शाखा के रूप में, समालोचना का उदय होते देखा। १९वीं शती के उत्तरार्ध में समालोचना के क्षेत्र में सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई शार्ल आगस्तें सैं बव्ह (१८०४-१८६९) को। सैं बव्ह में इतिहासकार का भी एक अंश है। उनके लिए जीवनी भी समालोचना का अंग है क्योंकि लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की परख किये बिना उसकी कृति का मूल्यांकन सम्भव नहीं। उनके शब्दों में, "मैं किसी पुस्तक का उपभोग कर सकता हूँ, लेकिन पुस्तक के लेखक के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त किये बिना उस पुस्तक पर राय कायम करना मेरे लिए कठिन है। मुझे सदा यह कहने की प्रवृत्ति होती है कि अमुक पेड़ इस प्रकार का फल देता है।" वे सर्वप्रथम साहित्यिक समालोचक हैं जिन्होंने व्यापक ज्ञान और सहानुभूति पूर्ण अध्ययन को समालोचना का आधार बनाया।

वे अपनी अन्तर्दृष्टि से सहानुभूति के साथ लेखक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, साथ ही पत्र, स्मारक आदि, लेखक के जीवन संबंधी तथ्यों और उपादानों पर भी ध्यान देते हैं। उन्होंने किसी समय कहा था—"मेरी यह इच्छा रही है कि समालोचना में मैं सौन्दर्य का समावेश करूँ और साथ ही पहले से कहीं अधिक वास्तविकता भी। संक्षेप में एक ही साथ अधिक काव्य और अधिक शरीर-विज्ञान . . . . ।" प्रारम्भिक जीवन में सैं बव्ह चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थी रह चुके थे और उनके साहित्यिक परीक्षण में डाक्टरी जाँच की बहुत कुछ सदृशता है।

कॉज़री दी लींदी (सोमवार की वार्ता) में तीन शतियों के फ्रेंच साहित्य की उनकी समालोचना है। यह उनके बहुतेरे निबंधों का संग्रह है जो विभिन्न समाचारपत्रों में इसी नाम से प्रकाशित किये गये थे। इनमें से अनेक साहित्यिकों के जीवन-चित्र हैं। "ल ग्लोब" नामक एक प्रभावशाली पत्रिका में भी उन्होंने काम किया। उनके संबंध में एक मज़ेदार कहानी बतायी जाती है कि एक उद्धत सम्पादक के साथ कई बार झगड़ा-टंटा होने के बाद उन्होंने उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा। समालोचक के एक हाथ में पिस्तौल थी और दूसरे हाथ में छाता। उन्होंने कहा—"युद्ध में मृत्यु के लिए मैं तैयार हूँ, लेकिन मैं भीगना नहीं चाहता।"

वे स्वयं समालोचक के रूप में अपनी तुलना उस वैज्ञानिक से करते हैं जो मनुष्य के मानस का प्राकृतिक इतिहास लिख रहा हो। इन्हीं प्रणालियों के प्रयोग के कारण "सोलहवीं शती के फ्रेंच काव्य" की समीक्षा एक महान् कृति है। इस समीक्षा में सैं बव्ह ने रोमांसिक आन्दोलन की तुलना प्लीआद से की है और यह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि रोनजार और उनके साथियों की ख्याति पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी। 'पोर्ट-रोयाल' उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। जीवन-चित्र इसका भी केन्द्रस्वरूप है, जैंनसेनिस्ट आन्दोलन की सफलता के लिए जिन्होंने अपने जीवन उत्सर्गीकृत किये, उनके चरित्र-चित्रण का एक मधर आकर्षण है।
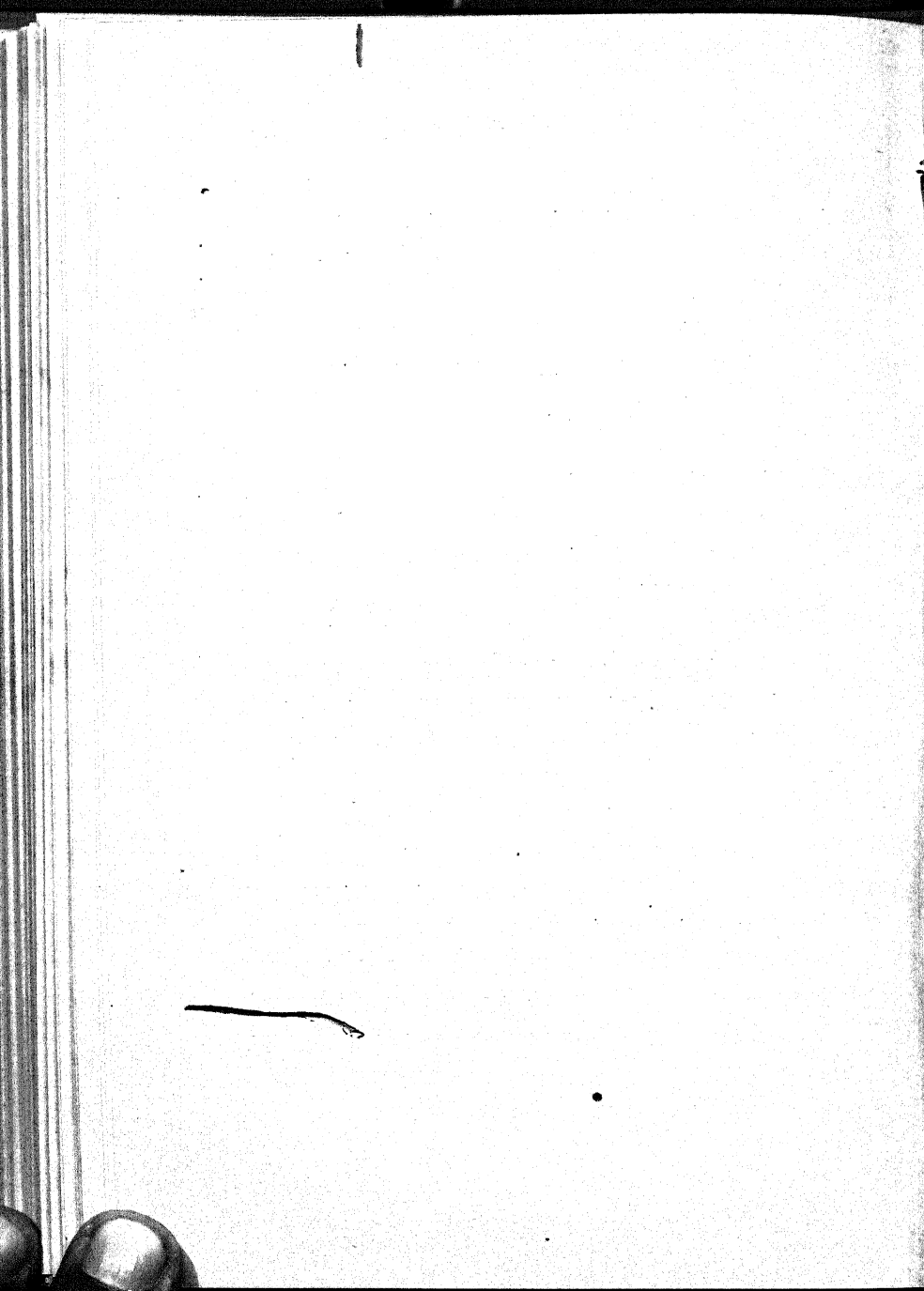
नवाँ भाग

प्रतीकवाद (१८८५-१९१४)
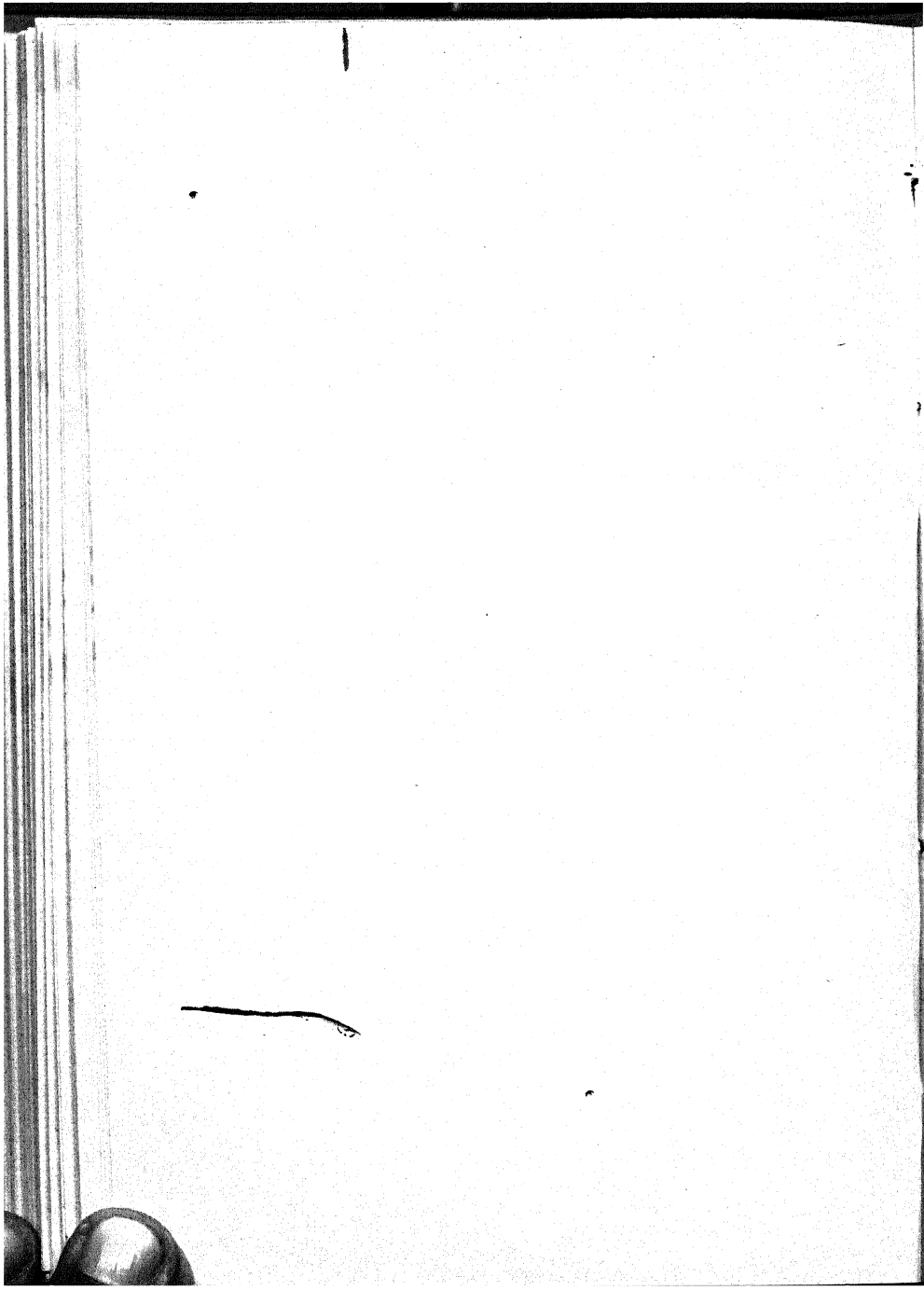
बयालीसवाँ अध्याय

प्रतीकवादी अभियान

यथार्थवाद और प्रकृतिवाद, रोमान्टिक आन्दोलन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हैं परन्तु अंशत: ये उसी आन्दोलन के विकसित रूप भी हैं। उन्नीसवीं शती के प्राय: अन्त में प्रतीकवाद का अभ्युदय पूर्णत: मौलिक परिवर्तन है। यथार्थवाद और प्रतीकवाद में प्रकृतिगत विभेद है। प्रतीकवाद गद्य के विरुद्ध काव्य की प्रतिक्रिया, यथार्थवादी तथा प्रकृतिवादी उपन्यास और पारने-सियन काव्य के विरुद्ध विद्रोह और उन्नीसवीं शती की बुर्जुआ प्रवृत्ति तथा भौतिकवाद और पॉजिटिविस्ट दर्शन के विरुद्ध प्रतिवाद है। प्रतीकवादी आन्दोलन कोई दार्शनिक आन्दोलन नहीं बन सका और न इस आन्दोलन ने कोई बड़ा दार्शनिक ही पैदा किया। परन्तु हीगेल, फिक्टे तथा शोपेनहॉवर के कुछ विचारों को अपनाकर प्रतीकवादियों ने घोषित किया कि दुनिया का स्वरूप आदर्शवादी है और हर्बर्ट स्पेन्सर के 'अज्ञेय' का आश्रय लेकर उन्होंने अपनी इस युक्ति का समर्थन किया कि रहस्यमय विश्व जगत् का बहुत कुछ रहस्य ही बना रहेगा, मनुष्य की बुद्धि उस रहस्य का भेद नहीं कर सकेगी।

प्रतीकवाद और यथार्थवाद का तो मौलिक विरोध है, परन्तु रोमांसवाद और प्रतीकवाद के बीच एक क्षीण संबंध है, चाहे वह संबंध दूर का हो। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतीकवाद, रोमांसवाद की निहित सम्भावनाओं का मूर्त रूप है। त्रुबादूर चारणदल के समय से ही ऐसे सुकाठन लेखक हुए जिन्होंने सभी ऐसी धारणाओं और वस्तुओं को रूप देने का प्रयत्न किया जिन्हें शब्दों में व्यक्त करना नितान्त कठिन था। मॉरिस सेव्ह, तेओफील और सैंतामाँ में हम यह प्रवृत्ति पाते हैं। विक्टर ह्यूगो और बोद्लयेर को

हम इनके निकटस्थ पूर्वज के रूप में देखते हैं। परन्तु इन प्रवृत्तियों के कुल जोड़ से भी, स्पष्ट विचार और सरल अभिव्यक्ति की फ्रेंच विशिष्टता में कोई विशेष अन्तर न्हीं पड़ा। अब एक आन्दोलन ऐसा खड़ा हुआ जिसने जानबूझ कर मूल्यों के स्वीकृत मान को बिलकुल उलट दिया और सीधे-सादे सरल वर्णनों या बयानों की अपेक्षा अर्थपूर्ण इंगितों को श्रेष्ठतर घोषित किया। फ्रांस ने लम्बी अवधि तक प्रकाश का अन्वेषण किया और जब वह मिला तो स्नेह और आदर के साथ उसे अपनी गोद में स्थान दिया। और अब अन्धकार तथा धूमिल आलोक ने फ्रेंच लेखकों को आकृष्ट किया।

प्रतीकवाद का सार बोद्ल्येर की चतुर्दशपदी कविता "कॉरेस्पन्दांस" से उद्भूत हुआ है– "प्रकृति वह मंदिर है, जिसके जीवित मीनार कभी-कभी हवा में अपने रहस्यमिश्रित शब्द प्रसारित करते हैं; इस प्रकृति में, प्रतीकों के जंगल के बीच होकर, मनुष्य यात्रा करता है और ये प्रतीक ही मैत्रीपूर्ण रोशनी जलाकर मनुष्य को मार्ग प्रदर्शित करते हैं।" प्रतीकवादी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति में एक गहरा अर्थ छिपा हुआ है जिसे व्यापक विश्व-जागतिक तुलना के द्वारा ही प्रकाश में लाया जा सकता है। अदृश्य तभी दृश्य और बोधगम्य बन सकता है जब कलाकार का समन्वयात्मक जादू उसका पुनःसर्जन करे। विश्वजागतिक तुलना की प्रतीकवादी धारणा के पीछे यह विश्वास है कि विभिन्न प्रकार की कलाएँ एक ही मौलिक रहस्य के समानान्तर रूपान्तर हैं। इस प्रकार ध्वनि को सुगन्धि के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और सुगन्धि को वर्ण के द्वारा। जैसा कि रैंबो ने अपनी कविता में व्यक्त किया, प्रत्येक स्वर वर्ण एक विशेष रंग में रंगीन होकर हमारे मनश्चक्षु के सामने उपस्थित होता है।

फ्रांस के इस युग पर वैदेशिक प्रभाव भी प्रचुर मात्रा में पड़ा। प्रतीकवाद को भी ब्रिटिश रोमान्टिक कवियों, कार्लाइल और इमर्सन के दर्शन, स्केन्डिनेवियन लेखकों, रूसी उपन्यासों की रहस्यवादिता, शोपेनहॉवर के निराशावाद, टर्नर की चित्रकला और वैगनर के संगीत आदि ने प्रभावित किया। परन्तु अपनी पारी पर फ्रेंच प्रतीकवाद ने भी सारे यूरोप और अमे-

रिका के कुछ भाग को प्रभावित किया। इसी से यह प्रमाणित होता है कि प्रतीकवाद सहजात फ्रेंच प्रेरणा की ही अभिव्यक्ति है और फ्रेंच मानस का एक और पहलू है। व्हैलरी ने प्रतीकवादी काव्यपरंपरा को १९२२ ई० तक जारी रखा और व्यापक अर्थ में आज भी साहित्यिक क्षेत्र में यह घुले-मिले रूप में वर्तमान है।

प्रतीकवाद का अर्थ, कवि के अन्तर्दर्शनों को इंगित-सूचक शब्दों या वाक्यों और गीतात्मक ध्वनि के द्वारा अभिव्यक्त करना है। जिस दुनिया में हर प्रतीयमान वस्तु के पीछे निगूढ़ छिपा हुआ अर्थ है, वहाँ प्रतीक ही सनातन रहस्यों के वाहन हो सकते हैं। प्रतीकवादियों के शब्दभण्डार में इच्छित अस्पष्टता है। अनेक विशेषणों और संज्ञाओं के साथ नये, अस्पष्ट, परन्तु इंगितपूर्ण अर्थ जोड़े गये। मालार्मे ने अपनी कविताओं के वाक्यों में शब्दों के क्रम को भी बदल या उलट दिया। व्हरलेन ने, जिनकी गिनती प्रतीकवादी कवियों में न भी की जाय, तो वे उनके गुरुस्थानीय तो हैं हीं, "वाग्मिता का गला मरोड़ने" की सलाह दी। उन्होंने यहाँ तक कहा कि काव्य में साहित्य का भी प्रत्याख्यान किया जाना चाहिए। इसी प्रकार छन्दों की रचना-प्रणाली में भी नये परिवर्तन किये गये।

प्रतीकवाद नाम का भी छोटा-सा इतिहास है। १८८६ ई० में नवयुवक कवि जॉ मोरेआस ने कवियों की इस नयी श्रेणी के लिए प्रतीकवादी नाम का प्रस्ताव किया और यह मान लिया गया। संवेग और कल्पना से स्वाभाविक संबंध युक्त शब्दों के द्वारा, स्पष्ट वाक्यों के तंग और तुच्छ दायरे से परे, काव्य और साधारण रूप से साहित्य मात्र का लक्ष्य अनुज्ज्वल प्रान्तों में अर्थ का प्रसार होना चाहिए, यही नयी कविता का सन्देश था।

तेतालीसवाँ अध्याय

प्रतीकवादी कवि

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतीकवादियों की तीन पीढ़ियों को अलग-अलग किया जा सकता है। पहली पीढ़ी में वे हैं जिनका जन्म १८४० ई० के इर्द-गिर्द हुआ। इसमें हैं मालार्मे, व्हरलेन, कोर्विएर, लोत्रेआमाँ और रिम्बो। इनके साथ मौलिक, यद्यपि कुछ नीचे दर्जे के, कवि चार्ल्स क्रो और प्रतीक-वादी गद्य लेखक व्हिलिएर द लील एडम् के नाम जोड़े जा सकते हैं।

ईसिडोर डूकास ने काँत द लोत्रेआमाँ के नाम से अत्यल्प आयु (१८४६-७०) में एक अद्भुत गद्य-काव्य 'ले शाँत द मालडोरोर' लिखा, जिसका १९३० ई० में अति-यथार्थवादियों ने "अचेतन" लेख के उदाहरण के रूप में विशेष समादर किया। लोत्रेआमाँ का जन्म कनाडा में हुआ था, जहाँ उनके पिता फ्रेंच राजदूत थे। बीस साल की उम्र में, पोलिटेकनिक स्कूल में पढ़ने वे पेरिस गये, जहाँ गरीबी के कारण उन्हें एक सस्ते होटल में रहना पड़ा। यहीं उन्होंने अपनी पुस्तक मालडोरोर लिखी। उनकी मृत्यु के पहले इसका एक ही सर्ग प्रकाशित हो पाया था। प्रकाशकों को पूरी किताब छापने की हिम्मत नहीं पड़ी।

यह एक विशाल परन्तु अति कष्टदायक स्वप्न-जैसा लगता है; कहीं-कहीं मनोरम, रहस्य और काव्यमय अन्तर्दर्शन की दीप्ति भी है। इस पर बायरन, मिल्टन और पो का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। लेखक को अति विचित्र परिवेष में अद्भुत दर्शन मिलता है—खून की नदियों में, जूँ, रक्तशोषक चमगादड़ और मकोड़ों के बीच, जोंक का भाई मेंढक से बातें करता है; एक मादा शार्क मछली से प्रेम करता है, फिर एक अष्टपदी ऑक्टोपस में रूपा-न्तरित होकर भगवान् को भी चुनौती देता है।

जिन शब्दों में लेखक नायक का वर्णन करता है वे स्वयं उसके लिए भी प्रयोज्य हैं—"तुम्हारा मन इतना रुग्ण है कि तुम्हें इसका पता भी नहीं है। जब कभी तुम अर्थहीन निःसार बातें करते हो तब तुम यही सोचते हो कि तुम्हारी बुद्धि स्वस्थ है। लेकिन तुम्हारी निःसार अर्थहीन बातों में भी एक नारकीय महिमा है।" परन्तु उनके काव्य में गीतात्मक गुण है और उनका बेलगाम आत्मप्रकाश साहसपूर्ण है।

रैंबो (१८५४-९१) का अनोखा व्यक्तित्व और अद्भुत कृतित्व देखकर चकित रह जाना पड़ता है। सोलह साल की उम्र में उसका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ होता है और उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही उसके साहित्यिक जीवन की समाप्ति हो जाती है। इस किशोर अवस्था में और इतने थोड़े समय में ही उसने फ्रेंच साहित्य में क्रांति पैदा कर दी और स्वयं भी उसने अब तक की फ्रेंच साहित्यिक परम्परा से सम्पूर्ण नाता तोड़ दिया। किसी भी कसौटी पर परखा जाय, उसे श्रेष्ठतम फ्रेंच कवियों की पंक्ति में ही आसन देना पड़ता है। स्खलित नक्षत्र की भाँति वह स्वल्प काल के लिए फ्रेंच साहित्य जगत् को आलोक-दीप्त करके फिर अकस्मात् तिरोहित हो गया।

अलौकिक प्रतिभाशाली विद्यार्थी रैंबो स्कूल की पढ़ाई खत्म होने के पहले ही घर से निकलकर पेरिस के लिए रवाना हो गया। रास्ते में बिना टिकट रेलयात्रा करने के कारण उसे गिरफ्तार किया गया और दस दिन की सजा भुगतनी पड़ी। दूसरी बार बेलजियम होकर उसकी पेरिस यात्रा का परिणाम है उसकी कविताएँ "मा बोहीम", "ला मालीन" और "ल कावारे व्हेर"। तीसरी बार उसने पैदल ही पेरिस यात्रा की और नितान्त गरीबी की हालत में एक महीना वहाँ बिताया। पेरिस कम्यून के समय वह पेरिस में था या नहीं यह कुछ विवादास्पद है। परन्तु इसी समय उसने कम्युनिस्ट संविधान की एक योजना लिखी जो अब खो गयी है, अपना प्रथम गद्य काव्य 'ले दे सर्त द लामूर' लिखा और दो सुप्रसिद्ध पत्र लिखे। दो मित्रों को लिखे गये इन पत्रों में उसने द्रष्टा के रूप में कवि की अपनी धारणा को सूत्रबद्ध करने की चेष्टा की है। इस कल्पना के अनुसार द्रष्टा कवि अपने अन्दर

-प्रेम, पागलपन और यातना के हर रूप की अनुभूति प्राप्त कर चरम ज्ञान की प्राप्ति करेगा। कठिन साधना द्वारा और योजनानुसार सम्पूर्ण इन्द्रिय-बोधों को अस्तव्यस्त कर ही कवि द्रष्टा बनता है, यह रैंबो का केन्द्रीय सिद्धांत है और अपने जीवन में भी इस सिद्धांत को वह रूपान्वित करने की चेष्टा करता है।

व्हेरलेन से, जिसने उसे पेरिस बुलाकर साहित्यिक जीवन में प्रतिष्ठित किया, उसके विवाद का मुख्य कारण ही यह बना कि इस सिद्धांत के पालन में व्हेरलेन ने (रैंबो के अनुसार) कमजोरी दिखलायी। यह सिद्धांत अप्रत्यक्ष रूप से और रैंबो प्रत्यक्ष रूप से व्हेरलेन के पत्नी-विच्छेद के निमित्त थे। व्हेरलेन की पत्नी मार्थील्ड् ने उन्हें मुग्ध किया, परन्तु रैंबो ने उन्हें विमोहित किया। दोनों इंग्लैण्ड भाग निकले। दुबारा जब ब्रुसेल्स के होटल में उनकी मुलाकात हुई तो व्हेरलेन ने रैंबो को गोली से घायल किया और प्रायः उसी समय रैंबो के साहित्यिक जीवन पर परदा पड़ गया।

"ल बातो इव्ह्..." में जो कविता उसने सोलह साल की उम्र में लिखी, वह गीत के पंख पर एक काल्पनिक दुनिया में उड़ती दिखाई देती है। एक परित्यक्त पोत, जिसमें उसकी आत्मा तल्लीन है, मायावी सिन्धु की लहरों से टकरा रहा है और गन्ध को रंग से, ध्वनि को दृश्य से और भौतिक को अमूर्त से सम्मिश्रित कर रैंबो अपूर्व शब्दजाल की रचना करता है। इससे भी अधिक रहस्यपूर्ण भाषा में उसने "स्वर वर्ण" की कविता लिखी—हर स्वर वर्ण का अपना अलग अलग रंग—"ए" काला, "ई" सफेद, "आई" लाल, "यू" हरा और "ओ" नीला। संगीत-वाद्य के क्षेत्र में दो-एक प्रसिद्ध कलाकारों की भावना से इसका अद्भुत सादृश्य है। लिज़्ट् ने एक बार समूहवाद्य-वादक को किसी ध्वनि को अधिक नीला करने का निर्देश दिया। गायक टाइक लिफ़ो को ध्वनि का भूरा लाल आदि रंग दिखाई पड़ता था।

'ईन सेसॉ नाँफेर' में वे जीवन-मृत्यु की वास्तविकता और अपने नरक में उतर आते हैं, "मेरा विश्वास है कि मैं नरक में हूँ, इसलिए मैं वहीं

हूँ।" यह कृति साहित्य से रैम्बो की विदाई-जैसी ही लगती है। 'ले इल्युमिनाशिओं' इसके बाद लिखा गया या पहले, यह भी एक विवादग्रस्त विषय है। इस पुस्तक के कुछ अंश पद्य में लिखे गये हैं, कुछ मिश्रित गद्य-पद्य में जिनमें मुक्त छंद का भी प्रयोग किया गया है और बाकी अंश विशुद्ध गद्य काव्य है। इसमें भी वे अपने इन्द्रिय-बोध को अस्तव्यस्त करने में लगे हुए हैं। रहस्यवादिता भी इसी पुस्तक में सर्वाधिक है और इससे अर्थबोध भी कठिन हो जाता है। इन लेखों में क्रम और तर्कसंगत संबंध का अभाव साहित्यिक प्रयोग का अन्तिम स्तर भी है और आनेवाले यथार्थवाद का पहला उदाहरण भी।

व्हेरलेन (१८४४-९६) की अधिकांश कविताओं का संबंध उनकी जीवनी से जोड़ा जा सकता है। परिस्थिति और संयोगवश ही वह जीवन घटनाबहुल और मानसिक संघर्ष से परिपूर्ण है। गोद ली गयी बहन और अपनी माता के लाड़-प्यार के कारण उनका व्यक्तित्व बहुत देर में चल कर प्रस्फुटित हुआ, लेकिन उनके अन्दर कवि का जन्म तो बचपन में ही हो गया था। बलिष्ठ शरीर होते हुए भी उनमें आत्म-विश्वास का अभाव था; जब जिसके साथ रहते थे, उसी के जैसे हो लेते थे। किसी का सहयोग प्राप्त होता तो उन्हें अतीव प्रसन्नता होती, नहीं तो उन्हें अकेलेपन का अनुभव होता। अपने साथियों के कारण ही वे पहले पारनेसियन कविगोष्ठी में सम्मिलित हुए। 'पोएम सैटरनीन' इसी युग की कृति है। इसमें पारनेसियन आदर्श बनाये रखने की चेष्टा तो उन्होंने की है, अनेकांश में यह चेष्टा सफल भी हुई है, परन्तु इसमें भी व्हेरलेनी संगीत अपना आत्म-प्रकाश करके ही रहता है। साथियों के कारण ही पेरिस कम्यून में वे फौजी स्वयंसेवक बनते हैं, परन्तु कम्यून के आदर्श ने न उनके जीवन को प्रभावित किया और न उनके साहित्य को। व्यक्तिगत अनुभवों ने ही उन्हें काव्य की प्रेरणा दी और अपने काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों को ही उन्होंने व्यक्त किया है।

उनके व्यक्तिगत अनुभवों के दो प्रधान उपादान हैं, माथील्ड से उनका

विवाह, फिर उनसे विच्छेद और रैंबो से उनका मिलन, पुनः उनसे विच्छेद। भद्दी शकल-सूरत वाले व्हेरलेन की शादी परम सुन्दरी महिला माथील्ड से हुई, परन्तु दो साल इन्तजार करने के बाद और जब उनकी माता ने अपनी सम्पत्ति का एक बड़ा अंश दहेज में दिया, तब। शादी के पहले वे घोर शराबी बन चुके थे, लेकिन विवाह की प्रतीक्षा में उन्होंने अद्भुत संयम से काम लिया। शादी होते ही वे फिर शराब में डूब गये। नशे की हालत में माथील्ड को वे भला-बुरा कहते, फिर नशा उतरते ही वे क्षमा-याचना करने लगते। तथापि इस विवाहित जीवन के आनन्द को ही उन्होंने 'ला बॉन शांसो' में रूप दिया है। रैंबो के कारण माथील्ड से उनका विच्छेद होने पर भी माथील्ड में उनकी आसक्ति बराबर बनी रही। माथील्ड से अपना पुनर्मिलन कराने के लिए उन्होंने वृद्ध कवि ह्यूगो को भी एक पत्र लिखा। अपनी जो कविताएँ उन्होंने ह्यूगो को भेजी थीं, उनकी, ह्यूगो ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इसी विच्छेद-काल में उन्होंने 'रोमांस सा पारोल' लिखा। रैंबो पर गोली चलाने के लिए जब उन्हें दो साल की सजा मिली तो जेल में उन्होंने 'साजेस' लिखा। यह उनके नास्तिक से आस्तिक बनने का इतिहास है।

व्हेरलेन की ख्याति आज सुप्रतिष्ठित और सुदूर प्रसारित है, परन्तु पारनेसियन गोष्ठी की सहायता और पृष्ठ-पोषकता से उनकी पहली कविताएँ छप जाने के बाद उन्हें अपनी कविताओं के लिए कोई प्रकाशक नहीं मिल रहा था। अपने पैसे से उन्होंने पुस्तक छपवायी तो दो-एक नगण्य पत्रिकाओं को छोड़कर किसी ने उसकी समालोचना तक नहीं की। जीवन के अन्तिम भाग में उन्हें जब सौभाग्य से एक प्रकाशक मिल गया तो उनकी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और नये उदीयमान कवियों के वे नेता बन गये।

बोद्लेयर, लकॉंत द लील, यहाँ तक कि ह्यूगो के अनुकरण में लिखे गये 'पोएम सैटर्नीन' में जन्मना लेखक की निपुणता है। इसकी कुछ अस्पष्ट इंगित-सूचक कविताओं में प्रतीकवाद का पूर्वाभास है। परवर्ती 'फीट

गालाँत' गीतात्मकता की मधुर अभिव्यक्ति है। इसकी कविताओं में अठारहवीं शती के वाटो और फ्रागोनार जैसे चित्रकारों की नाजुक कामुकता के उद्भावन की क्षमता है। व्हेरलेन की विशिष्टता, भावों की अति सरल अभिव्यक्ति 'ला बॉन शांसों' में परिणत अवस्था प्राप्त करती है। इसी सरलता के कारण अनुवादक का हाथ लगते ही उनकी पंक्तियों का जादू काफूर हो जाता है।

" ओ त्रीस्त, त्रीस्त् एते माँ नाम्
आ कोज, आ कोज दीन फाम्।"
(एक नारी के लिए मेरी आत्मा दुखी थी)

यही इन पंक्तियों का विषय है, परन्तु इस अनुवाद में वह गीतात्मकता कहाँ है, वह जादू कहाँ है?

"का ती फे, ओ तोआ क व्होआला
प्ल्येरां सा सेस्,
दी, का ती फे, तोआ की व्होआला
द ता जोनेस ?"
(रमणी, तुम रोती हुई जा रही हो, तुमने अपनी जवानी का क्या किया ?)

लघु छोटे पदों से गीतात्मक ध्वनि उत्पन्न करने की व्हेरलेन की अद्भुत क्षमता है। इन पदों की गीतात्मकता का रहस्य यह है कि कवि की भाषा एक परदा है जिसके अन्दर से क्षण भर के लिए कवि के अन्तर्जगत् की स्पष्ट झलक मिल जाती है और दूसरे ही क्षण आश्चर्यजनक इंगितों में उसका आभास मिलता रहता है।

इन गुणों के बावजूद 'ले पोएट् मोदी' और 'आर्ट पोएटिक' प्रकाशित होने के बाद ही उनकी ख्याति सुप्रतिष्ठित हो सकी। अन्य प्रतीकवादी कवियों ने 'आर्ट पोएटिक' को ही अपने दल का मार्ग-प्रदर्शक शास्त्र बनाया। इसी "आर्ट पोएटिक" में उन्होंने कहा "वाग्मिता का गला मरोड़ दो।"

मालार्मे (१८४२-१८९८) फ्रेंच कवियों में अत्यन्त दुर्बोध्य हैं। "कला सब के लिए" शीर्षक अपने एक निबन्ध में उन्होंने इस दुर्बोध्यता का कारण भी स्पष्ट कर दिया है। वास्तविकता यह है कि कवि या कविता की लोकप्रियता को वे काव्य का अपमान मानते थे। इस निबन्ध में वे कहते हैं—"जनता को लोकतान्त्रिक रहने दो, लेकिन कलाकार को अभिजात ही रहना पड़ेगा।" वे फिर कहते हैं—"जनता को नीतिपूर्ण आचरण पर पुस्तकें पढ़ने के लिए दो, लेकिन उसे हमारे काव्य को विनष्ट न करने दो। क्यों? इसलिए कि काव्य कला है, जैसे स्थापत्य या चित्रकारी कला है, और कला का समादर रसज्ञ ही कर सकता है। लोग अन्य कलाओं को विशेषज्ञों के लिए छोड़ने को प्रस्तुत हैं, लेकिन कविता सीखते हैं इसलिए कि शिक्षित प्रतीत होने के लिए यह आवश्यक समझा जाता है। परन्तु प्रत्येक कला की भाँति काव्य रहस्यमय है और इस रहस्य का अध्ययन या मनन कुछ चुने हुए लोग ही कर सकते हैं।"

रहस्य ही मालार्मे के काव्य की विशिष्टता है। यह रहस्य और भी रहस्यमय हो जाता है क्योंकि कवि को दिव्य-दर्शन से शून्य की अनुभूति होती है और उनके लिए शून्य ही सुन्दर है। सन् १८६६ ई० में वे लिखते हैं—'जब मैंने शून्य की अनुभूति की उसके बाद मुझे सुन्दर का दर्शन मिला।" शून्य ही उनके लिए वास्तविकता है और असम्भव नहीं कि इसी कारण उस शून्य में उन्हें सौन्दर्य का भी दर्शन करना पड़ा। उनका काव्य इस शून्यता को शब्दों में रूप देने का प्रयास है और उनका गद्य, और यह गद्य भी काव्यमय है, इस सिद्धान्त की व्याख्या-स्वरूप है। मालार्मे का सौन्दर्य दिव्य रूप या दिव्य दर्शन की सरलता तथा जटिलता के अनुरूप है; शून्य इसका प्रारम्भ है और शून्य में ही इसकी इति है और दोनों के बीच में है उनका काव्य जो शून्य को शब्द-रूप देने का अपूर्ण प्रयास मात्र है। वे हमें ऐसे जगत् के चिन्तन का निमन्त्रण देते हैं जो हमारी अद्‌भुत से अद्‌भुत कल्पना की पहुँच के बाहर है, हमारी कल्पना सहर्ष उनके साथ उड़ती है, लेकिन उसे विश्राम कहीं नहीं मिलता। अमूर्त को मूर्त करने के प्रयास में वे भाषा

की सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हैं, परन्तु इस प्रयोग से भाषा की असमर्थता भी प्रकट हो जाती है। अपने प्रयोग और प्रयास से फ्रेंच भाषा की सम्पूर्ण सम्भावनाओं का मार्ग वे प्रशस्त करते हैं, फ्रेंच भाषा को और समृद्ध बनाते हैं, परन्तु भाषा जहाँ काम नहीं देती, वे वाक्यों के बीच व्यवधान छोड़ रखते हैं और आशा यह करते हैं कि पाठक अपनी कल्पना द्वारा इस व्यवधान की पूर्ति कर लेगा। अनन्त शून्य का, जिसे कवि, दार्शनिक या रहस्यवादी भगवान्, विचार, आदर्श, रिक्तता, भीषण खाई या भयंकर के नाम से पुकारते हैं, अपूर्ण प्रकाश ही उनका काव्य है। इस प्रकाश के अनेक रूप हैं और अनेक रूपों में इसी एक का प्रकाश है। इस अनेक की व्याख्या से एक तक पहुँचना ही उनकी वास्तविक समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए वे वाक्यों में जटिलता लाते हैं, विभिन्न क्षेत्रों और स्तरों के सादृश्य को एक में मिलाते हैं और शून्यता के रसास्वादन के लिए रिक्त स्थान भी कहीं-कहीं छोड़ रखते हैं। मालार्मे की अमूर्त, जटिल कल्पना और शैली साधारण पाठक को थका देती है, लेकिन उनकी रचनाओं में बेचैनी पैदा करनेवाली ऐसी ज्योति है जिसे कोई देख या पकड़ पाये तो उसके मूल तक पहुँचे बिना उसे शान्ति नहीं मिल सकती। अस्पष्टता और दुर्बोधता के बावजूद, मालार्मे की कृति—और उसका विस्तार बड़ा नहीं है—सुन्दर तो है ही, उसमें विशुद्धता की भावना की अपूर्व और अनुपम उद्भावन-शक्ति है। सर्वोपरि उनके काव्य की गीतात्मकता भी अर्थ और उद्देश्य का इंगित करने वाली है। इसमें व्हेरलेन से उनकी सदृशता है यद्यपि दोनों की गीतात्मकता के रूप भिन्न हैं।

"प्रेतात्मा," "निद्रा", "वातायन", "ग्रीष्म का विषाद", "समुद्र की हवा" या उनकी चतुर्दशपदी कविता "सीर ले ऊव्लिए कां पास लिव्ह्र सीम्बू" कुछ ऐसी विख्यात कविताएँ हैं, जिनका अर्थबोध करना आपेक्षिक रूप से सहज है। परन्तु उनकी सबसे प्रसिद्ध कविता "लाप्रे मिदी दां फोन" की सम्पूर्ण और सन्तोषजनक व्याख्या प्रायः असम्भव है। कविता का विषय गड़रियों की रक्षा करनेवाले ग्रामीण रोमन देवता

(फोन) का अपराह्न स्वप्न है। इसमें मालार्मे की कविता की सभी विशिष्टताएँ मौजूद हैं। स्वप्न में स्वर्ग की परियों में फोन की आसक्ति पैदा हो जाती है। परियाँ अदृश्य हो जाती हैं। परन्तु कवि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं करता, केवल "क्या मैं स्वप्न देख रहा था?" इस प्रश्न के द्वारा इसका इंगित मात्र करता है। अब स्वप्नद्रष्टा सन्देह से अभिभूत हो जाता है—वह स्वप्न जो "प्राचीन रात्रि का फलस्वरूप" है। वे परियाँ क्या थीं, मानो नाजुक गुलाब-कलियाँ हवा पर तैरनेवाली। परन्तु स्वप्न में रोमन देवता को गुलाबों के "आदर्श अभाव" का ही प्रमाण मिलता है। अर्थात् अभाव या शून्यता ही उसका वास्तविक आदर्श है। फिर वह चन्द्रमा के गर्वित "मौन" के आगे आत्मसमर्पण करता है। इस मौन में ही समाप्ति है। फोन कहता है—"बन्धुद्वय, विदा, तुम छाया मात्र हो, यह अनुभूति में प्राप्त करूँगा।"

उनके गद्य-काव्यों में वही ठोसपन और उद्भावनी शक्ति है जो उनकी कविताओं में है। परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उनका गद्य उनके पद्य की व्याख्या मात्र है। "श्वेत जल-कमल" में एक अवगुण्ठित मूर्ति आती दिखाई देती है—फिर वे लिखते हैं—क्या उसके वहाँ रुक जाने का कोई कारण है? तथापि, क्या मुझे भी कोई अधिकार है कि सरपत के ऊपर से झाँककर उस रहस्य के भेद की चेष्टा करूँ या जिस कल्पनामय निद्रा ने मेरी स्वच्छ दृष्टि पर आवरण डाल रखा है उससे मैं जाग उठूँ?" इसी में आगे है—"जादू भरे, अनखिले जल-कमल, जो वहाँ अकस्मात् ऊग आते हैं और जो, अटूट स्वप्नों के बने हुए नामहीन "कुछ नहीं" को, उस आनन्द को जो कभी मिलनेवाला नहीं, अपने श्वेत की गहराई में बन्द किये हुए हैं. . . . ।" 'कुछ नहीं' मालार्मे का स्वप्न है और वास्तविकता भी।

आधुनिक फ्रेंच काव्य में कोरबिएर को मध्य स्थान प्राप्त है। उन्हें व्हिलों का उत्तराधिकारी, व्हेरलेन का भाई और लाफोर्ग का पूर्वज कहा गया है। परन्तु १८७३ ई० में प्रकाशित उनकी कविता "ले आमूर जन" प्रायः अज्ञात ही पड़ी रही जब व्हेरलेन ने १८८४ ई० में 'ले पोएट मोदी'

का एक अध्याय केवल इस कविता को ही दिया। पचास साल की विस्मृति के बाद फ्रेंच समालोचकों ने उन्हें पुनः ढूँढ़ निकाला। रोमांसवाद और ह्यूगो के भी वे कट्टर विरोधी थे, परन्तु बौद्धिकता-विरोधी रोमांसवाद की प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप बुद्धि का जब दुष्प्रयोग किया जाने लगा तो उसका भी उन्होंने विरोध किया। परिपूर्ण मानव और मनुष्य की समग्रता को सामने लाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। उनके विस्फोटक कटु छन्दों में तुच्छता और भद्दापन भी है, परन्तु उनकी वर्णन-शैली में अनोखा आकर्षण है।

व्हेरलेन के मित्र चार्ल्स क्रो में मौलिकता है। उनका चुनौती-पूर्ण विद्रोह व्यंग्यमिश्रित है। 'ल कॉफ्रे द सान्ताल' और 'ल कोलिएर द ग्रिफ' के गद्य काव्य में अति यथार्थवाद का इंगित है और कवित्व के पदों में उद्भट कल्पना की उड़ान के साथ भयावह हास्यरस मिला हुआ है।

व्हिलिएर द लील एडम (१८३८-१८८९) आधुनिक सामाजिक और वैज्ञानिक भौतिकवाद के विरुद्ध विद्रोह के मूर्त रूप हैं। जिस समाज में वे रहते थे उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका यह विश्वास था कि विज्ञान और स्वयं वास्तविकता की सृष्टि भ्रम मात्र है; उसमें जान फूँकने की क्षमता अकेले अध्यात्मवाद में है।

प्रारम्भ में कुछ कविताएँ लिखने के बाद उन्होंने गद्य में ही अपने को सीमित रखा। उनका उपन्यास 'त्रिबुला बॉन्होमें' तथाकथित वैज्ञानिकता, लोकतन्त्र और कदर्य यथार्थबुद्धि का व्यंग्यचित्र है। नायक का नैतिक और आध्यात्मिक पतन करुणा-विषाद से परिपूर्ण है। विपरीत रूप में उनके छोटे उपन्यास 'क्लेर लनोआर' के नायक का जीवन विश्वासपूर्ण है। 'ला रिव्होल्ट्' में उन्होंने अपने आध्यात्मिक आदर्श को रंगमंच पर उपस्थित किया। भय, रहस्य और कल्पनामिश्रित 'क्रूर' कहानियों में उन्होंने व्यंग्य को हास्यात्मक रूप दिया है। उनका काव्य-नाटक 'ऐक्सेल' उनके उच्चांग आदर्श की अभिव्यक्ति है। नायक-नायिका धर्म, स्वर्ग और रहस्य की दुनिया का परित्याग कर जब धन-दौलत की खोज में सफल

होते हैं, उसी समय अपने पारस्परिक प्रेम से भी वे विमुग्ध हो जाते हैं। आगे चलकर यह प्रेम कहीं मलिन और कलुषित न हो जाय, किसी प्रतारणा-पूर्ण भ्रम में परिणत न हो जाय, इस सन्देह से मुक्ति पाने के लिए वे मृत्यु की गोद में ही इसे अमर बनाने का संकल्प करते हैं।

"प्रतीकवादी" शब्द को गढ़ा प्रतीकवादियों की दूसरी पीढ़ी ने। इस पीढ़ी के लेखकों का जन्म १८५५ और १८६६ के बीच हुआ। इस पीढ़ी ने दलबद्ध होकर नयी कविता का संग्राम लड़ा, घोषणापत्र लिखे और तकनीकी आविष्कार किये, लेकिन प्रथम श्रेणी के कवि पैदा नहीं किये। इस श्रेणी के प्रतिनिधि रूप में व्हिले ग्रिफ़ैं, जूल लाफोर्ग, सामैं, व्हेरहयेरां, स्टुआर्ट-मेरिल, जैं मोरेआ, गुस्टाव्ह कान और मेटरलिंक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

यह दिलचस्प बात है कि इस आन्दोलन के अनेक सक्रिय अनुयायी फ्रांस के बाहर पैदा हुए। जैं मोरेआ (१८५६-१९१०), की जिन्होंने प्रतीकवाद नाम का प्रस्ताव किया था, पैदाइश ग्रीस में हुई थी। उन्हीं ने प्रतीकवादी दल का पहला साहित्यक घोषणापत्र निकाला जो १८८६ में फिगारो अखबार में प्रकाशित हुआ। "ले सिर्त" आदि उनकी पहली कविताओं में व्हेरलेन की "कवित्वकला" की आत्मा मौजूद है और इनमें वे छन्दों की मात्राओं की स्वतंत्रता की खोज करते दिखाई देते हैं। परन्तु कुछ ही वर्षों के बाद उन्होंने प्रतीकवाद की ओर पीठ फेर ली और नव-क्लासिक धारा के मुख-पात्र बन बैठे।

स्टुआर्ट मेरिल् और व्हिले ग्रिफैं दोनों अमेरिका में पैदा हुए और दोनों ने अमेरिकन कवियों तथा ब्रिटिश कविओं के सांगीतिक मूल्यों को प्रतीकवादी उद्देश्यों में समाविष्ट करने की चेष्टा की है। दोनों ही मुक्त छन्द पर बल देते हैं। व्हिले ग्रिफैं में प्रतीकवादी विषण्णता नहीं है। "पथ के फूल और सड़क के संगीत" जीवन के प्रेम और आनंद में सने हुए हैं। जूल लाफोर्ग और लोत्रेआमां का जन्मस्थान मॉन्टविडेओं है। उनकी किशोरावस्था बर्लिन में बीती। सार्वजनीन वातावरण ने

उनकी आध्यात्मिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित किया, परन्तु उन्हें कोई विशेष दिशा नहीं दी। आत्म-विद्रूप, गहरा निराशावाद, जीवन की श्लेषात्मक आलोचना उनकी विशेषताएँ हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिसम्पन्न लेखक मॉरिस मेटरलिंक (१८६२-१९४९) का जन्म घेन्ट (बेलजियम) में हुआ। १८८६ में पेरिस जाकर प्रतीकवादी दल में वे शामिल हो गये। १८८९ में उनकी स्वप्न-बोझिल कविताएँ "शरे शोद" और "ला प्रैंसेस मालीन" प्रकाशित हुईं। यह कुछ आश्चर्य की बात है कि प्रकृतिवादी लेखक ऑक्टेव्ह मिरबो ने व्याहृत प्रेम और रहस्य के इस जीवन-नाट्य का सार्वजनिक रूप से तथा उत्साह के साथ स्वागत किया। मेटरलिंक रातोंरात प्रसिद्ध हो गये।

परवर्ती नाटकों, 'लैंत्रीज', 'ले आव्हुयेगल्' और 'ऐंतेरिएर' ने उनकी ख्याति को सुप्रतिष्ठित किया। प्रकृतिवादी नाटक के विपरीत, जिसमें समाज में वर्तमान प्रत्यक्ष और इन्द्रियगोचर बुराइयों के विरुद्ध मनुष्य के संग्राम का वर्णन किया जाता है, मेटरलिंक ने ऐसे नाटकों की रचना की जिनमें अनादिकाल और रहस्य के बीच, विश्व-ब्रह्माण्ड की बुराई की काली अदृश्य शक्तियों के विरुद्ध आत्मा का लाक्षणिक संघर्ष चित्रित किया गया है। उनकी पहली कृतियों का गहरा निराशावादी रंग बाद के नाटकों ('आग्लाव्हेन ए सेलिसेत्', 'मोना व्हाना') में कुछ हलका पड़ गया है; प्रेम का स्नेह-स्पर्श मृत्यु की सम्मोहनी शक्ति पर विजय प्राप्त करता है। अन्त में चल कर 'ल्वाजो ब्ल्ये' (नील पक्षी) में टिल-टिल और मीटिल आविष्कार करते हैं कि मृत्यु का कहीं अस्तित्व ही नहीं है, लेकिन वे यह भी सबक सीखते हैं कि सुख अन्वेषणकारी के हृदय के बाहर कहीं नहीं मिल सकता।

'ले त्रेजोर दे अम्ब्ल्,' 'ला साजेस ए ला देस्तेने', 'ल ताम्प्ल आंसव्ली' आदि उनकी गद्य कृतियों में रिज़ब्रेक, नोव्हालिस और इमर्सन के रहस्यवाद और अतीन्द्रियवाद की प्रेरणा स्पष्ट है। उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि रक्तमांसमय शरीर के पाप और अपराधों से आत्मा पर कोई धब्बा

नहीं लग सकता, विपत्ति, रोग और मृत्यु भी मनुष्य के वास्तविक जीवन के बाहर की चीजें हैं। 'फूलों की बुद्धि,' 'दीमक का जीवन' मधुमक्खी का जीवन' आदि पुस्तकों में उन्होंने पौधों और निम्न स्तर के जीवों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। जीव-जगत् और मनुष्य के अध्ययन तथा ध्यान से वे इस नतीजे पर पहुँचे कि मनुष्य और यावतीय पदार्थों में एक ऐसी शक्ति है जो अज्ञात तथा विरुद्ध विश्व से जीवन की रक्षा करती है। उनका अभिमत है कि यह विश्वास भ्रमपूर्ण भी हो तो भी यह हृदय को रास्ते के अन्त तक जाने का बल प्रदान करता है। मेटरलिंक का गद्य अति सरल उपायों से मानव-संवेगों को आन्दोलित करता है और जीवन के रहस्यों का बोध जाग्रत करता है।

बेलजियम कवि व्हेरहयेरां (१८५५-१९१६) शक्ति के उपासक हैं। उनके पिता डच् वंशज थे और उनकी माता फ्रेंच वंशज थीं। उनके घर में फ्रेंच बोली जाती थी और वे स्वयं फ्रेंच के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा अच्छी तरह नहीं जानते थे। बेलजियम के उत्तरी भाग फ्लैन्डर्स के रंगीन जीवन का वर्णन उन्होंने अपनी प्रथम कविता "ले फ्लामांद" में चित्रकार की तूलिका हाथ में लेकर किया है। कवि इसमें पार्थिव जीवन के आनंद का उपभोग उत्साह के साथ करता दिखाई देता है। "ले मोआन" में शौर्यपूर्ण अतीत के रहस्यमय पहलू में वे प्रवेश पाने की चेष्टा करते हैं। तीन सप्ताह उन्होंने एक मठ में बिताये और अन्य सदस्यों की भाँति मठ के दैनिक जीवन में भाग लेते रहे। इन अनुभवों को उन्होंने रूप दिया अपने नाटक 'ल क्लोइत्र' में। उनकी कृतियों में उनके विचार, दृष्टिकोण और मनोभाव के परिवर्तन और विकास का क्रम स्पष्ट दिखाई देता है। "ले सोआर", "ले देबाक्ल" और "ले फ्लाम्बो नोआर" में कवि का मनोभाव निराशापूर्ण है। "धूप की घड़ियाँ", "अपराह्न के सुख" और "सन्ध्या की वेला" विवाहित जीवन के सुख से परिपूर्ण कविताएँ हैं। ग्राम खाली होते जा रहे हैं और औद्योगिक शहरों में लोग भीड़ करते जा रहे हैं, यह देखकर कवि के मन में आतंक पैदा होता है। "ले काम्पांई हालुसिने" आदि कविताओं के प्रथम

भाग में कवि का यही मनोभाव प्रदर्शित होता है। लेकिन शीघ्र ही वे शहरों की शक्ति की प्रदर्शनी से मुग्ध हो जाते हैं। "ले देबाक्ल" का प्रतीकवादी कवि मनुष्य को चुनौती देता है—"तुम कुछ नहीं हो पाओगे, तम्हारी आलसी आत्मा के लिए भविष्य अतीत का अनुताप मात्र होगा।" "ले काम्पाईं हालुसिने" आदि कविताएँ और विशेष कर उनका नाटक' 'उषा' इस चुनौती का उत्तर देते हैं—"प्राचीन स्वप्न मृत हो चुका है, नवीन की रचना हो रही है। अब विजय समीप है।" "ले विसाज द ला व्ही" आदि कविताओं में वे विजय-समारोह मनाते हैं। समाजवादी आदर्शों से अनुप्राणित व्हेरह्येरां को प्रेम और सद्भावना से युक्त, जाति-राष्ट्र-भेदविहीन मानव-समाज जीवन की यात्रा में आगे बढ़ता दिखाई देता है। लेकिन प्रथम महायुद्ध में जब जर्मनी, जिसे वे प्रगति के जुलूस में सब से आगे बढ़ा हुआ मानते थे, उनके आदर्शों को चूर-चूर कर देता है तो उन्हें क्रोध आता है। फ्लैन्डर्स के ध्वंस और सर्वव्यापी आतंक का चित्र वे खींचते हैं "युद्ध के खूनी पंख" में।

शब्दों के अर्थ से निरपेक्ष, उनके सांवेगिक मूल्य और ध्वनि के द्वारा वे भावोत्पादन करते हैं। छन्दों और प्रतिमाओं की स्वच्छन्दता प्रतीकवादी प्रयोग के अनुरूप है। इंगितात्मक संगीत के लिए वे व्याकरण की भी उपेक्षा करते हैं। आधुनिक कविताएँ इसी सिद्धान्त पर आधारित की जाने वाली हैं, लेकिन दोनों के प्रभाव में कितना अन्तर है।

गुस्टाव्ह् कान (१८५९-१९३९) का महत्त्व उनकी पहल के कारण है। १८८५ ई० के लगभग मुक्त छन्द के लिए वातावरण तैयार था। इसे खड़ा करने में रैंबो की विशेष देन है। लेकिन सम्पर्क-विहीन रैंबो की अकेली प्रतिभा विशेष प्रभाव नहीं डाल सकी। जनता और कवियों के ध्यान और चेतना में इसे पूरी तरह बैठाना, कान और लाफोर्ग दोनों को मिलकर करना था। कान के 'पैले नोमाद' ने पहली बार फ्रेंच छन्दों के सदियों के सांख्यिक आधार से सम्पूर्ण नाता तोड़ लिया। दस वर्ष बाद इस पुस्तक के नये संस्करण की भूमिका में उन्होंने इस नये मोड़ का

महत्त्व समझाया। उन्होंने कहा कि अभिव्यक्त भावना के हर रंग और घुमाव से प्रत्येक पंक्ति की लोचदार संगति कायम रखना ही छन्द का मुख्य कार्य होना चाहिए। इसके लिए शब्दांशों की गिनती गौण और बाहुल्य मात्र है। इस पूर्णतः नवीन सिद्धान्त का प्रयोग पहले पहल कम ही हुआ, लेकिन निःसीम स्वतंत्रता के लिए दरवाजा खुल गया।

एलबर्ट सामैं के साथ दुर्बल प्रतीकवाद के संगीत और कामोद्दीपन भी क्लान्त हो पड़ते हैं। उनकी कविताएँ अपनी परिपूर्णता से ही मुमूर्षु जान पड़ती हैं। उनका स्वर मधुमय, परन्तु चिपकता हुआ है। उनकी तुलना में हांरी द रेनिएर की अभिजात प्रतिभा का व्यक्तित्व अधिक है। विषय दोनों के प्रायः एक हैं, लेकिन रेनिएर की कविता में क्लासिक नियमानुवर्तिता की स्वरसमता है। छन्दों में स्वतंत्रता वे बरतते हैं, लेकिन हलकी नाजुक मात्रा में। क्रान्ति-पूर्व फ्रांस पर उनकी आसक्तिपूर्ण निगाहें हैं, बारसेइए की गिरती शान का वे गीत गाते हैं। समसामयिक जीवन सम्बन्धी उनके उपन्यासों पर भी अतीत की हवा कभी-कभी बह जाती है।

चवालीसवाँ अध्याय

उपन्यास और नाटक

उपन्यास पर प्रतीकवाद का उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि काव्य पर और यह स्वाभाविक ही था। इस युग के सभी उपन्यास प्रतीकवादी नहीं हैं, परन्तु प्रतीकवादी पुट और प्रलेप अनेक उपन्यासों में देखा जा सकता है। कुछ उपन्यास मौलिक दिशाओं में भी आगे बढ़ते हैं।

पॉल बूर्ज़े (१८५२-१९३५) ने कविताओं से अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ किया। "एसे द साइकॉलॉजी कन्ताम्पोरैं" शीर्षक उनकी निबन्धमाला ने, जो "नूव्हेल रव्ही" नामक पत्र में प्रकाशित की गयी थी, साहित्यिक जगत् का ध्यान आकर्षित किया। समालोचना के क्षेत्र में यह नवीन प्रयास था। "साहित्य जीवित मनोविज्ञान है", टेन की इस उक्ति के प्रयोग के रूप में बूर्ज़े ने पिछली पीढ़ी के कुछ लेखकों की मानसिक और नैतिक विशेषताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया। इस उपाय से उन्होंने यह निश्चय करने का प्रयास किया कि उनके चारों ओर फैले हुए निराशावाद के लिए उन विशेषताओं की जिम्मेदारी किस अंश तक थी। साहित्य की इस मौलिक समालोचना का उस समय विशेष समादर हुआ। कुछ ही वर्षों के अन्दर इस विश्लेषण-शक्ति का प्रयोग उन्होंने 'क्रुएल् एनिग्म्,' 'मांसोंज' आदि अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में किया। लोग क्या करते हैं यह वर्णन विस्तार से न कर, जिन कारणों से उन कार्यों की उत्पत्ति हुई उन पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इस प्रकार उन्होंने यथार्थवादी साहित्य से प्रभावित समकालीन रुचि की भी रक्षा की और प्रतीकवादियों के नव-आदर्शवाद से भी संगति कायम रखी। उनकी रचना उद्देश्यमूलक है;

उद्देश्य, जो है उसे उसी रूप में दिखाना नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक सबक देना है। यह नीतिमूलक उद्देश्य 'ल दिसिप्ल्' में बहुत स्पष्ट है। पुस्तक की भूमिका में ही लेखक ने अपने समय के युवकों को चेतावनी दी कि "जीवन के मजे लूटो", इसे वैज्ञानिक सिद्धान्त का रूप देना नैतिक खतरा मोल लेना है। इस उपन्यास में, भावुकतापूर्ण एक घटना के अध्ययन के विस्तार के रूप में, उन्होंने विज्ञान के प्रति विशुद्ध बौद्धिक वफादारी और जीवन के कर्त्तव्यों के बीच संघर्ष की जो समीक्षा की, उसने विशेष रूप से लोगों को आकृष्ट किया। 'कॉसमोपॉलिस' में उन्होंने उपन्यास के विषय का और भी विस्तार किया। उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि मनुष्य को उस सामाजिक ढाँचे से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता जिसका वह अंश स्वरूप है। ब्रिटेन, अमेरिका और इटली के अपने पर्यटन के अनुभवों को उन्होंने लिपिबद्ध किया है। उन्होंने अनेक छोटी कहानियाँ लिखीं और दो नाटक भी लिखे जिनमें १९१०-११ के बीच के इतिहास की भी झांकी मिलती है।

ऐलेमिर बूर्ज़ (१८५२-१९२५) कल्पनामूलक रचना के प्रतीकवादी पुनरुत्थान के उदाहरण स्वरूप हैं। इतिहास और कल्पना-मिश्रित उनके उपन्यासों की शैली बलशाली है। उनकी विशेष रूप से उल्लेखनीय कृति, गद्य-प्रबन्ध 'ला नेफ्' है। इसमें उन्होंने पौराणिक ग्रीक अग्निदेवता "प्रोमीथिउस" की निजी व्याख्या के द्वारा महिमान्वित आध्यात्मिक नाटक का अवतरण किया है और मनुष्य के अन्तिम भाग्य की समस्याओं का एक रूपक प्रस्तुत किया है। इसकी प्रेरणा-पूर्ण ऊँची उड़ान और छन्द युक्त गद्य में शेली की "प्रोमीथिउस ऑनबाउण्ड" कविता का अद्भुत सौन्दर्य है। पौराणिक कथाओं पर ब्रह्माण्ड दर्शन जोड़ने की प्रक्रिया गेटे के द्वितीय 'फाउस्ट' के अनुरूप है। लेकिन पुस्तक में एकसूत्रता नहीं है, विच्छिन्न टुकड़ों का यह जोड़ मात्र है। जन-साधारण को बूर्ज़ से विशेष परिचय नहीं है, परन्तु वे एक कुशल लेखक हैं जिन्होंने फ्रेंच प्रतीकवाद के वृत्त-विस्तार का विशेष प्रयत्न किया।

जेरोम (१८७४-१९५३) तथा जाँ थारो (१८७७-१९५२) दोनों भाइयों के उपन्यास, साहित्य के बुद्धियुक्त अध्ययन-जनित रुचि और योग्यता की उपज हैं। उनकी शैली में क्लासिक रचनाओं के गुण हैं, परन्तु क्लासिक साहित्य को गुरु मानने वालों का स्वप्न उनमें नहीं है। उनकी प्रशंसनीय कला में रोमांसिकता और प्रतीकवाद का पुट है और कल्पनाशील उत्सुक पाठकों के लिए दिलचस्पी की खुराक है। ये भ्रातृद्वय, विशेषकर जेरोम देशाटन भी करते रहे और अपने निरीक्षणों तथा अनुभवों को उन्होंने अपने उपन्यासों में भी लिपिबद्ध किया है। देशों के दृश्यों, वहाँ की जातियों और सभ्यताओं का वर्णन सजीव है। दोनों भाई अखबारों में भी काफी लिखते रहे। बूअर युद्ध छिड़ने पर, जेरोम ने अखबारों से तथ्य संग्रह कर 'दिंग्ली' उपन्यास की रूपरेखा तैयार की जिसे फिर दोनों भाइयों ने मिलकर लिखा। १९१२ के अक्तूबर महीने में जब तुर्की और मॉन्टीनिग्रो के बीच युद्ध छिड़ गया तो जेरोम युद्धस्थल पर रिपोर्टर के रूप में पहुँचे। लौट कर, अपने भाई के सहयोग से 'स्कुटारी का युद्ध' नामक पुस्तक लिखी। युद्ध अलबानिया में स्कुटारी की झील के समीप हुआ था। उनके कई उपन्यास रिपोर्टिंग की शैली में ही लिखे गये हैं। फ्रेंच मोरक्को और यहूदियों की जैसी सामाजिक समस्याओं को भी उन्होंने कुछ उपन्यासों का आधार बनाया। उन्हें गॉनकूर तथा फ्रेंच अकादमी के पुरस्कार मिले और कुछ साल बाद वे फ्रेंच अकादमी के सदस्य भी बनाये गये।

सिदोनी गेब्रिएल कॉलेट् (१८७३-१९५४) की दुनिया इंद्रियों की दुनिया है। उनके उपन्यासों के चरित्र भाग्य को आत्म-समर्पण कर अपनी सहज बुद्धि का अनुसरण करते हैं। वे अपने आवेगों के दास हैं और कोई आध्यात्मिक सहारा न होने के कारण असहाय एकाकीपन में मारे-मारे फिरते हैं। मानवता के इन विषादपूर्ण नमूनों को कॉलेट ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है और ऐसी मौलिक तथा इंगित पूर्ण शैली में जिसकी प्रशंसा में सभी एकमत हैं। पशु और प्रकृति के उनके वर्णन

का जोड़ आधुनिक फ्रेंच साहित्य में नहीं मिलता। इन्हें समझने की उनकी क्षमता अद्भुत है।

उनकी कृति मुख्यतः आत्मगत है। क्लोडीन उपन्यास माला ('क्लोडीन आ लेकोल' आदि) की कथावस्तु उनकी आत्मकहानी ही है; बचपन और विवाहित जीवन के पहले कुछ वर्षों की स्मृतियों से विजड़ित। ये उपन्यास पति, पत्नी दोनों ने मिलकर लिखे थे। अपने पति, संगीतसमालोचक "विली" से जुदा होने के बाद उन्होंने कुछ समय तक एक संगीतालय में नर्तकी के रूप में काम किया। इन दिनों की स्मृतियों को उन्होंने 'ला व्हागाबॉन्द' आदि उपन्यासों में रूपित किया है। दूसरी शादी के बाद उनकी साहित्यिक प्रतिभा और भी निखरती गयी है। 'सीदो' में उनके बचपन की स्मृतियों के साथ उनकी माता का चित्र अनुपम है। 'चेरि' और 'ला पेंद चेरि' का दृष्टिकोण बहुत कुछ वस्तुगत है। एक मध्यवयस्का दरबारी नारी और एक मेरुदण्डहीन युवक के अवैध प्रेमसंयोग की परिणति करुण, परन्तु भावुकताविहीन है, जो विषाद-नाट्य से बहुत दूर नहीं है। 'ला पै शे ले बीत' (पशु गृह की शान्ति), "ला शा (बिल्ली) और 'ल केपी' (१९४३) उनके अन्यान्य उपन्यास हैं।

पिएर लोती (१८५०-१९२३) ने अपने नाविक-जीवन में अनेक देशों का भ्रमण किया। उनके उपन्यासों में भी प्रायः विदेशी हवा बहती है। ये उपन्यास भी लोती के निजी अनुभवों के रूपान्तर ही हैं। 'आजियादे' कुसतुनतुनिया में एक तुर्की लड़की से उनकी प्रेम-कहानी है। अन्त होता है दुःखमय जुदाई में, लेकिन जहाँ जाति-धर्म की बाधाएँ हैं वहाँ मिलन भी तो क्षण-भंगुर ही है। इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यासों या भ्रमण-कहानियों में चीन, जापान, ईरान, भारत, मिस्र आदि देश समाये हुए हैं। इन देशों की वर्णन में निपुणता है, परन्तु आज की भ्रमण-कहानियों के आगे वे फीकी जान पड़ती हैं। अपने साहित्यक जीवन के प्रारम्भ में ही उन्होंने रोजनामचा लिखना शुरू किया था जो उनकी साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि में बहुत काम आया। उनकी सारी कृतियों को उनकी मर्मस्पर्शी

पुस्तक "ल लिव्ह्र द ला पितिए ए द ला मॉर" शीर्षक के अन्तर्गत डाला जा सकता है। इस शीर्षक का अर्थ "अनुकम्पा और मृत्यु की पुस्तक" है। उनकी अनुकम्पा जीव मात्र के दुःख के लिए है, चाहे वे मनुष्य हों या पशु। परन्तु भावकुता में वे शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लेते, सत्य और सुरुचि की सीमा का उल्लंघन नहीं करते। १८९१ ई० में पिएर लोती फ्रेंच अकादमी के सदस्य चुने गये।

आलैं फूरनिए (१८८६-१९१४) की एक मात्र सम्पूर्ण पुस्तक, 'ल ग्राँ मोलने' एक उदाहरण स्वरूप है कि फ्रेंच साहित्य केवल परिणत वयस्क व्यक्तियों के लिए ही नहीं है, जैसा कि प्रायः लोगों की धारणा है। यह पुस्तक वयस्क, तरुण या किशोर सभी को आनन्द देने योग्य है। पिछली शतियों में भी फ्रेंच साहित्य में ये उदाहरण मिलते हैं, परन्तु बीसवीं शती में यह एक सुप्रतिष्ठित धारा बन गयी है। तरुण चरित्रों में ही पुस्तक की मुख्य दिलचस्पी है। प्रकृतिवादी उपन्यास से पूर्ण परितृप्त तथा खिन्न मानस में यह आश्चर्य का बोध उत्पन्न करती है जो ग्रामीण जीवन की सरल सुखद प्रतिमाओं में घुल-मिल जाता है। इस मौलिक मिश्रण से छनकर जो सूक्ष्म सारतत्त्व निकलता है वह है महानता की पुकार, उच्चादर्श का सम्मोहन मन्त्र। रोमांस और वीरता का उत्तेजक वायुमण्डल उपभोग्य है, परन्तु वास्तविकता से विच्छिन्न नहीं है। उद्देश्य, आदर्श और आशा-हीन जगत् के कटु दृष्टिकोण का अभाव, जिसके बिना, अनेक फ्रेंच लेखकों की धारणा के अनुसार, जीवन का कोई चित्र ग्राह्य नहीं हो सकता, इस उपन्यास की प्रशंसनीय विशेषता है। प्रथम महायुद्ध में आलैं फूरनिए की मृत्यु हुई। प्रथम महायुद्ध में ही एमिल क्लेरमां की मृत्यु हुई। उनके उपन्यास 'आमूर प्रॉमी' और 'लोरे' आदर्शवादी उपन्यास के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अपने औपन्यासिक चरित्रों के आध्यात्मिक विकास के विश्लेषण की प्रवृत्ति उनकी विशेषता है।

नाटक

प्रतीकवादी नाटककार के रूप में मेटरलिंक की ख्याति का उल्लेख

पहले ही किया जा चुका है। वे और क्लोडेल, दोनों प्रतीकवादी नाटक के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। परन्तु क्लोडेल परवर्ती युग के हैं। प्रारम्भिक काल में प्रतीकवाद ने थोड़े-से ही नाटककार पैदा किये। नाट्य-क्षेत्र में प्रतीकवाद के प्रवेश के मार्ग में फ्रेंच समालोचकों ने भी, विशेष कर फ्रांसिस्क सास ने, काफी बाधा डाली। रंगमंच के दर्शकों को भी यथार्थवादी नाटक अधिक पसन्द था और मनोवैज्ञानिक नाटकों ने कुछ दिनों तक अपना रंग बनाये रखा। इस प्रवृत्ति के और इस काल के प्रतिभाशाली नाटककारों की संख्या भी कम नहीं है। शक्तिशाली सांवेगिक संघर्षों के प्रयोगकारी के रूप में हेनरी बेर्नस्टाइन (१८७६-१९५३) का नाम पचास वर्षों तक पेरिस की जनता में कायम रहा। अन्य नाटककारों में हेनरी बातेल, मोरिस दोने, हांरी लाव्हदां और जार्ज द पोर्टोरिश के नाम उल्लेख योग्य हैं। लेकिन नाट्यकला की समृद्धि या नवीनता के लिए उनकी कोई विशेष देन नहीं है। उनकी योजनाएँ, सनातन काल से चले आ रहे पति-पत्नी-प्रेमिक के त्रिकोण में ही आबद्ध हैं।

कुछ ने, स्वल्पाधिक, नाट्यकला को नयी शक्ति प्रदान करने की चेष्टा की, परन्तु उनकी चेष्टाओं की विभिन्नता में ही उस युग के अव्यवस्थित चित्त का परिचय मिलता है। दूसरी ओर वैदेशिक प्रभावमिश्रित प्रतीकवादी सारतत्त्व भी कुछ नाटकों में प्रकट होने लगा। थोड़े से लोग फ्रांसोआ द कीरेल के विचार-नाटकों के प्रशंसक थे। कीरेल ने 'ला नूव्हेल आइडॉल' आदि नाटकों में वीर रस में सने अपने नायकों के विवेक या चेतना का सामना कराया। उनके तथा पॉल हरव्हये और यूजीन ब्रिये के नाटकों (ले तरनेइए, ला रोब रूज) को समस्या-नाटक का नाम दिया जा सकता है। हरव्हये और ब्रिये अपने नाटकीय चरित्रों के मुँह से परिवार और समाज के संबंध में अपने विचार कहलवाते हैं। निर्मम यथार्थवाद के प्रतिनिधि के रूप में जूल्स रनार को उनके समय में व्यतिक्रम स्वरूप देखा जा सकता है। "निर्देशक सिद्धान्तों, नैतिक समस्याओं और आध्यात्मिक कुहरे को मैं चुटकियों से उड़ा देता हूँ", ये उन्हीं के शब्द हैं। उनके नाटक

स्वयं उनके जीवन और व्यक्तित्व के विश्वसनीय प्रतिबिम्ब हैं। "पोआल द कारॉट्" और 'ला विगॉट्' में उनके बचपन की घटनाएँ हैं; 'ल प्लेजीर द रॉम्पू' आदि में पेरिस में उनके भावुकता-पूर्ण, श्रमशील यौवन काल का चित्र है; 'ल पैं द मेनाज' में उनके शान्तिमय बुर्जुआ जीवन का नक्शा है। 'ला बिगॉट' में तो उन्होंने अपनी माता का भी व्यंग्य चित्र खींचा है।

उस समय के सुखान्त नाटक आज भी बहुत अंश तक सुखद हैं। दो नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं—त्रिस्तां बर्नार और जॉर्ज कुर्तलैं। त्रिस्तां सुखान्त नाटक की प्राचीन परम्परा के ही अनुयायी हैं परन्तु हँसाने की उनकी क्षमता अद्भुत है। 'त्रिप्लपात्' का नायक अनेक मित्रों के बहुविध परामर्शों के बीच अपने विवाह के संबंध में कोई निर्णय नहीं कर पाता। कुर्तलैं वास्तविक हास्यरस का संचार करते हैं। कोई क्षुद्र व्यक्ति नौकरशाही और कानून के विरुद्ध जूझ रहा है, तो कोई मूर्ख जवान समान मूर्खतापूर्ण सामरिक नियम-कानूनों से संघर्ष करता है या घरेलू कठिनाइयों में ही हँसी की सामग्री इकट्ठी हो जाती है।

एडमॉन्ड रोस्तां की अपनी अलग ही श्रेणी है। इस युग के वे अकेले नाटककार हैं जिन्होंने मोटे तौर पर रोमान्टिक परम्परा को अपनाया है। 'साइरानो द बरजराक' की ख्याति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसमें उन्होंने सत्रहवीं शती के स्वच्छन्दतावादी लेखक को नाटकीय चरित्र चुना है और उसे प्रेमी, कवि, अद्भुत नाकवाले, तलवार चलाने वाले के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके साथ उन्होंने एक सुन्दर परन्तु वधिर उपनायक को जोड़ दिया है और असादृश्य बढ़ाने के लिए एक सुन्दरी सुसंस्कृत नायिका को इनके बीच डाल दिया है। इस परिस्थिति पर डूमा के 'तीन बन्दूक धारी' का रंग चढ़ा कर, ह्यूगो के [illegible]ग्वैदध्य और मीजे की हलकी भावुकता का अवलम्बन कर ऐसा नाटक खड़ा किया है जो अपनी बिरादरी से अलग खड़ा होकर अपनी पृथक्ता की घोषणा करता है। लेकिन उनके अन्यान्य नाटक इसके समीप भी नहीं पहुँच पाते।

१८९३ ई० से लुइए पो के "तिएद्र् द लेव्ह् र्" ने प्रतीकवादी नाट्यकला को विशेष अवसर प्रदान किया, यद्यपि पॉल फोर के "थियेटर दार" में भी प्रतीकवादी नाटकों के अभिनय किये गये थे। यह आंतोआं के प्रकृतिवादी "थियेटर लिब्र" का जबाव था। पो के रंगमंच ने मेटरलिंक के अतिरिक्त इबसेन आदि नॉरवेजियन नाटककारों के दार्शनिक प्रतीकवाद को लोकप्रिय बनाया और मोटे तौर पर बौद्धिक तथा प्रायोगिक नाट्यकला को प्रोत्साहन दिया। इन विभिन्न प्रभावों से फ्रेंच जनता की रुचि भी धीरे-धीरे बदलती गयी और आधुनिक नाटक के लिए मार्ग प्रशस्त होता गया।

पैंतालीसवाँ अध्याय

चिन्तक, निबन्ध-लेखक और समालोचक

हांरी बेर्गसॉ (१८५९-१९४१) ने मानसिक क्रिया का सम्पूर्ण नया दृष्टिकोण उपस्थित किया। "अन्तश्चेतना के धारा-प्रवाह" की प्रतिमा तथा उपमा के द्वारा इस क्रिया का उन्होंने बोध कराया। मानस-जीवन के इस क्रान्तिकारी दृष्टिकोण ने न केवल दार्शनिक दुनिया बल्कि साहित्य और कला की दुनिया पर भी आक्रमण किया। अपने दर्शन को उन्होंने प्रांजल, लालित्यपूर्ण और कलात्मक भाषा में व्यक्त किया है और वे स्वयं साहित्य के एक युग के अभिन्न अंगस्वरूप हैं।

अपनी सहज बुद्धि से बेर्गसॉ को यह झलक मिली कि विश्व के संबंध में यान्त्रिक व्याख्या और मनुष्य की साधारण क्रियाएँ "समय" या काल के विषय पर जिस धारणा को लेकर चलती हैं, उसकी, अन्तश्चेतना की तात्कालिक अनुभूति से कोई संगति नहीं है। अन्तर्दृष्टि से हम जिस समय का प्रत्यक्ष करते हैं वह घड़ी के द्वारा समान अंशों में विभाजित समरूप, परिमाण बोधक पदार्थ नहीं है। जीवन द्वारा अतिवाहित समय अथवा अनुभव-काल अनियमित, गुणात्मक और अविभाज्य है। घड़ी का समय प्रतीक मात्र है जिसकी कल्पना स्थान, विस्तार आदि धारणाओं के सहारे की जाती है, और ये धारणाएँ एकाग्रमुखी रूप को विस्तार के रूप में परिणत करती हैं; जीवनी-शक्तिसम्पन्न वस्तु को निर्जीव वस्तु में और आध्यात्मिक रूप को पार्थिव रूप में परिणत करती हैं। विश्व की यन्त्रवत् कल्पना में हम जोड़ की कारीगरी से विभिन्न अंशों को जोड़कर सम्पूर्णता का रूप देते हैं। इसके स्थान में बेर्गसॉ ने स्वाभाविक एकता और अबाध प्रवाह

की कल्पना को प्रयुक्त किया जिन्हें कृत्रिम रूप से ही विभाजित किया जा सकता है। इस कल्पना के अनुसार सम्पूर्ण ही मूल है, अंश तदुत्पन्न मात्र है। बुद्धि का कार्य अंशों का प्रत्यक्ष करना है और इसके आधार पर अंशों की कार्य-प्रणालियों के संबंध में एक सिद्धान्त खड़ा करना है। सहज बुद्धि का कार्य समग्र या सम्पूर्ण का प्रत्यक्ष करना है। समग्र के सम्पर्क में आकर सहज बुद्धि को जो अनुभूति होती है वह बहुत कुछ रहस्यमय है। फ्रांस में फ्रॉएड के मनोविज्ञान और अन्तश्चेतना के सिद्धान्त का प्रचार बेर्गसॉं के विचारों के प्रकाशित होने के बाद ही हुआ।

बेर्गसॉं का कहना है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है और बाहरी कारण मिलकर उसे कोई कार्य-विशेष करने को बाध्य करते हैं, यह ऊपरी दृष्टि से सही जान पड़ता है, परन्तु मनुष्य का मानस स्वतंत्र रूप से कार्य करने में समर्थ है, इसका प्रमाण प्रयोग के द्वारा मिलता है और सहज ज्ञान इसे प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध करता है। "एसे सीर ले दॉने इमीडिएट द ला कॉंसिआंस" का ('समय और स्वतंत्र इच्छा' के नाम से इसका अंग्रेजी अनुवाद किया गया है) यही प्रतिपाद्य विषय है। 'मातिएर ए मेमोआर' (पदार्थ और स्मृतिशक्ति) में वे इस पर बल देते हैं कि अतीत की हमारी स्मृतियाँ हमारे अस्तित्व में घुल-मिलकर सदा हमारे साथ रहती हैं। दूसरे शब्दों में मानस, चेतना का अविराम प्रवाह होने के कारण, कुछ भूलता नहीं है, बीते कल और आज में कोई प्रभेद नहीं करता, जब कि मस्तिष्क, जिसे स्मृति का आलय समझा जाता है, चुनाव का साधन मात्र है। जो हमारे लिए आवश्यक नहीं है, मस्तिष्क उसे अलग कर रखता है और विस्मृति के गर्भ में डाल देता है। "लेव्होलीसिओं क्रिआत्रीस" (सर्जनात्मक विकास) में मन अविमिश्र शक्ति रूप है—"एलां व्हिताल"—जो हजारों रूपों की सृष्टि करता रहता है, और विकास गतिशील वृद्धि है। "धर्म और नैतिकता के दो मूल" में धर्म और नैतिकता के विस्तृत क्षेत्र पर आविष्कार और सहज बुद्धि का राज्य है। नियमानुगामी नीति का व्यवस्था समूह को खतरों से बचाने के लिए ही की गयी है, परन्तु धर्म दिव्य-दर्शन है जिसके द्वारा सभी

देश और काल के ऋषियों ने आध्यात्मिक जगत् से अपने रहस्यपूर्ण संबंध का बोध किया है। मनुष्य में जो कुछ यान्त्रिकता का स्मरण करानेवाला है, उसके हास्यात्मक रूप को बेर्गसाँ ने 'ल रीर' (हास्य) में प्रकट किया है।

बेर्गसाँ ने विचार और चिन्तन का एक नया युग प्रारंभ किया। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जगत् को उनके विचारों ने प्रभावित किया। फ्रेंच साहित्य में उनके विचारों का प्रवेश पेगुई और प्रूस के जरिए, साहित्यिक समालोचना में थिबोदे के जरिए, सौन्दर्य शास्त्र में तांक्रीद द व्हिजां के जरिए, समाज शास्त्र में मोरिस हॉलबाख के जरिए, यहाँ तक कि समाजवादी सिन्डिकैलिज़्म में भी उन विचारों का प्रवेश जॉर्ज सोरेल के जरिए हुआ। साहित्य क्षेत्र में ये विचार तत्काल निर्णायक उपादान नहीं बन सके इसका कारण यह था कि वह युग ही विविधता का युग था, एकरूपता का नहीं।

रोमें रोलां (१८६८-१९४४) और शार्ल पेगी (१८७३-१९१४) ने अपने युग की अनिश्चितता के बोध और नैतिक तथा सामाजिक समस्याओं के संबंध में विचारों की अराजकता को दूर करने का प्रयास किया। अपने समय में सन्तुलन और स्वास्थ्य के विरुद्ध खतरे का उन्होंने गहराई के साथ अनुभव किया, इसलिए नैतिकता को ही उन्होंने अपनी पुस्तकों का विषय चुना। प्रथम महायुद्ध के पहले रोमें रोलां नवीन उदारता और महान् दृष्टि लेकर सामने आये। स्वभाव से वे आदर्शवादी जीवनी-लेखक हैं। अपने नायकों के जीवनी में वे मानवता की खोज करते हैं, सर्वोच्च स्तर पर भ्रातृभाव का अन्वेषण करते हैं और मानव-जाति के भविष्य के लिए आशा बाँधते हैं। जिन जिन जीवनी को उन्होंने चुना—बीटहोफेन, माइकेल एंजेलो, टॉल्स्टॉय, गान्धी, रामकृष्ण, विवेकानन्द—उन्हीं से यह स्पष्ट हो जाता है। भारतीय दर्शन में उनकी दिलचस्पी और सोवियत यूनियन के संबंध में उत्साह दोनों समसामयिक हैं। लेनिनवाद और गान्धीवाद के समन्वय की उनकी चेष्टा में उनकी अनासक्त अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रेरणा का परिचय मिलता है और इसी प्रेरणा ने प्रथम महायुद्ध के समय उन्हें शान्तिवादी

बनाया। उन्होंने एक पुस्तिका प्रकाशित की, 'युद्ध से परे', जिसके कारण उन्हें फ्रांस परित्याग कर स्विटजरलैंड में आश्रय लेना पड़ा।

पेगी की पत्रिका "काहीर द ला कैंजेन" में ही वे पहले पहल औपन्यासिक के रूप में सामने आते हैं। इसी पत्रिका में उन्होंने अपना बृहत् और प्रसिद्ध उपन्यास 'जां क्रिस्तोफ' धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया। इसे भी उनके जीवन-चरित्रों के प्रसार के रूप में देखा जा सकता है यद्यपि इसे उन्होंने कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसका कल्पित नायक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ है जिसका जन्म हुआ फ्रांस और जर्मनी के सीमांतवर्ती राइनलैंड में। इस प्रकार दोनों देशों के श्रेष्ठतम बीजों के मिलन का वह प्रतिनिधि स्वरूप है; एक बेचैन पीढ़ी का संकट स्वरूप और यूरोप की नयी सभ्यता की आशा का प्रतीक रूप है। यह विचारमूलक नहीं, प्रत्युत विशुद्ध अनुभूति-विषयक उपन्यास है। 'लाम आंशांते' (विमोहित आत्मा) उपन्यास-त्रय आवेगपूर्ण प्रेम का सामर्थ्यशाली अध्ययन है। 'कोला ब्रेइओं' आदि आधे दर्जन छोटे उपन्यास, आत्म-जीवन संबंधी कुछ लेख, संगीत-संबंधी निबन्ध और जन-नाटक की स्थापना का असफल प्रयास, ये रोलां की कृति के अवशिष्टांश हैं। उनकी पुस्तकों ने आदर्शवाद की ज्योति जगायी, लेकिन कलात्मक दृष्टि से वे त्रुटिहीन नहीं है।

आदर्शवादी समाजवादी पेगी जन्मना नैतिकवादी थे और जीवटदार मनोवृत्ति के कारण, परिपूर्ण विद्रोही। वे सदा अपने को स्वतंत्र विश्वास-वादी ही कहा करते थे, लेकिन एक समय आया जब उन्होंने अनुभव किया कि वास्तव में वे ईसाई ही थे। परन्तु उनके कैथलिक विश्वास में कट्टरपन नहीं था। अपनी पत्रिका काहीर में उन्होंने कलुषित सभ्यता और नैतिक अराजकता आदि, फ्रेंच जीवन को क्षत-विक्षत करनेवाले घावों के विरुद्ध संग्राम छेड़ दिया। राजनीतिज्ञों के विरुद्ध उनके संग्राम का बहुत अधिक प्रभाव तो नहीं पड़ा, लेकिन "काहीर" को उन्होंने आनेवाले लेखकों के लिए एक पौधाघर स्वरूप बना दिया। देवी "जोन दार्क" पर लिखी गयी उनकी दो नाट्यकविताएँ उनके रहस्यमय देशानुराग की प्रतीक स्वरूप हैं। उनके

संक्रामक आदर्शवाद ने उन्हें फ्रांस के आध्यात्मिक गुरुओं में से एक बना दिया है। उनका काव्य नाटक, प्रबंध-काव्य का प्रतिबिम्ब और धार्मिक भजन तीनों की संमिलित उपज है। इस काव्य के छन्द प्रेरणा-प्राप्त बलिष्ठ किसान की धीमी गति से चलते हैं। शब्दों और विचारों का दुहराना इस काव्य की विशेषता है। परन्तु पुनरावृत्ति और आलेक्ज़ान्ड्रीन मात्राओं की एकरसता के बावजूद इसमें कल्पनाशील काव्यगुण की कमी नहीं है।

इसी युग में यहूदी जेनरल ड्राइफुस के विरुद्ध विख्यात मुकदमा चलाया गया। फ्रांस के लेखक ड्राइफुस-समर्थक और यहूदी-विरोधी दो दलों में विभाजित हो गये। मुकदमे की प्रतिक्रिया के रूप में उग्र कैथलिकवादी, यहूदी-विरोधी आन्दोलन चल पड़ा। लोकतान्त्रिक भ्रष्टाचार के कारण फ्रांस का विनाश हो रहा है, इस धारणा का पोषण करनेवाले कैथलिकों के लिए यह आन्दोलन केन्द्र स्वरूप बन गया। बूरबों राजशासन की पुनः प्रतिष्ठा इस आन्दोलन का घोषित उद्देश्य था। इस "आक्सिओं फ्रांसेज़" आन्दोलन के जन्मदाताओं में एक थे शार्ल मोरास (१८६८-१९५३)। रोमांसवाद और प्रतीकवाद, रूसो और फ्रेंच क्रान्ति सभी के वे विरोधी थे। परिवार के परम्परागत आधार पर सार्वजनिक नैतिकता का सुधार होना चाहिए—यह उनका सिद्धान्त था। जर्मन दर्शन और काव्य के प्रभाव से फ्रांस को मुक्त करना उनका लक्ष्य था और क्लासिक सिद्धान्त का उदाहरण सामने रख कर कला को असंलग्नता के दोष से बचाना उनकी चेष्टा थी। अपनी कविताओं में उन्होंने एकोल रोमान और पारनेसियन नमूने को सामने रखा है। दैनिक समाचारपत्रों में उन्होंने काफी लेख लिखे, राजनीतिक प्रचारपुस्तिकाएँ लिखीं, कहानियाँ लिखीं और साहित्यिक समालोचना भी की। साहित्य के सामाजिक और नैतिक महत्त्व में ही उनकी स्वभावतः विशेष दिलचस्पी थी।

मॉरिस बारे (१८६२-१९२३) का कई स्थानों में मोरास से सैद्धान्तिक मेल है, परन्तु मुख्यतः वे घोर व्यक्तिवादी हैं। उनके प्रथम उपन्यास-त्रय का नाम ही हैं 'ल कल्ट् द मोआ' (अहम् का उत्कर्षसाधन)। ये तीनों

उपन्यास हैं—'सू लोईल ले बारबेर', 'ऑं नॉम् लिब्र' और "ल जारदें द बेरेनिस्"। इनका विषय है एक नवयुवक के अन्तर्जीवन का मनोहर परीक्षण, जो एक ही वास्तविकता को स्वीकार करता है और वह वास्तविकता है वह स्वयं। इन उपन्यासों में भोग-विलास ही जीवन का आदर्श है यद्यपि वह रुचि-गर्हित नहीं है। परन्तु बारे कुछ रख-ढककर नहीं कहते, उनकी व्याख्या में ताच्छील्यपूर्ण स्पष्टता है। परन्तु यहीं उनकी विचार-धारा का मोड़ भी स्पष्ट है। इन उपन्यासों का अहंवादी नायक समाज के संबंध में चिन्तन करता है और उपलब्धि करता है कि जिन अन्य लोगों से वह घृणा करता है उनसे सम्पर्क स्थापित किये बिना वह अपने व्यक्तित्व को समृद्ध नहीं कर सकता, उसका उत्कर्ष-साधन नहीं कर सकता।

यह ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद कि व्यक्ति की आत्मा सामूहिक आत्मा पर निर्भर है, मॉरिस बारे पहले अपनी व्यवितगत सीमाओं को स्वीकार करते हैं, फिर उनमें यह विश्वास उत्पन्न होता है कि सहज बुद्धि युक्ति तथा तर्क से ऊपर है और अन्त को वे इस परिणाम पर उपस्थित होते हैं कि प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय परम्पराओं के प्रति श्रद्धा को पुनर्जीवित करने से ही फ्रांस की शक्ति की पुनःप्रतिष्ठा हो सकती है। इस प्रकार विशुद्ध व्यक्तिवाद से प्रादेशिकता और राष्ट्रीयता के स्तर पर उनका विकास होता है। उनके जीवन-दर्शन के इस नये पहलू को रूप मिला है उनके द्वितीय उपन्यास-त्रय में। उपन्यास-त्रय का शीर्षक है—"राष्ट्रीय शक्ति के उपन्यास"। ये उपन्यास हैं 'ले देरासिने', 'लापेल ओ सोलदा' और 'ल्येर फ़िगर्'। 'ले देरासिने' प्रायः सिद्धान्तवादी उपन्यास है। बारे प्रमाणित करना चाहते हैं कि फ्रेंच शिक्षा-प्रणाली व्यक्ति को प्रादेशिक वातावरण से विच्छिन्न कर देती है जब कि प्रादेशिकता ही स्वाभाविक रूप से प्रसारित होकर परिपूर्ण राष्ट्रीयता में परिणति प्राप्त करती है। यह उपन्यास सात लोरेन निवासियों की (बारे स्वयं लोरेन प्रदेश के निवासी थे) कहानी है जो जीवन में असफल इसलिए होते हैं कि कालेज की शिक्षा ने उनका मूलोच्छेद कर दिया है।

मॉरिस बारे औपन्यासिक ही नहीं, बल्कि निबन्धकार, पत्रकार और राजनीतिज्ञ भी थे। वे फ्रेंच पार्लमेण्ट के सदस्य चुने गये थे। 'लापेल दी सोलदा' और 'ल्येर फ़िगर' में उन्हें सार्वजनिक जीवन के अपने अनुभवों से प्रेरणा मिली है।

उनका तीसरा उपन्यास-त्रय 'ओ सर्विस द लालेमान', 'कॉलेट् बोदोश' और 'ल जीनी द रैं' राष्ट्रीय-शक्ति उपन्यासों का उपसंहार है। बारे को कभी यह भूला नहीं कि १८७० ई० में जब वे कुल आठ वर्ष के थे जर्मनी ने फ्रांस के कुछ अंश पर कब्जा कर लिया था और स्वयं उनके पिता और पितामह को भी जर्मन सैनिक बन्दी कर ले गये थे। जो आग उस समय उनके हृदय में सुलग रही थी इस उपन्यास-त्रय में वह आग धधक उठती है। ये उपन्यास देशानुराग से परिप्लुत हैं। प्रथम महायुद्ध के समय राष्ट्रीय शक्ति को प्रोत्साहित करने में इन उपन्यासों का भी कुछ भाग था, यह निःसन्देह है। भ्रमणकहानी, पार्लमेन्ट में दिये गये उनके भाषणों का संकलन और प्रथम महायुद्ध का इतिहास आदि उनकी अन्याय कृतियाँ हैं। उनकी व्यंजना तो शक्तिशाली है ही, उनकी शैली में भी नवीनता है। कल्पित कहानी आत्म-जीवनी, विचार-चिन्तन और कहावतों का ऐसा सूक्ष्म मिश्रण है जो बीसवीं सदी के अविशेष साहित्य की ओर संकेत करता है।

आनातोल फ्रांस (१८४४-१९२४) में वोल्ट्येर और रनां दोनों की आत्माओं का निवास है—वोल्ट्येर का श्लेष और रनां की कोमलता। अपने समय में वे साहित्यसम्राट् गिने जाते थे, परन्तु आज उनकी ख्याति म्लान हो गयी है। प्रारम्भ से अन्त तक उनकी कृतियों का लहजा परिहास और श्लेषपूर्ण समालोचना का है। 'पेनगुइन पक्षियों का द्वीप', 'क्रैंकविये', 'इस्तोआर कॉन्ताम्पोरैं और विशेष रूप से 'फरिश्तों के विद्रोह' में उनका व्यंग्य उग्र भी है और सूक्ष्म भी। क्रैंकविये एक बूढ़ा अदरक बेचनेवाला है। ड्यूटी पर तैनात पुलिस वाला उसे आग बढ़ने का आदेश देता है, लेकिन वह आज्ञा का पालन नहीं करता। उसने अदरक बेची है और ग्राहकों से पैसा लेने के लिए वह खड़ा रहता है। मजिस्ट्रेट इसकी सुनवाई नहीं करता और

इसे पन्द्रह दिन की कैद की सजा मिलती है। सजा काटकर छूटने पर वह देखता है कि उसके ग्राहक दूसरे फेरीवाले के ग्राहक बन गये। उसकी गरीबी बढ़ती ही जाती है और आजिज़ आकर वह सोचता है कि जेल ही उसका एक मात्र आश्रय हो सकता है। इस खयाल से वह एक पुलिसवाले का बेहद अपमान करता है। लेकिन पुलिस वाला उसे पानी में भींगते छोड़ मुसकराकर चला जाता है। परन्तु 'सिल्वेस्त्र बॉनार', 'जेरोम कोंयार', 'मॉसिए बरजरे' आदि उनके उपन्यास अधिक सुखद जान पड़ते हैं, क्योंकि इनमें लेखक के व्यक्तित्व की झाँकी मिलती है। 'ला रोतीसरी द ला रेन पेदोक' में आबे कोंयार कहता है—"मैं तो मानवाधिकार के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करता, क्योंकि मनुष्य और गुरिल्ला में प्रभेद की रेखा इसमें अतिशय स्पष्ट है और अनुचित भी।" नीतिवादी और समालोचक के रूप में उनका सर्वोत्तम प्रकाश हुआ है 'ला जारदें देपीकीर' और 'ला व्ही लितरेर' में। "जारदें" में अधिकांश छोटे-छोटे टुकड़े हैं। एक टुकड़े में वे एक कुत्सित कूबड़े की रूपवर्णना करते हैं और अन्त में जोड़ देते हैं कि वह निविष्ट चित्त होकर आइने में अपना प्रतिबिम्ब देख रहा है। उनकी शैली में क्लासिक सरलता, स्पष्टता और विशुद्धता है और भाषा तो उनके चरणों की दासी है। 'थेइस', 'ल ली रूज' आदि में व्यंग्य तो है ही, परन्तु चमत्कार भाषा का है। जोला का अतिशय बल इनमें नहीं है और कामुकता भी है तो बौद्धिक कामुकता। मृदुस्वभाव फ्रांस में संघर्ष की भी शक्ति थी। समाज के प्रति व्यंग्य में ही उनकी शक्ति निःशोषित नहीं हुई। 'ला रवोल्त दे आंज़' (फ़रिश्तों का विद्रोह) में उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों को लिया है, परन्तु इससे भी आगे जोला के साथ हाथ मिलाकर उन्होंने जेनरल ड्राइफुस के विरुद्ध किये गये अन्याय का तीव्र प्रतिवाद किया। प्रसिद्ध फ्रेंच सोशलिस्ट जां ज़ोरे के वे मित्र और प्रशंसक बने और रूसी क्रान्ति का भी उन्होंने समर्थन किया। "जोन आर्व आर्क" की जीवनी में वे इतिहासकार के रूप में भी हमारे सामने आते हैं।

उन्नीसवीं शती के अन्त और बीसवीं शती के प्रारंभ में बहुसंख्यक फ्रेंच

समालोचक मैदान में आते हैं। पाठकों और पुस्तकों की संख्यावृद्धि और उच्च कोटि के सामयिक पत्रों की सफलता ने समालोचकों की एक पृथक् श्रेणी बनाने में योगदान किया। सिद्धान्ततः समालोचना का उद्देश्य पाठकों को पुस्तकों के चुनाव में पथ-प्रदर्शन करना था। वास्तव में अच्छे समालोचकों की रचनाओं का लोग आनन्द लेते थे, परन्तु संख्याबहुलता ने ही उनके प्रभाव को दुर्बल बना दिया और समालोचना के स्वीकृत मान के अभाव में अभिमतों ने स्वतंत्र तथा व्यक्तिगत रूप धारण किया, यद्यपि परंपरा और बहुजन-स्वीकृत मतों के आधार पर साहित्यिक सौन्दर्य संबंधी नियमों तथा मूल्यों को भी इसी समय विधिबद्ध किया जाने लगा था।

संरक्षणशील समालोचकों के नेता थे फर्डिनेन्ड ब्रिनेतिएर (१८४९-१९०६)। उनकी कुछ रचनाएँ हैं—'प्रकृतिवादी रोमांस', 'फ्रेंच नाट्य के युग', 'उन्नीसवीं शती के गीतात्मक काव्य का विकास', इत्यादि। वैज्ञानिक सिद्धान्त और बुद्धिवाद का एक जटिल मिश्रण उनकी समालोचना का शस्त्र था। सैं बव्ह के व्यक्तिगत विश्लेषण के उपाय को उन्होंने स्वीकार किया, साथ ही टेन की भाँति, सामाजिक उपादान और विकासवादी दृष्टिकोण पर भी उन्होंने बल दिया। इनके अलावा दो और सिद्धान्तों का वे प्रतिपादन करना चाहते थे—एक यह कि मानव-समाज की तरह साहित्य में भी जातियाँ हैं, दूसरा यह कि लेखकों की साहित्यिक पसंद उनके राष्ट्रों की चारित्रिक विशेषताओं द्वारा प्रेरित है। इन सिद्धान्तों पर आधारित उनके अभिमतों में कठमुल्लापन होना स्वाभाविक ही था।

साहित्यिक इतिहास के क्षेत्र में गुस्टाव्ह लान्सॉं (१८५७-१९३४) अप्रतिद्वन्द्वी हैं। सर्जनात्मक प्रक्रिया की वास्तविक प्रकृति के संबंध में वे पूर्णतः सचेतन हैं और मौलिक गुणों को भी वे सहज बुद्धि से ग्रहण कर सकते हैं। उनका 'फ्रेंच साहित्य का इतिहास' प्रामाणिक है और 'आधुनिक फ्रेंच साहित्य की पुस्तकसूची' अपरिहार्य है।

पिएर लासेर, जूलियां बेन्दा और आलें (एमिल शार्तिएर) साहित्य के इतिहासकार इतने नहीं जितने कि पेशेवर और बद्धिवादी समालोचक हैं।

लासेर ने फ्रेंच रोमांसवाद की निन्दा के द्वारा हलचल पैदा कर दी। इसे उन्होंने फ्रेंच मानस का एक आधुनिक रोग बताया और राष्ट्रीय बुद्धि तथा स्वास्थ्य के लिए खतरा। वेन्दा बुद्धिवाद-विरोधी आन्दोलन के हर पहलू के कट्टर विरोधी हैं। 'बेलफेगॉर' और 'ला त्राहिसां दे क्लेर्क' में उन्होंने प्रतीकवादी कविता से लेकर बेर्गसॉं के दर्शन तक का विरोध किया है। आलें के बहुसंख्यक दो पृष्ठ वाले निबन्धों में ह्यूमेनिस्ट बुद्धिवादी की अन्तर्दृष्टि और तीक्ष्णता है। उनकी दो बड़ी पुस्तकें 'सिस्तेम दे बोआर्त' और 'मार उ ला गेर् जीज़े' विचारों को आन्दोलित करनेवाली हैं। वे पहले रूआं और बाद को पेरिस में स्कूल के शिक्षक थे और कई मेधावी छात्रों को, जिनमें आंद्रे मोरोआ भी एक थे, उन्होंने प्रभावित किया। उनकी शैली स्पष्ट, सफल परन्तु गाम्भीर्यपूर्ण है।

आनातोल फ्रांस और जूल लमेइत्र् जैसे समालोचक व्यक्तित्व के सूक्ष्म विश्लेषण का उद्देश्य लेकर पुस्तकों का मूल्यांकन करते हैं। उनका उपाय प्रभावात्मक है; श्रेष्ठ पुस्तकों में वे मानसिक यात्रा का साहसी अभियान करते हैं। आधुनिक अनुसंधान ने सिद्ध किया है कि प्रूस-जैसे प्रख्यात लेखक ने समालोचना को स्वयं अपने साहित्य की सृष्टि का अवलम्बन बनाया। प्रूस की दृष्टि में समालोचना का रूप मूल रचना का पुनःसर्जन है। यह लक्ष्य करने की बात है कि उन्होंने प्रसिद्ध समालोचक सैं बव्ह की भी अधिक विरोधी समालोचना की। समालोचकों के रूप में 'रेमी द गुर्मी और एमिल फार्गे' के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

दसवाँ भाग

प्रथम महायुद्ध से समसामयिक काल तक
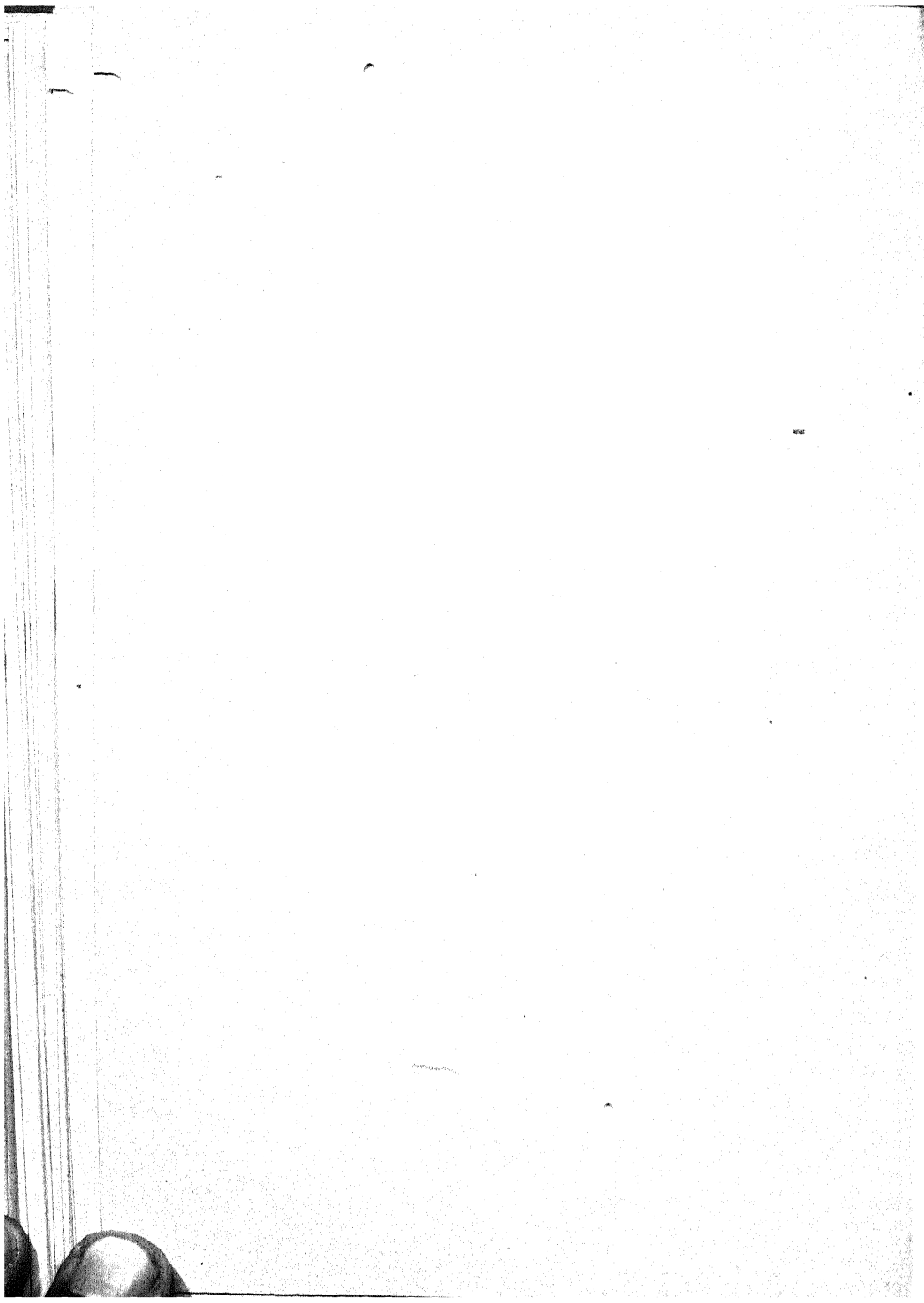
छियालीसवाँ अध्याय

नव विकास

प्रथम महायुद्ध के पहले ही फ्रांस के साहित्योद्यान में नये सुमन खिल उठे थे और इन पन्द्रह वर्षों के अन्दर ही कुछ प्रतिभाशाली लेखकों के आविर्भाव ने फ्रेंच साहित्य के नव-विकास की सूचना दी। ज़ीद, प्रूस, क्लोडेल आदि शक्तिशाली लेखकों ने उपन्यास को नयी प्रेरणा दी। एक नये ज्योतिष्क ने फ्रांस के काव्यगगन में विद्युत्-संचार किया। व्हालेरी की अद्भुत कृति 'ला ज्येन पार्क' सन् १९१७ ई० में प्रकाशित हुई। युद्ध के बाद से दस वर्ष तक फ्रेंच रंगमंच पर प्रतिभा का जो नया आलोक दिखाई दिया वैसा सौ साल के अन्दर देखा नहीं गया था। कोपो के "व्हिये कोलोम्बिए" रंगमंच ने नाट्य-जगत् में नया चमत्कार उपस्थित किया।

आधुनिक लेखकों में आंद्रे ज़ीद (१८६९-१९५१) का व्यक्तित्व अतिशय विवादास्पद है। ज़ीद मुख्यतः उपन्यास-लेखक नहीं हैं। वे हैं नीतिवादी और साहित्य तथा विचारों के समालोचक। वास्तव में उन्होंने अपनी एक ही पुस्तक, 'ले फो मोनाएर' को उपन्यास का नाम दिया है। परन्तु उनकी अनेक कृतियाँ उपन्यास ही हैं, या कहानियाँ। सत्य तो यह है कि उनके उपन्यास, नाटक, समालोचना तथा अन्य लेखों का वर्गीकरण कठिन है।

आंद्रे ज़ीद के पिता प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी थे और उनकी माता नॉर्मन कैथोलिक वंशज थीं जिन्होंने हाल में ही प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अवलम्बन किया था। इन दो धर्मों के विरोधी प्रभावों में उन्हें अपने बौद्धिक विरोधों का मूल दिखाई देता है और अपनी लेखनी प्रयुक्त करने का एक कारण भी।

लेकिन अपनी पत्नी से उनके सम्बन्ध से ही उनकी अधिकांश कृतियों का रहस्योद्घाटन होता है। उम्र में कुछ बड़ी अपनी चचेरी बहन से उनकी शादी का छोटा-सा इतिहास है। ज़ीद ने उसे एक दिन प्रार्थना के बाद रोती हुई अकेली पाया। उसने स्वयं ही रोने का कारण भी उसे बताया। अपनी माता के अवैध प्रणय की वही एक मात्र साक्षी थी, इससे वह नितान्त दुखी थी। ज़ीद ने मन ही मन उससे विवाह करने की ठान ली और दुःख से उसे मुक्त करने की प्रतिज्ञा कर ली। विवाह कर्तव्य-वश हुआ, प्रेम के कारण नहीं। प्रेम और कर्तव्य के बीच यह संघर्ष उनके जीवन के प्रायः अन्त तक चलता रहा। ज़ीद की हृदय-वृत्ति की भी विचित्र कहानी है। अपनी अप्राकृतिक प्रेम-प्रवृत्ति को न केवल उन्होंने स्वीकार किया है, बल्कि कुछ उपन्यासों का इसे आधार भी बनाया है। फ्रांस में उन्हें ऑस्कर वाइल्ड की ख्याति प्राप्त हुई और संयोगवश दोनों एक दिन अफ्रीक़ा में मिले भी। परन्तु ज़ीद ऑस्कर वाइल्ड से कहीं अधिक सत्यनिष्ठ हैं।

उनकी प्रथम किशोर-कृति भी 'ले काहीर दांद्रे वाल्टर'—धार्मिक उमंग और उभरती जवानी के धर्म के बीच संघर्ष की अभिव्यक्ति है। एक बार वे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति की लगाम ढीली छोड़ देते हैं और दूसरे ही क्षण कर्तव्य का अनुधावन करते हैं। यह उनकी कृतियों की विशेषता है। कुछ दिनों वे प्रतीकवादी दलों के बीच घूमते फिरते हैं। 'त्रेते दी नारसिस', 'तांतातिव्ह आमूरेस' आदि उपन्यासों में प्रतीकवाद की एक सूक्ष्म छाप मौजूद है। थोड़े ही दिनों बाद 'ले नूरीतीर तेरेस्त्र्' में उन्होंने इस छाप को बिलकुल मिटा दिया। जीवन का आनन्द-भोग और इन्द्रियों का उपभोग इसका दृष्टिकोण है। अगले बीस वर्षों में जिस समस्या की वे समीक्षा करते हैं वह है—"अपने को आजाद करना तुच्छ बात है, वास्तविक कठिनाई आजाद रहना है।" ज़ीद ने आजादी के हर रूप और उसकी कठिनाइयों का अध्ययन किया। उपन्यास हो या अन्यान्य लेख, उनकी गहरी दृष्टि जीवन के विरोधी तत्त्वों पर है, वह विरोध चाहे शरीर और आत्मा का हो, या समाज और व्यक्ति का हो, या क्लासिक संयम और रोमान्टिक

आत्माभिव्यक्ति का हो, चाहे वह विरोध ईश्वर और शैतान का हो। 'ला पोर्त एत्रोआत' (संकीर्ण द्वार) आध्यात्मिक कर्तव्य के प्रति आदर्शवादी आत्मोत्सर्ग के वातावरण में विकसित हुआ है। नायिका उग्र अपार्थिव आकर्षण से अपना सुख विनष्ट करती है और अपने प्रेमिक का सुख भी। वास्तव में यह स्वयं उनकी पत्नी का इतिहास है।

'लिम्मोरालिस्ट' में ज़ीद अप्राकृतिक प्रेम का प्रश्न उठाते हैं और 'कोरिदॉं' में तो वे इसका खुला समर्थन करते जान पड़ते हैं। परन्तु वास्तव में वे इस समस्या की वैज्ञानिक समीक्षा मात्र करते हैं, किसी मीमांसा पर वे उपनीत नहीं होते। लक्ष्य करने की बात यह है कि अनैतिकता का प्रचार उनका उद्देश्य नहीं है। साहसपूर्ण सत्यानुराग ही उनका वास्तविक आदर्श है। इसी आदर्श की प्रेरणा से उन्होंने अफ्रीका वर्ती फ्रेंच उपनिवेशवाद की तीव्र समालोचना की है। उनकी भ्रमण-कहानी 'व्होयाज ओ कांगो' और 'रतूर दी शाद' प्रकाशित होने के बाद इस विषय में फ्रेंच पार्लमेन्ट में प्रश्न किये गये। इसी आदर्श की प्रेरणा से वे कम्युनिज्म के प्रति आकृष्ट हुए, कम्युनिस्ट रूस के प्रबल समर्थक बन गये। परन्तु अपनी आँखों से रूस देख लेने के बाद उनकी भ्रान्ति दूर हो गयी। जिस मानस-स्वतन्त्रता की वे खोज कर रहे थे वह उन्हें रूस में नहीं मिली।

ज़ीद की कला-निपुणता प्रशंसा योग्य है। 'बेथसाबे' उच्च कोटि का नाटक है। 'जूर्नाल' (रोजनामचा) में यह कला सर्वोत्तम है। इसमें प्राकृतिक दृश्य, वस्तुओं और व्यक्तियों का वर्णन जिस प्रकार उन्होंने किया है उससे उनकी कल्पना-शक्ति का भी परिचय मिलता है।

मार्सेल प्रूस्त् (१८७१-१९२२) के उपन्यास 'आला रेशर्स दी तांप पेरदी' (अंग्रेज़ी अनुवाद 'अतीत की याद') का प्रकाशन आधुनिक फ्रेंच उपन्यास के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। चार पाँच हजार पृष्ठों में लिखा गया यह उपन्यास आत्मजीवनी भी है और उन्नीसवीं शती के अन्तिम तीस वर्ष और बीसवीं शती के प्रथम दशक के बीच के युग वाले फ्रांस के अभिजात और मध्यम वर्गों का अध्ययन भी है। इस उपन्यास में फ्रॉयेड

के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का स्पष्ट आभास मिलता है, परन्तु फ्रांस में फ्रॉयेड की पुस्तक का प्रथम अनुवाद हुआ १९२२ में। वास्तव में प्रूस्त् फ्रॉयेड के ऋणी नहीं हैं बल्कि प्रेरणा उन्हें बेर्गसॉं से मिली जिन्होंने फ्रॉयेड के सिद्धान्तों के लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया था।

'रेशर्स' की गति, लेखक के जीवन के भिन्न युगों के आवर्तन और आध्यात्मिक विकास पर निर्भर है। इसे समझने के लिए लेखक के जीवन का भी कुछ परिचय आवश्यक है। बचपन की रुग्णावस्था परन्तु इन्द्रियानुभूतियों के प्रति सजगता, परिणत अवस्था की मननशील, चिन्तान्वित प्रकृति, दुनिया में बेचन चलना फिरना और क्रमानुसार कई बार प्रेम के आकर्षण का अनुभव करना तथा अन्तिम प्रायः रोगाभिभूत अवस्था और अवकाश-प्राप्त जीवन—ये हैं लेखक के जीवन के भिन्न-भिन्न युग और उपन्यास के भिन्न-भिन्न अध्याय या खण्ड। इस आत्मजीवनी के साथ सामाजिक विकास का भी यथार्थ चित्र है—अभिजात वर्ग की अवनति, मध्यम वर्ग की समृद्धि और अन्त में मध्यम वर्ग को अभिजात वर्ग का आत्म-समर्पण।

सारा उपन्यास समय का खेल है। सम्भवतः समय ही प्रूस्त् का सबसे बड़ा और सबसे जटिल औपन्यासिक चरित्र है। बचपन में समय मित्र है। यह हमारे पास निश्चल शान्त खड़ा है और दुनिया हमारी है, हमारे उपभोग की वस्तु है। समय के साथ ही जीवन का छन्द भंग हो जाता है। दुःख के प्रथम अनुभव के साथ ही मन्थर गति से मृत्यु की ओर यात्रा आरम्भ हो जाती है। जो हमारे आयत्त में नहीं है उसे हम समझने की चेष्टा करते हैं। परन्तु बुद्धि निर्वासित अवस्था और विस्मृति के वातावरण में विचरण करती है। बुद्धियुक्त स्मृति की विशेषता भूलने में ही है, अतीत को पुनर्जीवित करने की क्षमता उसमें नहीं है। लेकिन हमारे अन्दर, गहराई में, एक और स्मृति भी है जिसे कुछ भूलता नहीं। यह अर्ध-चेतन स्मृति कभी स्वप्नों में अपने को अभिव्यक्त करती है और कुछ विरल मुहूर्तों में जाग्रत् अवस्था में भी। इन विरल मुहूर्तों में, जब कि वर्तमान आकस्मिक स्वाद, गन्ध या ध्वनि से अतीत की स्मृति जाग उठती है, अतीत और वर्तमान एकाकार हो जाते हैं।

प्रूस्त् के लिए प्रेम कल्पना की व्यक्तिगत सृष्टि है, यहाँ तक कि प्रेम के पात्र की उपस्थिति में यह पनप नहीं सकता। इसे कायम रखने के लिए गैर मौजूदगी, पहुँच की कठिनाई या उत्तर देने की अस्वीकृति आवश्यक है। या फिर यह संशय हो कि प्रेम का पात्र दूसरा कोई बन रहा है, जिससे ईर्ष्याजनित वासना उत्पन्न हो तो भी प्रेम बना रह सकता है। प्रूस्त् के "अनुपस्थिति" सिद्धान्त की ये बातें साधारण-सी लग सकती हैं, परन्तु उनकी शक्तिशाली लेखनी में ये मोहनी रूप धारण कर लेती हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक मनोवृत्ति के विश्लेषण में उन्होंने अप्राकृतिक प्रेम को भी एक महत्त्वपूर्ण विषय बनाया है, लेकिन ज़ीद के मुकाबले यह इस विषय के ऊपरी स्तर का अध्ययन मात्र है। इसका एक कारण यह है कि अप्राकृतिक प्रेम करनेवाले उनके एक बड़े औपन्यासिक चरित्र, बैरन द चार्ली में हास्यात्मक तत्त्व भी प्रचुर परिमाण में विद्यमान है।

प्रूस्त् सदा व्यावहारिक स्वभाव के पीछे गुप्त उद्देश्यों की खोज करते रहते हैं। उनका स्पष्ट लक्ष्य मानस के अन्धकारमय प्रदेशों में प्रवेश करना है जहाँ मानस-जीवन के नियम और अभ्यास रहस्यावृत हैं। ऐसा लगता है कि इन्द्रियों के अस्वस्थ जीवन के कुछ पहलुओं ने उन पर जादू कर रखा है। जहाँ तक शैली का संबंध है, उनके प्रत्येक शब्द में औचित्य और इंगित करने की शक्ति है। उनके वाक्यों के यत्नकृत छन्द में काव्यगुण भी है, परन्तु उनकी लम्बी पंक्तियाँ थका डालती हैं। एक रमणी की मुसकान के विषय में उन्होंने छः पृष्ठ लिख डाले। परन्तु जब वे चाहते हैं तो चित्रकार की तूलिका (बुरुश) की भाँति चन्द शब्दों में भी सजीव चित्र खींच देते हैं।

इस बृहत् उपन्यास के अतिरिक्त प्रूस्त् ने रस्किन आदि लेखकों की समालोचना भी की है। रस्किन की दो एक पुस्तकों का भी उन्होंने अनुवाद किया है। उनका एक अपूर्ण उपन्यास कुछ ही साल पहले प्रकाशित किया गया है। इसमें "आ ला रेशर्स" की पूरी तैयारी मिल जाती है। परन्तु अपनी आलोचनात्मक पुस्तकों में ही यह तैयारी उन्होंने बहुत पहले कर ली

थी। समालोचकों का कहना है कि उनकी आकांक्षा उपन्यास साहित्य में बोद्ल्येर बनने की थी।

पॉल व्हालेरी (१८७१-१९४५) फ्रांस के अन्तिम प्रतीकवादी कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता "ला ज्येन पार्क" पर मालार्मे के "फोन" का प्रभाव बहुत स्पष्ट है, परन्तु मालार्मे के शिष्य होते हुए भी वे मालार्मे को पीछे छोड़ कर बहुत आगे निकल गये हैं। १८९० में उनकी कुछ कविताएँ प्रकाशित होने के बाद वें लम्बी अवधि तक चुप बैठ गये। इस बीच वे गणित और दर्शन शास्त्र में जुटे रहे। फिर १९१७ में उनकी कविता "ला ज्येन पार्क" प्रकाशित हुई। उनके एक गद्य कथनोपकथन "ईन सोआरे आव्हेक मांसिए तेस्त" से सम्भवत: उनके मौन का अर्थ निकाला जा सकता है। इससे प्रकट होता है कि बुद्धि की प्रक्रियाओं में उन्हें विशेष दिलचस्पी है, परन्तु शब्दों में मनन को रूप देने में उन्हें आपत्ति है, क्योंकि शब्दों का गुण सीमित करना है और विचारों को वे कुछ अंश तक अशुद्ध भी करते हैं। सर्जन का गुण गति-दान करना है, परन्तु सृष्ट वस्तु गतिहीन है। अन्तिम बात यह है कि जहाँ श्रोताओं का या पाठकों का खयाल आया कि लेखक के हृदय का कथनोपकथन बाधा-प्राप्त हो जाता है, अशुद्ध हो जाता है। अन्त में मौन भंग कर जब वे सृष्टि करने पर उतर आये तो उन्होंने इसी पर ध्यान निबद्ध किया कि कठिनाइयों पर विजय कैसे प्राप्त की जाय और बुद्धि की नियन्त्रित प्रक्रिया किस प्रकार हो। इसी लिए कविता-रचना के संबंध में ही उन्होंने कुछ कविताएँ (ऑरोर आदि) लिख डालीं।

व्हालेरी के मुग्ध प्रशंसक भी हैं और घोर निन्दक भी। समालोचक थिबोदे ने कहा है—"व्हालेरी ने काव्य को संवेगात्मक रूप का परित्याग कर अतिभौतिक वाद में प्रवेश करने को बाध्य किया है. . .परन्तु अतिभौतिक वाद और कविता परस्पर आलिंगनबद्ध नहीं हो सकते।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्हालेरी दार्शनिक कवि हैं। मालार्मे के अन्तर्दर्शन को छोड़कर वे सार्वभौमिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। उनकी कविताएँ अति दुरूह हैं। यह भी निःसन्देह है, यद्यपि स्वयं उनका कथन है कि सभी वाणियाँ कुछ न कुछ

अन्धकारमय होती हैं, इसलिए उनकी कविताओं का अर्थ-बोध भी कठिन न होना चाहिए। उनकी कुछ कविताएँ स्पष्ट अर्थबोधक हैं भी और उनमें आनन्द भी प्रचुर मिलता है, परन्तु वे हमसे यह आशा करते हैं कि शब्दों और वाक्यों के बीच के व्यवधान की पूर्ति हम स्वयं करें, अविकसित रूपकों का हम स्वयं विस्तार करें, अमूर्त के परदे के अन्दर से मूर्त तत्त्वों को बाहर निकाल लें और उनके इंगितों को पकड़ लें। अर्थात् अपनी ही विशद व्याख्या से मूल पाठ का अर्थबोध करें। व्याख्याएँ लोगों ने की भी हैं और उनमें बहुत कुछ समानता भी है। इसी से बुद्धि की मर्यादा सुरक्षित है और इसमें व्हालेरी की ईमानदारी का प्रमाण भी है।

व्हालेरी की कविताओं का अर्थबोध कठिन भले ही हो, परन्तु उनका संगीत तो मुग्ध करनेवाला है। जिनमें अर्थबोध कुछ सुगम है उनका सौन्दर्य अनुपम है। स्थापत्य शिल्प में उन्हें उतनी ही आसक्ति है जितनी कि काव्य में। "ल कान्टीक दे कॉलॉन" में प्रस्तर स्तम्भों का "जमा हुआ" संगीत गल-कर छन्दों में बहने लगता है,—"मनोहर मीनार, लाठियों का सहवादन। संगीत में स्वर मिलाने को हर एक अपने मौन को तिलांजलि देता है।" "हम एक साथ मिलकर गा रहे हैं ताकि आकाश को अपने कन्धों पर ढो सकें।" "छेनी-हथौड़े ने प्रस्तरभूमि से हमें मुक्त किया जिससे हम कमल के फूल बन सकें।" "अनन्त काल से अन्धी हमारी आँखों के ऊपर मन्दिर है और देवताओं के बिना ही हम देवत्व की ओर बढ़ते जाते हैं।" "उन खम्भों के पैरों तले युग-युग व्यतीत हो गये, परन्तु वे खम्भे अतीत के भी हैं और वर्तमान के भी। यह है कालप्रवाह जिसमें अतीत और वर्तमान का कोई भेद नहीं।"

'चार्म', 'सिमेतिएर मारैं' (समुद्र तट पर समाधिस्थल) आदि काव्यों की तुलना में उनकी गद्य कृतियाँ (रंगार सीर लॉ मॉद आक्चुएल' आदि) भी कम सुन्दर नहीं हैं। 'मा फाउस्त' (१९४६ में प्रकाशित) को उन्होंने नाटकीय रूप दिया है और इसके कुछ अंश पद्य में भी हैं।

एकोल नॉर्मल सुपेरिएर ने फ्रांस के बौद्धिक, राजनीतिक और सामाजिक

क्षेत्र में अनेक नेता दिये हैं। जांज़िरोदू (१८८२-१९४४) भी एकोल नॉर्मल के विद्यार्थी थे। इस संस्था में प्रवेश करना ही अत्यन्त कठिन है, परन्तु जिरोदू प्रारम्भ से अन्त तक तीक्ष्णधी विद्यार्थी रहे हैं। अपनी पुस्तक 'साहित्य' में इस स्कूल की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है—"एकोल नॉर्मल अध्यात्म का स्कूल है। मैं यह नहीं कहूँगा कि इस स्कूल से निकलने वाले प्रत्येक ने आध्यात्मिक उपलब्धि की है, लेकिन वे आध्यात्मिक जगत् के ही हैं। वे आत्मा के सेवक हैं, दूसरे शब्दों में वस्तु के शत्रु।" इसी में आगे चलकर उन्होंने कहा है—"एकोल नॉर्मल नवयुवक विद्यार्थी के लिए अध्यात्म-राज्य का द्वार खोल देता है।" जिरोदू स्वयं इस अध्यात्म-राज्य के हैं।

पेरिस के इस स्कूल में प्रवेश करने के पहले वे कई वर्ष प्रादेशिक स्कूलों में व्यतीत कर चुके थे। इनमें से एक में, विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने एक भाषण दिया जो उनके जीवन-दर्शन की ओर इंगित करता है। उस स्कूल की जिस मेज पर वे लिखा करते थे उसकी ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा—"इसी मेज ने मुझे प्रखर दिवालोक में लम्बे स्वप्न देखना सिखाया। जिरोदू का साहित्य भी स्वप्नों से बुना हुआ है। परन्तु स्वप्न यदि उनका ताना है तो वास्तविकता उनका बाना है। उनके निरीक्षण और मनन के क्षेत्र में जो भी कुछ आये और उनके संबंध में उन्होंने जो कुछ सोचा, उन स्वप्नों में सब मौजूद हैं। स्कूल जीवन से लेकर उन्होंने जो कुछ पढ़ा, देखा, सुना या अनुभव किया वे कभी उन्हें भूले नहीं और उनके साहित्य में वे ओत-प्रोत हैं। उनकी अधिकांश कृतियों की सामग्री स्वयं उनके जीवन से ही ली गयी है। उनकी प्रथम पुस्तक 'प्रोविनसियाल' में उनके ग्राम्य जीवन की स्मृतियाँ लिपिबद्ध हैं। ये स्मृतियाँ अनुभावात्मक हैं। एक छोटा लड़का, सम्भवतः लेखक स्वयं, खिड़की से देख रहा है। वह कहता है,—"मक्खियाँ खिड़की पर तुम्हें दर्शन देने को आती हैं, परदा और खिड़की के शीशे के बीच उन्हें दबोचने में तुम्हें संकोच होता है। पहला कारण यह है कि उनके लिए तुम्हें दुःख होता है और दूसरा यह कि यह गन्दा काम भी है।" इसमें ज़िरोदू की कोमलता और नाजुक-खयाली दोनों का प्रकाश है।

विशेष रूप से नाटककार के रूप में ही उनकी ख्याति है, परन्तु इन नाटकों की कथावस्तु उनके उपन्यासों में ही मौजूद है। उनके उपन्यासों के संबंध में समालोचक लुसिआं दीवेक ने कहा—"ज़िरोदू हमारी पीढ़ी के सबसे निकृष्ट लेखक हैं।" हेनरी बेर्नस्ताइन ने यह अभिमत प्रकट किया कि "वे जो कुछ लिखते हैं वे स्कूल-कक्षा की सुगन्ध में सिक्त हैं।" परन्तु एडमॉण्ड जालू, आंद्रे रूशो और सुप्रसिद्ध आंद्रे ज़ीद ने उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की। इन विरोधी मतों के बावजूद एक विषय पर वे सभी सहमत हैं। वह है उनकी शैली। इस शैली की मुख्य विशेषता है निरन्तर तुलनात्मक वर्णन, कभी प्रकट, कभी निहित, जो प्रायः रूपक के क्षेत्र में जा पड़ता है। इस संबंध में उन पर कृत्रिमता का आरोप भी किया गया है, परन्तु कृत्रिम क्या है और स्वाभाविक क्या, यह विवादग्रस्त प्रश्न है और विभिन्न रुचियों के अनुसार इसके विभिन्न उत्तर दिये जाते हैं। इन तुलनाओं के एक नमूने पर विचार करना यहाँ असंगत न होगा। "प्रोविनसिआल" की दूसरी ही छोटी कहानी "एस्तेल्" में वे लिखते हैं—"यह दिन बृहस्पतिवार था—आकृति-हीन तटस्थ दिन, जो सप्ताह के दो आधों के बीच, दो ईर्ष्यान्वित राष्ट्रों के मध्य के तटस्थ राष्ट्र की तरह पड़ा रहता है।" इस तुलना में नवीनता भी है और असाधारणता भी, परन्तु वाक्यों और विचारों में नहीं। सप्ताह के दो भाग दो विरोधी राष्ट्र हैं और दोनों भागों के बीच तटस्थ राष्ट्र की भाँति निर्गुण या अनिश्चित बृहस्पतिवार है। लेकिन सप्ताह के दो भागों के बीच विरोधी राष्ट्रों का विरोध कहाँ है? इस कल्पना का आधार यह है कि सप्ताह के प्रथम भाग में हम सक्रिय होते हैं और दूसरे भाग में सप्ताहान्त अवकाश की प्रतीक्षा में शिथिल। बीच के दिन की तटस्थता का रूप यह है कि उसे किसी भी भाग में जोड़ा जा सकता है, इसलिए यह जोड़नेवाले की मनोवृत्ति पर निर्भर है, परन्तु वह दिन स्वयं निर्गुण, निष्क्रिय, तटस्थ है। साथ ही तुलनाओं की बहुलता के कारण ज़िरोदू के उपन्यासों की कथावस्तु ही खो जाती है और प्रश्न यह उठता है कि उन्हें उपन्यास का नाम दिया जा सकता है या नहीं। उनके उपन्यासों का कोई विषय है ऐसा जान नहीं

पड़ता और जिरोदू भी यह विश्वास नहीं उत्पन्न कर सके कि उपन्यासों के लिए कहानी अनावश्यक है। उनके उपन्यास 'सीजान ए ल पासिफिक' की सीजान के—और यह उनकी पत्नी का नाम है—वास्तविक अस्तित्व की कल्पना सम्भव नहीं है। वह लेखक की रुचियों की आदर्श सृष्टि है।

ये औपन्यासिक चरित्र ही जिरोदू के नाटकों में जीवित, आन्दोलित हो उठे हैं। यह था "कॉमेडी दे शांप एलिजे" रंगमंच के योग्य प्रबन्धक और कुशल अभिनेता, लूई जूव्ह का जादू। उन्होंने ही जिरोदू की नाट्य-प्रतिभा का आविष्कार किया और कठिन होते हुए भी उनकी कृतियों को रंगमंच पर अभिनय के योग्य बनाया। कवि-प्रकृति और कलाकार जूव्ह में अपने स्वप्नों को देखने की जितनी क्षमता थी उतनी ही उनकी क्षमता थी दूसरों के स्वप्नों को देखने की। धैर्य के साथ उन स्वप्नों को वास्तव रूप देने का तकनीकी हुनर भी उनमें था। जिरोदू के उपन्यासों में ही नाटकीय विरोध या संघर्ष का गुण मौजूद था और इस नाट्यप्रतिभा को विकसित करने में जूव्ह ने योगदान किया।

जिरोदू के प्रथम नाटक 'सीग्रफी' को ही अद्भुत सफलता मिली। लुसिआं दीवेक ने भी, जिन्होंने उनके उपन्यासों की निन्दा की थी, इस बार उनकी प्रशंसा की। यह उनके उपन्यास 'सीग्रफी ए ल लिमूजें' का नाट्य-रूप है। संक्षेप में इसका विषय फ्रांस और जर्मनी का विरोध है। यह ध्यान में रखने की बात है कि परम देशानुरागी होते हुए भी जिरोदू का दृष्टिकोण सार्वभौमिक है। एकोल नॉर्मन में उन्होंने जर्मन भाषा में दक्षता प्राप्त की थी और मूनिक (अंग्रेजी म्युनिक) नगर में भी वे कुछ दिनों रह चुके थे। जर्मनी और फ्रांस का विरोध संघर्ष में परिणत न हो बल्कि उसका समन्वय हो यही उनका दृष्टिकोण रहा है। फ्रांस के परराष्ट्र विभाग में उच्च पदों पर काम करते हुए भी उनका यही दृष्टिकोण था जिससे फ्रेंच प्रधान मन्त्री पोंआकारे से उनका मतभेद भी हुआ। अपने उपन्यास 'बेला' में उन्होंने पोंआकारे के प्रति व्यंग्य भी किया है। इस नाटक में फ्रेंच-जर्मन समस्या का

केंद्र बनाया गया है एक फ्रेंच लेखक जाके फॉरेस्तिए को। प्रथम महायुद्ध में जर्मन सैनिक उसे स्मृतिलुप्त अवस्था में जर्मनी को ले जाते हैं, जर्मन अस्पतालों में वह पुनः स्वास्थ्य-लाभ करता है परन्तु इसी बीच एक जर्मन के रूप में उसे पुनः शिक्षित किया गया है। सीग्रफी के नाम से वह जर्मनी के राजनीतिक पुनरुत्थान का नायक बन गया है। उधर एक जर्मन क्रान्तिकारी दल का नेता है जेलटेन, जो मौजूदा शासन को उलटना चाहता है। इसलिए सीग्रफी को हेय साबित करना उसके लिए आवश्यक हो गया है। उसके प्रयत्न और षड्यंत्र से जेनेव्हिएव्ह प्रा फ्रांस से अपने मित्र रोबिनो को लेकर जर्मनी पहुँचती है। युद्ध के पहले फॉरेस्तिए इसी रमणी का प्रेमिक था और प्रा भी उस जाके फारेस्तिए को खोज निकालना चाहती है जिससे वह प्रेम करती थी। फिर सीग्रफी को अपनी वास्तविकता की याद हो आती है और प्रा को लेकर वह फ्रांस—लिमूजैं—को लौट आता है। नाटक के अन्यतम नायक जेलटेन के मुँह से नाटककार ने कहलाया है—"इस आत्मा में सभी प्रकार के विरोधों का समावेश और समन्वय है, लेकिन फ्रांस और जर्मनी, केवल इन्हीं दो तत्त्वों का द्वन्द्व ज्यों का त्यों मौजूद है।" परन्तु यह नाटक केवल समस्यात्मक नहीं है। जेनेव्हिएव्ह एक ऐसी रमणी है जिसमें प्रत्येक नारी अपना प्रतिबिम्ब देख सकती है। मानवता, और जनसाधारण की मानवता इस नाटक का एक विशेष अंग है।

'आम्फित्रिआं ३८' पृथ्वी की नारी ऐल्कमेना से ग्रीक देवता जूपिटर के प्रेम की कहानी है। अंक ३८ यह दिखलाने के लिए जोड़ दिया गया है कि ज़िरोदू रचित कहानी इस विषय पर अन्य कहानियों का ३८वाँ संस्करण है अर्थात् कहानी बहुत ही पुरानी है। अल्कमेना को अपने वश में करने के लिए जूपिटर उसके पति आम्फित्रिआं का रूप धारण करता है। अल्कमेना का चरित्र विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। बुद्धि, सौन्दर्य, संवेगात्मकता, दृष्टि की ताजगी, प्रकृति और पृथ्वी की अन्तरात्मा की समीपता सभी गुण उसमें मौजूद हैं। ज़िरोदू को इन गुणों का योग केवल नारी में ही सम्भव दिखाई देता है। ये गुण, सब के सब, पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकते, इसलिए

वास्तविकता और आदर्श की समस्वरता के लिए लेखक बार बार नारी-चरित्र का ही चित्रण करते हैं।

'ऑंदीन' उनका एक और विचित्र नाटक है। जलपरी ऑंदीन से दरबारी विटेनस्टाइन का विवाह स्वप्न और वास्तव की दुनिया का विवाह है और रंगमंच पर यह मिलन शून्य में विलीन हो जाता है। इस नाटक की एक उल्लेख योग्य विशेषता यह है कि लेखक ने अभिनेताओं को ध्यान में रखकर कथावस्तु का निर्माण किया। द्वितीय महायुद्ध के समीप 'ट्रोजॉन युद्ध नहीं होगा' का अभिनय राजनीतिक महत्त्व भी रखता है। 'इन्टर-मेजो,' 'इलेक्ट्र' आदि उनके अन्यान्य विख्यात नाटक हैं।

कवि, नाटककार और निबन्धकार पॉल क्लोडेल (१८६८-१९५५) की प्रतिभा निराली है। फ्रेंच साहित्यिक परम्परा में उनकी कृतियों का कोई जोड़ नहीं मिलता। परन्तु उनकी प्रतिभा की मर्यादा को स्वीकृति मिली दूसरे महायुद्ध के बाद। उनकी कला की दुरूहता ने ही उन्हें लम्बी अवधि तक लोकचक्षु से ओझल रखा। इस कला का मूल्य आज भी विवादग्रस्त प्रश्न बना हुआ है। उनकी कृतियाँ कैथलिक धर्म-विश्वास से ओतप्रोत हैं, परन्तु उनके प्रशंसकों में कम्युनिस्ट आरागॉं, प्रोटेस्टेन्ट रामी, उदार-मानवतावादी जां प्रेवोस आदि भी सम्मिलित हैं और जाके मादोल ने उन्हें दांते के समकक्ष बताया है। यद्यपि बुद्ध के निर्वाण में उन्हें भ्रान्ति दिखाई देती है, परन्तु बुद्ध को जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ उसी प्रकार १८८६ की क्रिसमस रात्रि में पेरिस के नॉत्र दाम गिरजे में उन्हें दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ और उसी क्षण से उनके जीवन में एक महान् परिवर्तन आ गया। यह कुछ विचित्र-सी बात जान पड़ती है, परन्तु स्वयं क्लोडेल का ही कहना है कि धार्मिक प्रेरणा उन्हें रिम्बो से मिली। यह चाहे अतिरंजन हो परन्तु सम्भवतः यह सत्य है कि "आप्रेल देलीज" और "आंफांस" आदि रिम्बो के गद्य काव्यों से उन्हें काव्यप्रेरणा के रहस्यमय रूप का बोध हुआ।

यह लक्ष्य करने की बात है कि काव्यकला (आर्ट पोएटीक) पर पुस्तक उन्होंने पहले लिखी और अपनी कविताएँ बाद को। यह उनके इस सिद्धान्त

के अनुसार ही है कि प्रेरणा कवि को पहले मिलती है, काव्य की रचना मानस् में ही हो जाती है और तब अनिवार्य रूप से उस प्रेरणा की अभिव्यक्ति शब्दों और वाक्यों में होती है। यह कैथलिक धार्मिक सिद्धान्तों के भी अनुरूप है। सृष्टि का विचार भगवान् के मानस में उपस्थित होता है, फिर वे सृष्टि करते हैं। सृष्टि भगवान् की कविता है और कवि की कविता इस सृष्टि की प्रतिकृति या उसका पुनःसर्जन है। कवि में विश्व-ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति है। भगवान् की सृष्टि एक है और कवि की सृष्टि जगत् की विभिन्न वस्तुओं या प्राणियों की एकात्मता का बोध है। विश्व-जगत् की किसी एक वस्तु को जब हम पृथक् करते हैं, उसकी परिभाषा करते हैं तो हम उसे असत्य बना देते हैं, क्योंकि दुनियाँ में कोई चीज अकेली नहीं है, सारे विश्व से उसका संबंध है। कवि को स संबंध का ज्ञान है और सार्वभौमिक स्वरसमता को वह अर्थयुक्त करता है।

क्लोडेल महान् प्रतीकवादी हैं क्योंकि विश्व का सब कुछ उनके लिए भगवान् का प्रतीक है, सारा विश्व ही एक प्रतीक मात्र है, परन्तु उनका प्रतीक वास्तविकता से विच्छिन्न नहीं है। हांरी ब्रेमाँ को पत्र लिखते हुए उन्होंने अपना विश्वास प्रकट किया कि काव्य मनुष्य की जिस शक्ति की सृष्टि है उसका संबंध युक्ति, तर्क की अपेक्षा कल्पना और संवेगात्मकता से अधिक है, लेकिन रचनात्मक प्रक्रिया में बुद्धि का भी भाग है। क्रमानुसार कल्पना पहले आती है, इसके पश्चात् बुद्धि इसमें योगदान करती है। प्रेरणा उनके लिए एक छन्दात्मक उत्तेजना है, जैसे श्वास स्वर के पहले आता है उसी प्रकार अभिव्यक्ति के पहले अभिव्यक्ति की आकांक्षा पैदा होती है। क्लोडेल के विचार ऐसे रूपकों और प्रतिमाओं में व्यक्त होते हैं जो मानों आपसे आप प्रचुरता के साथ ऊगते रहते हैं। श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविकता के साथ ही उनकी पंक्तियाँ छन्दों का रूप ले लेती हैं। प्रत्येक पंक्ति का आवेग ही उसकी मात्रा को नियन्त्रित करता है। आवेग के प्रसार या संकोच के साथ ही मात्राएँ भी प्रसारित या संकुचित होती रहती हैं। उनके छन्दों का यह रूप विचित्र और निराला है। यह जगत् प्रति मुहूर्त परिवर्तन-

शील है और कवि भी इस प्रवहमान परिवर्तन में निरन्तर भाग लेता रहता है। दुनिया क्लोडेल के लिए नाटकरूप है जिसमें मनुष्य अभिनेता भी है और साक्षी भी। मनुष्य विश्व-नाटक का एक अंश है, विश्व के सहगायक दल का एक। इसी से क्लोडेल पाप और अपराध की परिभाषा निकालते हैं और उनके नाटकों में भी पाप की यही परिभाषा है। पाप मनुष्य में उस समय प्रवेश करता है जब विश्व के सहगान से वह अपने को अलग कर लेता है।

प्रतीकवाद क्लोडेल की कृतियों का केन्द्र-बिन्दु है। दृश्य-वास्तविकता अदृश्य वास्तविकता की प्रतिमा है, इसलिए कवि सृष्टिकर्ता और सृष्ट जगत् के बीच संबंध स्थापित कर सकता है। प्रत्येक वस्तु ईश्वर की जो प्रतिभा उपस्थित करती है वही उसका अर्थ है। प्रतीकवाद उनके लिए अक्षरशः ईश्वर-बोध का उपायस्वरूप है। अपनी सम्बोध-कविता "लेस्पिरी ए लो" में उन्होंने आत्मा और जल की तुलना की है। जल की स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता आत्मा की स्वतंत्रता के अनुरूप है। लेकिन यह स्वतंत्रता भी खतरनाक बन सकती है यदि यह कवि को सृष्टिकर्ता की ओर न ले जाये—"ज सुई लिब्र, देलिव्हरे मोआ द ला लिबर्ते" (मैं स्वतंत्र हूँ, ईश, इस स्वतंत्रता से मुझे मुक्ति दान करो)। विश्व सीमित है, परन्तु इसमें भगवान् है। मनुष्य भगवान् के साथ नहीं तो कहीं नहीं है। कवि को जगत् नवीन और सम्पूर्ण प्रतीत होता है जब वह यह उपलब्धि करता है कि आत्मा अदृश्य जगत् से उसका सम्पर्क स्थापित करती है और उसे बनाये रखती है। जल की तरह आत्मा सर्वव्यापी है। जगत् की प्रत्येक वस्तु जगत् की समग्रता की बोधक है। "मागनिफिका" में वे भगवान् को अपनी कृतज्ञता समर्पित करते हैं। उन्हें परमानन्द मिल चुका है, अब उनका निवेदन यह है कि इस आनन्द के गायन की शक्ति भगवान् उन्हें प्रदान करे। कवि के लिए ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग यावतीय सृष्ट पदार्थों को आलिंगनबद्ध करना है। "ला मीज" की ए ला ग्रेस "मागनिफिका" का शास्त्रीय उत्तर है। यह स्ट्रोफी, ऐन्टीस्ट्रोफी और इपोड तीन भागों में विभाजित, कथनोपकथन के रूप में है। कथनोपकथन

कवि और संगीत की देवी के बीच होता है। वाद-विवाद पुराना है—शरीर और आत्मा के बीच, प्रकृति और ईश्वर की अहेतुक कृपा (ग्रेस) के बीच। "ला मेजाँ फर्मे" (रुद्ध भवन) दुनिया के सीमित रूप का प्रतीक स्वरूप है। ये कविताएँ और प्रथम सम्बोध कविता "ले मीज़" उनकी पाँच महिमान्वित सम्बोध कविताओं (सेंक ग्रांद ओड) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

क्लोडेल के नाटक एक ही साथ नाटकीय भाषण और काव्य हैं। उनके नाटकीय चरित्र वास्तविक पुरुष और नारी के स्वरों में बोलते हैं, जो यह अनुभव करते हैं कि सारा मानवसमाज इस अर्थ में कि प्रत्येक मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रत्येक क्षण में, सभी अन्य लोगों के लिए जिम्मेदार है। एक शरीर के समान क्लोडेल के लिए मनुष्य के अस्तित्व के प्रति मुहूर्त विश्व-जगत् एकतामय है। प्रत्येक कहानी में, जिसे वे कहना चाहते हैं, उन्हें उसी मानवीय नाटक का एक उपादान या कोई छोटी कहानी या घटना दिखाई देती है जिसका विकास निरन्तर दुनिया में हो रहा है।

'तीत दॉर' नाटक का पहला संस्करण उन्होंने १८९० में लिखा। यह उनका एक मात्र नाटक है जिसका ईसाई धर्म से कोई संबंध नहीं है। इस लेख को क्लोडेल ने बराबर महत्त्व दिया है। इसकी रचना के बहुत बाद उन्होंने इसे अपनी कृतियों की भूमिका बताया। यह भूमिका है विश्व पर प्रभुत्व प्राप्त करने का नाटक। "तीत दॉर" उस साहसी यात्री का नाटक है जो केवल अपनी शक्ति और बुद्धि के द्वारा अपनी सत्ता का महत्त्व कायम करना चाहता है। नाटक के प्रारंभ में नायक, सीमाँ आनिएल अपनी प्रेमिका को दफ़ना रहा है। वहाँ वह अपने से छोटी उम्र वाले सीबे को देखता है जो उसी स्त्री से प्रेम करता था। नाटक का यह पहला भाग उस स्त्री के समाधि-स्थल पर सीबे और सीमाँ का विलाप है। दूसरे भाग में सीमाँ विजेता "तीत दॉर" (स्वर्ण मस्तक) बन जाता है। वह कॉकेशस तक सारे यूरोप पर विजय प्राप्त करता है। कॉकेशस पर जाकर उसकी पराजय और मृत्यु होती है। विश्व को अपनी अधीनता में करने की प्रेरणा के पीछे प्रेम की समस्या है जिसे बाद के नाटकों में लेखक ने मुख्य समस्या बनाया

है। "तीत दॉर" में विषाद की उत्पत्ति यों होती है कि नायक को विश्वास है कि अपने अन्दर ही उसे मुक्ति मिल सकती है।

क्लोडेल के दूसरे नाटक 'लाविये' का विषय है मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व का निहित अर्थ। इंजीनियर बेस्म् नगर का प्रधान है। उसका भाई लाम्बर कोई बहुत सफल राजनीतिज्ञ नहीं है। काफी उम्र का होते हुए भी वह नवयुवती लाला से विवाह करना चाहता है। आव्हार में हिंसा की भावना है जो नगर का विध्वंस करना चाहता है। 'तीत दॉर' के सीमाँ का ही वह प्रतिरूप है। केव्ह्‌र् नगर का कवि है। दृश्य का प्रारम्भ होता है केव्ह्‌र् और बेस्म् के कथनोपकथन से। दोनों की प्रवृत्ति एक दूसरे के विपरीत है। कवि जाति-बहिष्कृत है और नगर का प्रधान वस्तु मात्र की भ्रांति और व्यर्थता का ज्ञाता है। लाला केव्ह्‌र् के प्रति आकर्षित होती है और यहीं प्रथम अंक की समाप्ति हो जाती है। ठीक यही मुहूर्त है जब कि लाम्बर मृत्यु के विचार को स्वीकार कर लेता है और उसका भाई बेस्म् भी हताशा का शिकार बन जाता है। इसी समय आव्हार नगर के विनाश की तैयारी करता है। दूसरे अंक में नाटक की एक मात्र नारी लाला ही सब कुछ है। उसने अब कवि केव्ह्‌र् का, जो अन्यान्य कवियों की भाँति वर्तमान का प्रतिनिधित्व करता है, त्याग कर दिया है। वह आव्हार के साथ रह रही है जो भविष्य की आत्मा है। तीसरे अंक में नगर विध्वस्त पड़ा है और आव्हार वहाँ से चला जाता है क्योंकि उसका काम पूरा हो चुका है। लाला और केव्ह्‌र् के पुत्र ईव्हॉर पर नगर के पुर्नमिर्माण का भार है। केव्ह्‌र् अब वहाँ पादरी बनकर पहुँच गया है। वह सत्य का अन्वेषण कर रहा है, परन्तु नगर के पुर्ननिर्माण के संबंध में वह साधिकार बोलता है। वह कहता है नगर ऐसा हो जैसा कि एक ही शरीर जिसका बड़े से लेकर छोटा प्रत्येक सदस्य या अंग उस सम्पूर्ण की ही किसी क्रिया-विशेष से युक्त हो। लाला क्लोडेल की विशेषता से परिपूर्ण प्रथम नायिका है—सुदूर, रहस्यमयी, अज्ञेय, मनुष्य और ईश्वर के बीच हस्तक्षेप करने वाली मोहिनी रूप। इस नाटक के दूसरे संस्करण में लेखक ने कवि केव्ह्‌र् के भाग को और बढ़ा दिया है।

कवि आँखें खोलता है तो अनुभव करता है कि वह विश्व का दर्पण है। कवि और ईश्वर की तुलना सम्पूर्ण हो जाती है जब क्लोडेल यह दिखाते हैं कि ईश्वर ने अपने प्रेम से जगत् की सृष्टि की और कवि ने सृष्टिकर्ता से अपने प्रेम में कविता की सृष्टि की—"तूत पारोल ए ईन एक्सप्लीकाशिओं द लामूर" (प्रत्येक शब्द प्रेम की व्याख्या या अभिव्यक्ति है)।

अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'लानॉन्स फेट आ मारी' में लेखक ने मानवीय संबंधों के विरोधपूर्ण रहस्य पर बल दिया है। पियर, व्हिओलेन से प्रेम करता है, परन्तु उसे जिनका त्याग करना है—नारी, सुख और स्वयं दुनिया, व्हिओलेन उन्हीं की प्रतिमूर्ति है। उनके प्रेम का दृश्य वास्तव में दुनिया से बिदाई का दृश्य है। उनके प्रारम्भिक कथनोपकथन में ही नाटक का सारा तत्त्व मौजूद है, बल्कि वह तत्त्व भी, जो लिखित नाटक से परे है। यह उस गुप्त नाटक का विश्लेषण है जिसे प्रत्येक ईसाई को इस दुनिया में खेलना है। वह है उस तीर्थयात्री का नाटक जो जुदाई के विचार को स्वीकार कर लेता है। चुम्बन दो प्रेमिक-प्रेमिकाओं का बन्धन स्वरूप है; लेकिन दृश्य के अन्त में व्हिओलेन का पियर द्वारा चुम्बन उनके विच्छेद का प्रतीक है। पियर कुष्ठरोगी है और उसके प्रेम और सेवा में व्हिओलेन अपना जीवन विसर्जित करती है। व्हिओलेन की मृत्यु के उदाहरण से नाटक के एक और चरित्र जाके को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि अपने "स्व" के दान में ही प्रेम है। मानवजीवन का यह एक अप्रिय कर्कश सत्य है। पूर्णतः आयत्त करने की आकांक्षा में ही मानवप्रेम के कष्टों की उत्पत्ति है; प्रेम का न्याय से कोई संबंध नहीं है। ये व्हिओलेन के ही शब्द हैं, दूसरे अंक के उस दृश्य में, जहाँ वह वैराग्य का अवलम्बन करती है।

'पार्ताज द मिदी' और क्लोडेल का सर्वश्रेष्ठ नाटक 'ल सूलिए द साटँ' एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में मानवप्रेम का रूप इतना समग्र है कि जान पड़ता है कि ईश्वरप्रेम को उसमें कोई स्थान नहीं मिल सकता। लेकिन क्लोडेल की दृष्टि में प्रेम का रूप सर्वत्र एक है। फिर वे दिखलाते हैं कि दैहिक प्रेम ज्यों-ज्यों सघन होता है त्यों-त्यों यह अनुभूति होने लगती है

कि पार्थिव सीमाओं में प्रेम की उपलब्धि नहीं हो सकती 'सूलिए द साटें' (सैटिवन की चट्टी) अतिशय सरल और अतिशय जटिल है। वयोवृद्ध पति, युवती पत्नी और उसका प्रेमिक इन तीनों को लेकर कथा-योजना की गयी है। शाश्वत प्रेमत्रिकोण का यह अति साधारण नमूना है। लेकिन इन्हीं चरित्रों के व्यक्तिगत संबंध से पुनरभ्युदय काल का ऐतिहासिक नाटक विकसित हो उठता है। 'पार्ताज' में क्लोडेल ने रमणी को कहा है वह "वचन, जिसे कभी पूरा नहीं किया जा सकता है।" मनुष्य की आकांक्षा की भाँति नारी असीम नहीं है। उस असीम की आवश्यकता को, जो मनुष्य मात्र के प्रेम के मूल में है, प्रेम की सीमाएँ प्रतारित करती हैं। इधर 'सूलिए द साटें' की नायिका जब अपने फरिश्ते से प्रश्न करती है कि "विवाह-बन्धन के बाहर प्रेम क्या पाप नहीं है?" तो फरिश्ता उत्तर देता है—"पाप में भी प्रेम ईश्वर की सेवा कर सकता है, उसके उद्देश्य को सिद्ध कर सकता है।" कैथलिक नाटककार क्लोडेल आत्मा और शरीर दोनों सत्यों को स्वीकार करते हैं और यह जानते हैं कि दोनों के समन्वय और एकीकरण से ही मुक्ति मिल सकती है।

सैंतालीसवाँ अध्याय

अति यथार्थवाद

अति यथार्थवाद ने भौतिक और मानवीय प्रकृति के संबंध में स्वीकृत विचारों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया। प्रथम महायुद्ध के बाद की राजनीतिक अराजकता और सामाजिक उथल-पुथल ने इस विरोध को स्पष्ट रूप देने में सहायता पहुँचायी। उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग की वैज्ञानिक खोजों ने भी मानव-मानस में संशय की भावनाओं को ही सुदृढ़ बनाया। वास्तविकता के रूप के संबंध में नये प्रश्न उठाये गये। यह कहा जाने लगा कि यथार्थवाद वास्तविकता के ऊपरी स्तरों से ही अपना कारोबार करता है और रोमान्टिक प्रवृत्ति वास्तविकता से पलायन करने की प्रवृत्ति है। इसके स्थान पर एक नये सिद्धान्त की स्थापना की चेष्टा होने लगी, जिसका मूल विचार यह है कि ऊपरी प्रकृति की विकृतावस्था ही यथार्थ में वास्तविकता है। दूसरे शब्दों में अनुशासन और नियम की धारणा मनुष्य के मन में पहले से बनी रहती है और मनुष्य इसी धारणा को बाह्य प्रकृति पर भी लाद देता है। इसलिए अनुशासनबद्ध और नियमित दुनिया मनुष्य की कल्पना की सृष्टि मात्र है। अतएव अनुशासन-हीनता और मानसिक विशृंखलता में ही वास्तविकता की खोज की जानी चाहिए। साहित्य में भी कुछ उदाहरण उनके सामने मौजूद थे। लोत्रेआमों, रिम्बो और मालार्मे की 'इगित्यीर' में उन्हें रहस्यपूर्ण अनीश्वरवाद का सूत्र प्राप्त हुआ जो बाद में अति यथार्थवाद का एक आधार बन गया।

साधारण बौद्धिकता के प्रति घृणा का अभियान शुरू हुआ स्विट्जरलैंड में। युद्ध ने विभिन्न देशों में अनेक लोगों को शरणार्थी बना दिया था।

अनेक शरणार्थियों ने स्विट्जरलैंड में आश्रय लिया। बुद्धिविहीन युद्ध के तिक्त अनुभवों ने कुछ को बुद्धि-विमुख कर दिया। इस बुद्धि-विमुखता ने "दादावाद" आन्दोलन को जन्म दिया। आन्दोलन के नेता रूमानिया निवासी त्रिस्ता ज़ारा ने यह विचार उपस्थित किया कि तार्किक विचार और व्याकरण-सम्मत शैली ने साहित्य में गतिरोध उत्पन्न कर दिया है और तुच्छ बातों से उसकी कलेवर वृद्धि की है। भाषा की विशुद्धि और काव्य की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए आकस्मिक प्रेरणाओं को खुलकर खेलने देना चाहिए। सन्धि हो जाने पर त्रिस्तां दलबल सहित फ्रांस आये। इस दल की अर्थ-विहीन उक्तियाँ विशेष प्रभाव नहीं डाल सकीं। परन्तु यही आन्दोलन अति यथार्थवादी आन्दोलन में परिणत हुआ और ज़ारा भी अधिक बोधगम्य भाषा में लिखने लगे।

दादावाद की अति से ऊबकर कुछ युवक बुद्धिवादियों ने १९२० में अपना एक अलग दल बनाया। उन्होंने अति यथार्थवाद का नाम लिया गिलेम आपोलिनेयर से, जिन्होंने स्वतः सिद्ध और स्वीकृत वास्तविकता से परे की वास्तविकता के बोध के लिए इस शब्द का प्रयोग किया था। इस आन्दोलन के नेता थे आंद्रे ब्रेतां और उनके सहयोगियों में थे फिलिप सुपोल, लूई आरागों, जॉर्ज हीनिये, रने क्रेव्हेल और पॉल एलुआर। अति यथार्थवाद के इस अर्ध-वैज्ञानिक प्रयोग में बहुसंख्यक चित्रकार भी उनके साथी बन गये। अति यथार्थवादी नाम से अभिहित होने के पहले इस दल का मुखपत्र था "साहित्य" और १९२४-३० तक यह मुखपत्र था "रेवोलिसिओं सीररिआलिस्त" जिसका १९३० में नाम रखा गया "सीररिआलिज्म ओ सर्विस द ला रेवोलिसिओं"। आंद्रे ब्रेतां ने १९२४ और १९३० के दो घोषणापत्रों में अति यथार्थवादियों के उद्देश्यों, सिद्धान्तों और विवादों को प्रकाशित किया। स्वतः स्फूर्त लेख, इच्छा-प्रणोदित स्वप्न और यौन-संबंधी अस्वाभाविकता इनकी विशेषताएँ बन गयीं। इस प्रेरणा के स्रोत को प्रवाहित किया फ्रॉएड ने जिनका मूल मन्त्र है अर्ध-चेतना की आज्ञाओं का पालन। मनुष्य की गुप्त प्रवृत्तियों का परिचय देने के लिए, अज्ञात को भाषा दानकरने

के लिए स्वतः स्फूर्त लेख, स्वप्न, आकस्मिक घटना, अस्वाभाविक आनंद आदि उपायों का प्रयोग किया जाने लगा। पिकासो, ब्राक, दरैं आदि चित्र-कारों ने भी अपने क्युबिस्ट चित्रों में लोगों को मन या आँखों की आदत से परे ले जाने की और अर्द्धचेतन को ऊपर लाने की चेष्टा की।

वास्तविकता के इस नये दर्शन के आक्रमण का मुख्य लक्ष्य है नियमितता की धारणा जो मनुष्य की असीम की खोज में प्रचण्ड बाधा डालती है। इसलिए अति यथार्थवादी अनियमता की खोज करता है जिससे असीम के मूर्त रूप को वह देख सके। नियम की धारणा के वश में प्रचलित साहित्य सादृश्य की प्रतिमाएँ उपस्थित करता है। अनियमता की खोज में अति यथार्थवादी असादृश्य को ही साहित्य का केन्द्र बनाता है। मानस की अ-बौद्धिक प्रेरणाओं को रूप देने के लिए वह भाषा में भी विरोधी तत्त्व प्रविष्ट करता है। इस अबोध्य भाषा के कारण उनकी कविताओं का जनता में तनिक भी समादर नहीं हुआ। पिएरवर्दी, रने वार और पॉल एलुआर व्यतिक्रम स्वरूप हैं। पिएरवर्दी के "एपाव्ह दी सिएल" में अतार्किक और यथार्थ का सुन्दर योग है। रने वार की कृतियाँ," "ल मार्तो सा मेईत्र" तथा "सेल दम्येरा" उनके दल के साधारण स्तर से बहुत ऊँची हैं। एलुआर के "ले दसू दीन व्ही, ऊ ला पिरामीद ह्यमेन" ने वास्तव में गद्य और काव्य के सम्मिश्रण से वास्तविकता के नये दर्शन को मूर्त किया है।

अति यथार्थवादियों के जिस साहित्य के स्थायित्व की सम्भावना है वह उनका काव्य-साहित्य नहीं, बल्कि कुछ गद्य साहित्य है जो उनके काव्य से अधिक कवित्वपूर्ण है। कुछ प्रचारपुस्तिकाओं, श्लेषात्मक निबन्धों और कहानियों को इस श्रेणी में डाला जा सकता है। ब्रेतां का उपन्यास 'नादजा', लूई आरागाँ के उपन्यास, 'ले क्लोश द बेल्' और 'ल पेजां द पारी.' तथा क्रेव्हेल का 'लेस्पिरी कॉन्त्र ला रेज़ॉं' इसी स्थायी साहित्य के अन्तर्गत पड़ते हैं। फिलिप् सुपोल को भी इन नामों के साथ जोड़ा जा सकता है। अपने व्यक्तित्व के कैदखाने से व्यक्ति को मुक्त करना ही सुपोल की साहित्यिक प्रचेष्टा है। 'आ ला देरीव्ह' उनकी स्वप्न कहानी है।

'ल नेग्र' (नीग्रो) में पूर्वजों के बन्धन से मुक्ति-प्रचेष्टा की यातनाओं को उन्होंने अद्‌भुत कौशल से अनावृत किया है। जब उन्होंने राजनीति में योगदान किया तो भी उन्हें यही दिखाई दिया कि दुनिया अपने से ही अपने को मुक्त करना चाहती है। ब्रेतों और आरागों कुछ समय तक कम्युनिस्ट आन्दोलन का साथ देने के बाद उससे अलग हो गये।

अड़तालीसवाँ अध्याय

दूसरे महायुद्ध के पहले

१९३० के लगभग सारे यूरोप में ही आर्थिक अस्थायित्व और अस्थिरता के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। फ्रांस और जर्मनी के बीच स्थायी समझौते की आशा भंग हो गयी। आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के बीच फ्रांस ने (प्रथम) युद्ध-पश्चात् साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रत्याख्यान किया। फ्रेंच अति यथार्थवादी काव्य ने जनता को अधिक प्रभावित न किया हो, परन्तु फ्रेंच काव्य उस प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका है। इस समय के तीन कवियों को क्लोडेल और व्हैलरी के बाद ही स्थान दिया जा सकता है। उनमें से एक रवर्दी का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जून्ह ने पहले तो युद्ध की भयंकरता और दुखियों की सहानुभूति से प्रेरित होकर कुछ स्पष्ट कविताएँ लिखीं, परन्तु बाद को वे धार्मिक रहस्यवादी बन गये। कैथलिक सिद्धान्त और फ्रॉएड का मनोविज्ञान उनकी परिणत कृतियों के आधार हैं। मानव-भविष्य के संबंध में उनकी कविताएँ निराशावादी हैं। जूल सूपर-व्हिएल उपन्यास और छोटी कहानियों के भी लेखक हैं। कुछ छोटी कहानियों में (ल पति बोआ १९४२ में प्रकाशित हुआ) स्वांग और कोमलता, महिमा और सरलता का अपूर्व मिश्रण है। परन्तु काव्य में ही उनके स्वरूप का श्रेष्ठतम प्रकाश मिलता है। अपने काव्य के लिए उनका दावा है कि उन्होंने निमज्जित अनुभूतियों को ऊपर खींच निकाला है। सम्भवतः यही कारण है कि 'ल फोरसा इनोसाँ' में अति यथार्थवाद का आभास मिलता है। काल्पनिक कथाओं का भी उन्होंने प्रचुर सर्जन किया है, लेकिन इतिहास की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। उनकी कविताओं में बूअर युद्ध, प्रथम महायुद्ध, स्पेनिश गृह-युद्ध और १९४० में फ्रांस की पराजय की प्रतिध्वनि मिलती है।

ग्रह-उपग्रहों की विशालता के साथ सामान्यतम वस्तुओं को भी उनके काव्य में स्थान प्राप्त हुआ है।

हांरी मिशो ने बराबर प्रतिवाद किया है कि वे अति यथार्थवादी नहीं हैं, परन्तु कवियों के वर्गीकरण में उन्हें इसके अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग में डालना सम्भव नहीं है। उनकी दुनिया भयावह है और सदा खतरों के बीच व्यक्ति उस दुनिया का केन्द्र है। उनके काव्य में अति अद्भुत का स्थान अति साधारण के समान है और साधारण और अभ्यस्त ही अद्भुत और बेचैनी पैदा करनेवाले हैं। सैं जॉन पर्स की कविताओं के छन्द क्लोडेल के छन्दों के अनुरूप हैं और पीकिंग से लेकर वाशिंगटन के भ्रमण और गहन संस्कृति की छाप उन पर मौजूद है। उनकी कविताओं का आयतन या परिमाण अधिक नहीं है। टी० एस्० इलियट ने उनकी कुछ कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद किया है, ("व्हात"—१९४७)। पात्रिस् द ला तूर द पैं (जन्म १९११) के छन्दों में ताजगी है। उनकी विशुद्ध आरण्यक लय में पुराने आवेगों को झंकृत करने की क्षमता है। "ला कीत द जोआ" के प्रकाशन (१९३३) से, तत्काल उनकी प्रतिभा को स्वीकृति मिल गयी। यह काव्य अब "ईन सॉम् द पोएसी" नाम के उनके आध्यात्मिक प्रबन्ध काव्य का एक अंग मात्र है। इस प्रबंध-काव्य का प्रथम खण्ड १९४६ में प्रकाशित हुआ।

इस काल के अन्य उल्लेख योग्य कवियों में मैक्स जेकब, लिओं-पॉल फार्ग और फ्रांसिस कार्को के नाम गिने जा सकते हैं।

इस युग के औपन्यासिकों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रवृत्तियों के अनुसार उनका वर्गीकरण भी एक समस्या है; प्रायः प्रत्येक का अलग-अलग दृष्टि-कोण और पृथक् कलात्मक व्यक्तित्व है। युग-प्रतिनिधि के रूप में आठ-दस लेखकों का विचार ही यहाँ सम्भव है। इस काल के कवियों की भाँति इन औपन्यासिकों का जन्म १८८५-१९०० के बीच हुआ। सेलीन फ्रांस के आधुनिक राब्ले हैं। 'वोयाज ओ बू द ला नूई' में उन्होंने दुःस्वप्न का एक पहाड़ खड़ा किया है। गिओनो में प्रादेशिक प्रेरणा प्रचुर मात्रा में है, परन्तु

मौलिकता भी है। प्रोवहांस प्रदेश के पहाड़ी अंगूर के बाग, धूप-छाँह और रहस्य से उनके उपन्यास सजीव हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने पृथ्वी और पृथ्वी के सरल स्वस्थ जन-समूह से अपना सम्पर्क स्थापित किया है। रूसो और जोला की वे आध्यात्मिक सन्तान हैं। 'ल शाँ दी मॉंद' और कुछ अंशों में 'क मा ज़ोआ दम्येर' इस शती के शक्तिशाली उपन्यासों में गिने जा सकते हैं, परन्तु विचारवादी सन्देश उपस्थित करने की उत्सुकता में उनकी कला में कभी कभी त्रुटि आ जाती है। दूसरे महायुद्ध और उसके पश्चात् वे फिर नवीन रूप में हमारे सामने आते हैं। गिओनो से उम्र में कुछ छोटे माँ देरलाँ ने प्रारम्भ में अपनी शैली से समसामयिक साहित्यकारों को चमत्कृत कर दिया। इस शैली में पारी-पारी से उपेक्षा-पूर्ण हठ और बचपन तथा शूरता की आन्तरिक आकांक्षा दिखाई पड़ती है। उनके उपन्यास बहुत आशाप्रद तो नहीं हैं, लेकिन कुछ चुने हुए अंश तत्कालीन फ्रेंच साहित्य की कटु और शुष्क भूमि में रोमान्टिक आवेगों का प्लावन ला देते हैं। एक पतनोन्मुख रईस की कहानी 'सेलिबात्येर' में उनके श्लेषात्मक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का भी परिचय मिलता है। आंद्रे मालरो (जन्म १९०१), 'ला कान्डीशिओं ह्यूमेन' (१९३३), 'लेस्पोआर' (१९३८) क्रान्ति के औपन्यासिक हैं। चीन के राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और फ्रांको-विद्रोह के समय स्पेनिश सरकार के हवाई बेड़े का संगठन किया। इस गृह-युद्ध में वे दो बार घायल भी हुए। उनके उपर्युक्त उपन्यासों में इन दो क्रान्तियों के उनके अनुभव लिपिबद्ध हैं। दूसरे महायुद्ध में भी उन्होंने भाग लिया और वे गिरफ्तार किये गये, परन्तु भागकर फ्रांस के उस भाग में पहुँचे जिस पर जर्मनी का कब्जा नहीं हो पाया था। अपने साहित्य में उन्होंने रूसी क्रान्ति से लेकर दूसरे महायुद्ध तक के राजनीतिक संघर्षों के मानवीय और दार्शनिक अर्थ का अन्वेषण करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों की दुनिया हिंसा और मृत्यु, क्रान्तिकारी उथल-पुथल और जीवन तथा मर्यादा के लिए संघर्षरत निपीड़ित मनुष्यों की दुनिया है।

• आधुनिक फ्रेंच औपन्यासिकों का झुकाव पारिवारिक इतिहास की ओर है—रोमां फ्ल्येव्ह' (उपन्यास नदी)—जिसके सुपरिचित दृष्टान्त हैं रोजर मार्तें दी गार का 'ले थीबोल,' जॉर्ज दुहामेल का 'पास किये ऑनिकल' और जूल रोमैं का 'ले जॉम् द बॉन् व्हॉलन्ते'। ग्यारह खंडों में प्रकाशित 'ले थीबोल' में रोजर मार्तें ने सफलता के साथ एक युग को प्रतिबिम्बित किया है। ये उपन्यास प्रकृतिवादी उपन्यासों से मिलते-जुलते हैं परन्तु इनकी दुनिया जटिल है जहाँ विज्ञान भी आशा का सन्देश नहीं देता। उनका, जाके द लाक्रेतेल् ('ले ओत् पॉंत्'—१९३२-३६) और जां श्लुमबर्जर ('ला कामाराद् इनफीदेल—१९२२,' से सातिनैं"—१९३१) से इस अर्थ में मेल है कि तीनों ही मननशील प्रवृत्ति के हैं और लक्ष्य ऊँचा रखते हुए भी लोकप्रिय बनने की चेष्टा नहीं करते। उनका मेल इस माने में भी है कि शेषोक्त दोनों उपन्यासों का विषय भी पारिवारिक इतिहास है—एक परिवार की अवनति। जॉर्ज दुहामेल और जूल रोमैं दोनों ही "यूनेनिमिज्म" सिद्धान्त के परिपोषक हैं जो कलात्मक अभिव्यक्ति में सामूहिक उपादान पर बल देता है। समूह के रूप में मानव की धारणा से वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। व्यक्तिगत मनोवृत्ति के अन्वेषण की अपेक्षा, शहरों या सड़कों के सामाजिक समुदाय की सामूहिक आत्मा संबंधी अभिव्यक्ति की ओर ही उनकी दृष्टि अधिक थी। इस सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग के रूप में दोनों ने कुछ साथियों के साथ कुछ समय तक मठ का जीवन भी व्यतीत किया। यह प्रयोग तो सफल नहीं रहा, परन्तु रोमैं ने कभी खुले रूप में अपने सिद्धान्तों का प्रत्याख्यान नहीं किया है। उन्होंने 'ऑम् द बॉन् व्हॉलन्ते' के २७ खण्डों में ठीक पचीस वर्ष (अक्तूबर १९०८ से लेकर अक्तूबर १९३३ तक) के फ्रेंच सामाजिक और राजनीतिक जीवन का चित्र खींचा है। जॉर्ज दुहामेल की शक्ति के मूल में है विशद ज्ञान और जीवन का अनुभव। उन्होंने चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था और प्रथम महायुद्ध में वे शल्य चिकित्सक थे। 'शहीदों के जीवन' में उन्होंने घायल सैनिकों की यातनाओं का वर्णन करते हुए कला को भी दूर रखा है। 'पास्किए्र' के दस

खण्डों में उन्होंने मध्यम वर्ग के एक प्रतिनिधि परिवार का दिग्दर्शन अनेक पहलुओं से किया है। हमारे युग की समस्याओं का विचार साहस के साथ और खुलकर किया गया है; इसके विषादात्मक और उपहासात्मक पहलुओं की उपेक्षा उन्होंने कहीं नहीं की है। लेकिन कुछ महान् चरित्रों के चित्रण से मानव-मर्यादा को उन्होंने कायम रखा है और अपने नैतिक विश्वास के द्वारा वास्तववादी शैली को सजीव बनाया है।

आंद्रे मोरोआ की अपनी अलग श्रेणी है। प्रथम महायुद्ध में वे ब्रिटिश सेना के दुभाषिया के रूप में नियुक्त किये गये थे। इस समय के अनुभवों के आधार पर लघु निबन्धों के रूप में लिखी गयी दो-एक पुस्तकों में उन्होंने हास्यात्मक प्रवृत्ति में, परन्तु सहानुभूति और अन्तर्दृष्टि के साथ, अपने ब्रिटिश साथियों का चरित्र-चित्रण किया है। साहित्यिक समालोचना की कृतियों में भी वे अंग्रेजी सभ्यता के योग्य व्याख्याता के रूप में हमारे सामने आते हैं। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उन्होंने जीवनी के संबंध में जो भाषण किये थे वे बाद को "आसपेक्ट द ला बिओग्राफी" शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित किये गये। 'क्लिमात' और 'ल सर्क्‌ल्‌ द फामीए' नामक उपन्यासों में उन्होंने प्रेम, विवाह, परिवार आदि आधुनिक समस्याओं को लिया है। नैतिक दृष्टिकोण का समावेश इनमें बड़ी कुशलता के साथ किया गया है।

जॉर्ज-बर्नानो ('सूल सोलेई सैटां'—१९२६; 'जूर्नाल द कीरे द काम्पाइएं'—१९३६) मार्सेल जूहांदा ('क्रोनीक मारीताल'—१९३८) जाके शारदॉन (शिमेरीक—१९४८) और आंद्रे शाम्सों ('रु ल बान्दी—१९२५) इस काल के अन्य सुयोग्य औपन्यासिक हैं।

फ्रांसोआ मोरिआक भी इसी युग के हैं, परन्तु युद्ध पश्चात् उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। १९५२ में उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। फ्रांसोआ मोरिआक (जन्म १८८५) फ्रेंच कैथलिक औपन्यासिकों में सर्वोत्तम गिने जाते हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने पापियों की चित्रशाला खोल दी है, परन्तु वास्तव में ये धार्मिक उद्देश्य-साधन के निमित्त मात्र हैं। भगवत्-कृपा के प्रदर्शन के लिए ही उन्होंने इन चरित्रों की सृष्टि की है। प्रायः

उनके पात्र मृत्युशय्या पर भगवान् और धर्मविश्वास में अपनी आस्था प्रकट करते हैं। उनके उपन्यास धार्मिक प्रेरणाओं से ओतप्रोत हैं, परन्तु वे इस प्रमाणस्वरूप भी हैं कि धार्मिक विश्वास और कला का समन्वय अत्यन्त कठिन काम है। १९२८ में आंद्रे जीद ने उन्हें एक पत्र में लिखा—"यह आश्वासनपूर्ण समझौता, जो शैतान से आँखें हटाये बिना ही ईश्वर-प्रेम की अनुमति देता है, वह पीड़ित चेतना प्रदान करता है जिसने आपके चेहरे को द्युतिदान किया है और आपकी लेखनी को प्रसाद।...आपमें ईसाइयत उस पर्याप्त मात्रा में नहीं है जिससे आप लेखक न बन सके।" इसके उत्तर में ही मोरिआक ने 'ईश्वर और शैतान' नामक उपन्यास लिखा। उनके कुछ उपन्यासों की एक बड़ी त्रुटि यह है कि अपने औपन्यासिक चरित्रों के बीच कभी कभी वे स्वयं उपस्थित हो जाते हैं और लेखक की अपनी बातें जोड़ देते हैं। इस संबंध में सार्त्र की समालोचना बहुत ही आकर्षक है। वे कहते हैं—"उपन्यास मनुष्यों के संबंध में मनुष्यों के लिए लिखा जाता है। ईश्वर की दृष्टि में, जो प्रतीयमान वास्तविकता के अन्दर पैठकर देखता है, न कोई उपन्यास है और न कोई कला, क्योंकि प्रतीयमान वास्तविकता में ही कला जीवित है। ईश्वर कलाकार नहीं है और न मोरिआक।"

यह सही है कि धर्म-विश्वास ने मोरिआक को निविड़ शान्ति नहीं, बल्कि हमारे हृदय-दौर्बल्य और क्षणभंगुर निर्णयों का ही विषाद-पूर्ण बोध दिया है, परन्तु मोरिआक के श्रेष्ठ कलाकार होने के संबंध में कोई सन्देह नहीं है। उनकी शैली ही उनकी विशेषता है। बोर्दो निवासी इस लेखक ने फ्रांस के दक्षिण-पश्चिमी भाग को साहित्य में अमरत्व प्रदान किया है। 'देसर्' में रेमाँ कूरेज़ की प्रातःकालीन ट्राम यात्रा की स्मृतियों में, जहाँ उससे मारिया क्रॉस का प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, मानव और प्रकृति का अपूर्व संयोग है। मोरिआक को सबसे प्यारी है पारिवारिक वफ़ादारी और स्थान-माहात्म्य। 'ल मीस्तेर फ़ॉन्टेनाक' में ईव्ह फ़ॉन्टेनाक उबल पड़ता है—"वे आकस्मिकता के लिए कुछ छोड़ते ही नहीं, वे प्रत्येक के सुख-स्वाच्छन्द्य

को संगठित करना चाहते हैं, वे यह समझते ही नहीं कि हम भिन्न उपाय से सुखी होना चाहते हैं।" उनका भाई जां लूई उत्तर देता है,—"उनके लिए प्रश्न सुख का नहीं, बल्कि समान हित के लिए, पारिवारिक हित के लिए काम करना है। नहीं; प्रश्न सुख का नहीं है। क्या तुमने यह लक्ष्य किया है कि सुख शब्द भी कभी उनके होठों पर नहीं आता।" उनके वाक्य प्रायः लम्बे जोड़ वाले हैं, परन्तु शब्दों की मितव्ययिता की उनकी क्षमता भी अद्भुत है। "ब्रिगिट् पिआं ने अपनी शिकायतों को दफना दिया और हफ्तों बाद उन्हें खोद निकाला जब कि किसी को यह याद न रहा कि शिकायतों के कारण क्या थे" ('फारिसी'); "(मित्र वह है) जो तुमसे बिना कोई प्रश्न किये शव को पानी में बहाने में मदद करता है" ('गालिगाई')।

'थेरीस देस्किरू', 'नी द व्हिपेर' आदि उनके अन्यान्य प्रसिद्ध उपन्यास हैं। वे सफल नाटककार भी हैं। 'आसमोदे' उनके श्रेष्ठतम नाटकों में से एक है।

उनचासवाँ अध्याय

जां पाल सार्त्र् और अस्तित्ववाद

बहुमुखी अस्तित्ववादी सिद्धान्त वह प्रमुख 'वाद' है जिसने द्वितीय महायुद्ध और उसके आगे के काल में साहित्यिक दुनिया को विशेष रूप से प्रभावित किया है। अस्तित्ववादी दर्शन नया नहीं है, परन्तु उसे स्वीकृति आधुनिक काल में ही मिली है। इस दर्शन का प्रतिपादन बहुत पहले डेनिश लेखक किरकेगार ने किया। उनका "यह या वह" का सिद्धान्त कठिन दर्शन है, परन्तु 'यह या वह' के चुनाव में ही इस दर्शन की कुंजी है। सत्य मनुष्य का आत्मगत है, वस्तुगत नहीं। जिस प्रकार का मनुष्य उस सत्य का आविष्कार करता है और जिस प्रकार के सत्य की प्रक्रिया उस मनुष्य के जीवन में होती है, यह निर्णय करते हैं उसके चुनाव, चाहे वे महत्त्वपूर्ण हों या तुच्छ। धार्मिक ईसाई होने के नाते, किरकेगार ने, जिनका यह विश्वास था कि दुनिया भगवान् के नियमों के अनुसार ही चलती है, इस पर बल दिया कि दैवी नियमों के अन्तर्दर्शन द्वारा ही चुनाव किया जाना चाहिए, लेकिन उन्होंने यह भी महसूस किया कि अपने अस्तित्व और उसके परिवर्तन के अतिरिक्त और कोई निश्चयात्मक तथ्य नहीं। जर्मनी के हाइडेगेर ने इस दृष्टिकोण को जो दार्शनिक रूप दिया है वह और भी दुरूह, अमूर्त है।

जर्मन-अधिकृत फ्रांस-जैसे देश की युद्ध-स्थिति में इस चुनाव के दर्शन को एक नया महत्व प्राप्त हुआ। कोई काल ऐसा नहीं था जब कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने संबंध में निर्णय करने की आवश्यकता अधिक रही हो। सभी समाधानों के संबंध में संशयान्वित, वोल्ट्येर दर्शन से भाग खड़े हुए और उन्होंने अपने उद्यान के हरा-भरा बनाने की बुद्धिमत्ता का बखान

किया। अर्थात् लोग दार्शनिक दाँवपेच में न पड़कर व्यावहारिक काम काज करें। शत्रु-अधिकृत प्रदेशों की परिस्थिति में व्यक्तिगत शान्ति में आश्रय प्राप्त करना स्वयं एक प्रकार का चुनाव था, जिसका अर्थ था आक्रमणकारियों से मौन सहयोग। विद्रोह का अर्थ था मृत्यु, यातना या कम से कम भयंकर खतरे और परेशानी का जीवन। लेकिन किसलिए? बौद्धिक अभिजात के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। देश, ईश्वर, लोकतन्त्र, मानवता, प्रगति किसी चीज में उसका विश्वास नहीं था जिससे शहादत या तकलीफों का भी कोई अर्थ निकल पाता। व्यक्ति के संबंध में भी प्रेम, आर्थिक सुरक्षा या नैतिकता सभी झंडे नीचे गिरे हुए थे। फिर भी चुनाव उसे करना था एक नहीं हजार। चुनाव कर लेने पर, वह चुनाव किस प्रकार का था, यह काफी महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि उससे वे आन्तरिक या बाह्य परिस्थितियाँ पैदा होतीं जो फिर अपना काम करने लगतीं। इससे विचार या कार्य का निश्चय चाहे न हुआ हो, लेकिन नाटकीय संघर्ष और चरित्र-अध्ययन का आधार तो प्रस्तुत ही हो गया, और इन्हीं दो उपादानों से साहित्य का निर्माण होता है।

फ्रेंच दार्शनिक विचार की आधुनिकतम अभिव्यक्ति है अस्तित्ववाद। फ्रेंच अस्तित्ववादी आन्दोलन के मान्य नेता हैं जां पॉल सार्त्र (जन्म १९०५)। १९३६ और ४० के बीच उन्होंने मनोविज्ञान के अध्ययन संबंधी कुछ अतिशय मौलिक ग्रंथ लिखे, लेकिन एक चुने हुए दायरे के बाहर उन पुस्तकों ने किसी का ध्यान आकर्षित नहीं किया। "नूव्हेल रव्ही फ़्रांसेज" में उनकी कुछ समालोचनाओं (फ़्रांसोआ मोरिआक, आदि की) ने अधिक ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद उनका उपन्यास 'ला नोसे' प्रकाशित हुआ (१९३८)। जिस दुनिया में मनुष्य के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं निकलता, वहाँ मनुष्य की स्थिति कितनी निराशाजनक है; यही पुस्तक का विषय है। इस उपन्यास ने भी जनता को विशेष रूप से आकर्षित नहीं किया। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बीच फ्रेंच प्रतिरोध आन्दोलन में सार्त्र ने जो साहसपूर्ण भाग लिया उससे उनके संबंध में विशेष दिलचस्पी पैदा हुई। १९४३ में उनके

नाटक 'ले मूश' ने रचनाकौशल के द्वारा जर्मन निरीक्षकों की आँखों में धूल डालकर जनता से स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेने की पुकार की। १९४४ में दर्शकों ने मन्त्रमुग्ध होकर उनका एकांकी नाटक 'उई क्लो' देखा। तीन व्यक्तियों सहित होटेल का एक नग्न सस्ता कमरा नरक का प्रतीक स्वरूप है। इसी नरक में तीनों को, एक पुरुष और दो नारियों को, अनन्त काल तक एक दूसरे को सताते रहना है। प्रायः इसी समय उन्होंने अपनी सुबृहत् दार्शनिक कृति "लेत्र ए ल नेआं" लिखी।

"लेत्र ए ल नेआं" में जिस अस्तित्ववाद का प्रतिपादन किया गया है वह यह भी जताना चाहता है कि देकार्त के "कोबिटो" में भी अस्तित्ववादी दृष्टिकोण मौजूद है। प्रारम्भिक बात यह है कि मन के बाहर वास्तविकता का कोई अर्थ नहीं है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मन के भीतर वास्तविकता का अस्तित्व है। बाहरी दुनिया मौजूद है और मनुष्य बाहरी वस्तुओं या मनुष्यों की ओर ही दौड़ता है और यही, सार्त्र के लिए, बौद्धिक विरोधाभास है। उनके लिए अभाव, शून्यता और व्यर्थता ही मानवीय अस्तित्व के लक्षण स्वरूप हैं। अपूर्णता के कारण ही स्वतंत्र रूप से कार्य करने की शक्ति हमारे अन्दर है, परन्तु दुःख में ही इसका जन्म हुआ है और अपनी सत्ता की उपलब्धि के लिए हमें यह ठेलती रहती है। यह उपलब्धि मृत्यु के पहले होती नहीं है।

उनके नाटक, निबन्ध या उपन्यास इसी अस्तित्ववादी भवन के बाजू हैं जिस पर आगे चलकर उन्होंने नैतिकतावादी शिखर जड़ दिया। इस नये मानवतावाद की झलक मिलती है उनके त्रैऔपन्यासिक ग्रंथ "ले शमैं द ला लिबर्ते" (स्वतंत्रता के तीन मार्ग) में और उनके एक निबन्ध में ("अस्तित्ववाद मानवतावाद का ही रूप है")।

१९४६ से सार्त्र ने समसामयिक घटनाओं को अपने नाटकों का आधार बनाया है। 'मोर्त सां सेपल्ती तीर' (१९४६) फ्रेंच प्रतिरोध आन्दोलन के सदस्यों के प्रति अत्याचार के संबंध में है। 'लै मैं साल' (१९४८) में उन्होंने बदलती हुई पार्टी नीति के सामने कम्युनिस्टों के सिर झुकाने की

प्रवृत्ति के विरुद्ध आक्रमण किया है। परन्तु नायक की आत्म-परीक्षा भी इसका एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। नायक अपने काम की जिम्मेदारी से इन्कार करने के बजाय मरने का ही निश्चय करता है। बल्कि पार्टी के नेता की हत्या की उसकी जिम्मेदारी के संबंध में कोई सन्देह नहीं है। प्रश्न केवल हत्या के उद्देश्य के संबंध में है, और यहाँ वह अपने उद्देश्य के संबंध में, पार्टी उससे जो कहलवाना चाहती है, उसे वह मानने को तैयार नहीं है। ल दिआव्ल ए ल बां दी (१९५१) का पैमाना क्लोडेल के योग्य है और जिस द्वन्द्वात्मक कौशल से उन्होंने इसकी रचना की है वह बर्नार्ड शॉ के कौशल के समकक्ष है। लूथर के काल के जर्मनी को उन्होंने नाटक का घटनास्थल बनाया है। सामाजिक असन्तोष और युद्ध की पृष्ठभूमि में उन्होंने नाटकीय शैली में अच्छाई और बुराई, मनुष्य की जिम्मेदारी और ईश्वर के अस्तित्व आदि समस्याओं पर अपनी दलीलें पेश की हैं। इस उत्कृष्ट नाटक का रंगमंच पर प्रदर्शन भी उच्चकोटि का था।

पचासवाँ अध्याय

आधुनिक रंगमंच

जाके कोपो (१८७९-१९४९) ने, आँतोआँ, पॉल फोर और लुइएं पो के रंगमंचीय प्रयोगों को और भी आगे बढ़ाया। १९१३ में उन्होंने अपना "रंगमंच व्हिए कोलॉम्बिएर" खोला। यद्यपि आर्थिक कठिनाइयों के कारण, नौ वर्ष बाद ही यह रंगमंच बन्द हो गया, परन्तु इस स्वल्प काल में ही इस रंगमंच ने नाटकों के आध्यात्मिक स्तर को और ऊंचा उठाया और नाट्यकला को भी अधिक मर्यादामण्डित किया। उनके गुणी शिष्यों ने भी नेतृत्व ग्रहण किया और नये सुधार किये। लूई जूव्हे और उनके "शांप एलिसे" का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। अन्य उल्लेख योग्य नाम जॉर्ज पितोइफ और जाके हेबर्ती हैं। कुछ समय से आधुनिक अभिनेता और रंगमंच प्रबन्धक जां लूई बारोल श्रेष्ठ रचनाओं में नया अर्थ निकालने का प्रयास कर रहे हैं। दुरूह नाटकों और नाटककारों के लिए भी उन्होंने रास्ता खोल दिया है।

हम पहले ही कई औपन्यासिकों को सफल नाटककारों के रूप में देख चुके हैं। जूल रोमैं, श्लूमबर्जर, मार्तें दी गार, दुहामेल और मॉदरलां को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अर्ध-चेतन ने नाट्य-कला को भी प्रभावित किया है। जां जाके बर्नार (जन्म-१८९४) ने 'ल फे की रप्राँ माल' या 'मार्तीन' में गुप्त और कष्ट-दायक अनुभूतियों का जो अध्ययन किया है उसे नाट्य-रूप देना अत्यन्त कठिन काम था। हांरी रने लनॉर्मा की तो सम्पूर्ण खोज ही अव्यक्त और अवर्णनीय मनोभाव के संबंध में है ("लॉम् ए से फान्तोम्")। अन्तर्जीवन

की प्रच्छन्नता दृढ़ पकड़ के बाहर होने के कारण नाट्य-कला ने परम्परागत शब्दों में उन्हें रूप देने का प्रयास ही छोड़ दिया है। अब वक्ताओं के संकोच से ही हमें नतीजा निकालना पड़ता है। लनॉर्मां और बर्नार, दोनों ही मौन कथनोपकथन का विरोधाभास पूर्ण दृश्य हमारे सामने उपस्थित करते हैं। लेकिन पॉल रेनाल (जन्म १८९०) ने सम्पूर्ण अभिव्यक्ति की कला को ही अपनाया है ("तोम्बो सू लार्क द त्रिऑम्फ")। जां सारमां (जन्म १८९२) ने काव्य-नाट्य को नवजन्म दिया है ("ज सुइ त्रे ग्रां पुर मोआ")। मार्सेल आशार (जन्म १८९९) का 'जां द ला लीन' कल्पना, कोमलता और हास्य रस का यौगिक मिश्रण है। स्थान-काल का नाटकीय संयोग और नवीनता की उद्भावन-शक्ति सम्पन्न आरमां सालाक (जन्म १९००) की बहुमुखी प्रतिभा ने उनके लिए एक पृथक् स्थान सुरक्षित रखा है। दार्शनिक नाटकों को लोकप्रिय बनाने का श्रेय ग्रेब्रिएल मार्सेल (जन्म १८८७) को प्राप्त है। उनके अस्तित्ववाद में धर्म-विश्वास का भी स्थान है। उनके नाटकीय चरित्र विरोधी सिद्धान्तों के मूर्त रूप हैं। जां कॉक्टो (जन्म १८८९) के लघु-कुशल-स्पर्श संयुक्त नाटकों में १९२० से अति आधुनिक काल तक पेरिस की नवीनतम प्रवृत्ति की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। उनके अनेक नाटकों को फिल्म का रूप भी दिया गया है।

जां आनूईल (जन्म १९१०) का नाटक स्पष्टतः अस्तित्ववादी है। सार्त्र् का निराशावाद उनके नाटकों का भी अभिन्न अंग है। अधिकांश नाटकीय पात्र (प्रायः एक नवयुवती) जीवन से समझौता करने से इन्कार करते हैं और निश्चित दुःख या मृत्यु का स्वागत करते हैं। अस्तित्व उनके लिए निरर्थक या नीच है और कुछ विशिष्ट पात्रों के लिए विद्रोह अनिवार्य है। अपने सुखान्त नाटक 'कोलम्ब' में (१९५१) उन्होंने षड़यन्त्रशील प्राचीन फ्रेंच सुखान्त नाटकों का वातावरण पैदा किया है। १९५३ में प्रकाशित 'लालुएत्' में जोन ऑव आर्क का चरित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने विद्रोह के सिद्धान्त की ही पुनः मूर्त किया है।

इक्यावनवाँ अध्याय

एलबर्ट केमस्

एलबर्ट केमस् (जन्म १९१३) औपन्यासिक, नाटककार या निबन्ध-लेखक ही नहीं, दार्शनिक भी हैं। उनके उपन्यास और नाटक दार्शनिक उपन्यास और दार्शनिक नाटक हैं। केमस् के साहित्य को समझने के लिए उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टिकोण की दार्शनिक बुनियाद यह है कि दुनिया युक्ति-हीन है, युक्ति के द्वारा दुनिया की व्याख्या नहीं की जा सकती। इस प्रकार युक्ति व्यर्थ हो जाती है, परन्तु युक्ति से परे भी कोई चीज नहीं है, इसलिए एक निरर्थकता की स्थिति पैदा होती है। मनुष्य के मन में स्पष्टता की तीव्र आकांक्षा और उसकी दुनिया की अयौक्तिकता दोनों का संघर्ष ही यह 'निरर्थक' है। दुनिया की युक्तिहीनता रहस्यमय होने के कारण जो दार्शनिक ज्ञेय और अबोधगम्य की पूजा करने लगते हैं, केमस् उनसे दूर रहना चाहते हैं। धर्म से सान्त्वना लाभ करने से वे इन्कार करते हैं। केमस् के लिए "ईसाइयत मूलतः अन्याय का सिद्धांत है, क्योंकि निरपराध के बलिदान की बुनियाद पर इसकी प्रतिष्ठा हुई है और इस बलिदान को स्वीकृति दी गयी है।"

केमस् के शब्दों में, यह 'निरर्थक' मनुष्य पर भी उतना ही निर्भर है जितना कि दुनिया पर। फिलहाल दोनों के बीच यही कड़ी है। दुनिया निरर्थक है, समाज निरर्थक है, समाज का अनुशासन निरर्थक है, फिर लोग आत्म-हत्या क्यों न कर लें? इसका उत्तर वे यहाँ देते हैं कि मृत्यु में जीवन का अन्त इतना सम्पूर्ण है और जीवन से परे भी कोई चीज नहीं है जो इसे

अर्थ या महत्त्व प्रदान कर सके, इसी लिए जीवन अमूल्य है। परन्तु यह "निरर्थक" का दर्शन पहला स्तर मात्र है। इसे पार कर वे अपने दर्शन के दूसरे स्तर पर आते हैं। यह है "विद्रोह" का दर्शन। मनुष्य मृत्यु के विरुद्ध विद्रोह करता है। वह जीवन को सुख-विहीन नहीं होने देना चाहता। परन्तु इसके लिए जीवन के नये मूल्यों की खोज आवश्यक है, क्योंकि पुराने मूल्य "निरर्थक" साबित हो चुके हैं। विद्रोह में ही उन्हें नया मूल्य भी दिखाई दे जाता है। इस विद्रोह की परिभाषा में ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। एक उदाहरण से यह बहुत स्पष्ट हो जाता है। एक साधारण कर्मचारी, बहुत दिनों के आज्ञापालन के अभ्यास के बावजूद, अकस्मात् एक दिन आज्ञा पालन न करने का निश्चय करता है। उसकी सहज बुद्धि यह प्रत्यक्ष करती है कि उसके मालिक ने एक सुनिश्चित सीमा का अतिक्रमण किया है। दूसरे शब्दों में इस इन्कार के द्वारा वह उस सीमा का प्रत्यक्षीकरण करता है जिसकी रक्षा वह केवल अपने लिए नहीं बल्कि सभी लोगों के लिए करेगा। इस विद्रोह के द्वारा वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता की सीमा पार कर समूह में जा मिलता है। दुनिया से उसका एक नया योगसूत्र तैयार हो जाता है। वह स्वयं ही एक नया मूल्य है।

तीसरे स्तर पर इस विद्रोह के दर्शन को ही उन्होंने और आगे बढ़ाया है। विद्रोह के आंदोलन में मनुष्य दूसरों के लिए आत्म-बलिदान करता है। विद्रोही अपने से बाहर दूसरों को खोज निकालता है और उनसे सम्पर्क स्थापित करता है, निरर्थक दुनिया के अकेलेपन और व्यर्थता से वह मुक्ति लाभ करता है। यह दृष्टिकोण मानव-एकता के दार्शनिक निश्चयता को ले जाता है। अब इस प्रश्न का कि बिना ईश्वर के सहारे मनुष्य अकेला अपने मूल्यों की सृष्टि कर सकता है या नहीं, उत्तर हाँ में दिया जा सकता है। लेकिन इस विद्रोह की भी सीमाएँ हैं। यदि इस विद्रोह के द्वारा हम निरपेक्ष सत्य को पहुँचने की चेष्टा करेंगे तो झूठे लक्ष्य के पीछे व्यक्ति का बलिदान करेंगे। विद्रोही को यह सत्य स्वीकार करना होगा कि मानवीय व्यक्तित्व की पवित्रता के प्रारम्भिक सिद्धांत का त्याग किये

बिना किसी निरपेक्ष सत्य की उपलब्धि नहीं की जा सकती। विद्रोह काम की प्रेरणा देता है, साथ ही अनुशासन भी कायम रखता है। काम के लिए आह्वान करते हुए वह बताता है कि काम कैसे किया जाना चाहिए। वह जिस मूल्य की सृष्टि करता है, क्रांति का काम उसे रूप देना है, लेकिन कार्य-सिद्धि के नाम पर इस मूल्य की हत्या नहीं की जा सकती। क्रांति अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हर सम्भव उपाय को काम में नहीं ला सकती। अतिमानवीय मूल्य और राजनीतिक वास्तववाद दोनों ही विद्रोह के लिए खतरनाक हैं। पहला मनुष्य को मौन रहना सिखाता है या उसे दैवी ध्वनि का प्रवक्ता या प्रतिध्वनि बना देता है। दूसरा असत्य को न्याययुक्त बना देता है, विरोधियों की हत्या को भी उचित ठहराता है। जो दर्शन व्यक्ति को अन्तिम निर्णय देने या राय कायम करने का अधिकार नहीं देता उसे केमस् स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

केमस् के उपन्यास 'ल्एत्रांजेर' (अजनबी) का नायक मरस्योल "निरर्थक" का मूर्त रूप है। तात्कालिक इन्द्रियानुभूतियों को छोड़ कर बाकी सभी चीजें उसकी उपेक्षा की वस्तु हैं। माता की मृत्यु पर उसे दफ्तर से दो दिन छुट्टी लेनी पड़ रही है, इससे उसे कुछ खीज होती है। अन्त्येष्टि क्रिया पर उसे कोई दुःख, विषाद नहीं है, केवल इस असुविधा का वह अनुभव कर रहा है कि धूप में उसे शव के साथ जाना पड़ रहा है। इसके दूसरे ही दिन वह तैरने जाता है तो उसे एक लड़की मिलती है जिसे कुछ अस्पष्ट रूप से वह जानता है। उसे वह फिल्म दिखाने ले जाता है और रात को दोनों एक बिस्तर पर लेटते हैं। लेकिन अपनी माता के प्रति उसे जितना अनुराग था, इस लड़की के लिए भी उससे अधिक अनुराग उसका नहीं है। लड़की विवाह का प्रस्ताव करती है तो वह यह कहकर प्रस्ताव को स्वीकार करता है कि उसके लिए इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। घटना-चक्र में उसे एक दिन समुद्र तट पर एक अरब मिल जाता है जो उसे छुरे से हत्या करने की धमकी देता है। बिना कुछ सोचे ही वह गोली चलाकर उसकी हत्या करता है। मुकदमा चलता है। वह आसानी से यह दलील

दे सकता है कि उसने आत्मरक्षा के लिए गोली चलायी। लेकिन वह चुप रहता है, किसी की मृत्यु पर शोक प्रकट वह नहीं कर सकता। माता की मृत्यु पर भी उसे कोई शोक नहीं हुआ, इस आधार पर उसे मृत्यु-दण्ड मिलता है। अभी तक वह प्रायः अनुभूतिहीन है, परन्तु वह चेतन हो उठता है जब पादरी, जेल में उसे सान्त्वना देने के लिए आता है। अकस्मात् वह देखता है कि यह जीवन ही एक मात्र वास्तविकता है परन्तु मृत्यु अवश्यंभावी होने के कारण वह भी निरर्थक है।

मरस्योल दुनिया के लिए अजनबी है और स्वयं अपने लिए भी। आवेग-हीनता उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। परन्तु वह जीवन की उपेक्षा नहीं करता है, बल्कि उन संवेगों की उपेक्षा करता है जिन पर समाज ने, इस मुर्दा विश्वास से कि दुनिया युक्ति-युक्त और अर्थ-पूर्ण है, मनमाना महत्त्व आरोपित कर रखा है। साथ ही वह भी समाज के बाहर है, क्योंकि सामाजिक खेल के नियमों का पालन वह नहीं करना चाहता और इसी लिए समाज उसे मृत्यु-दण्ड देता है। द्वितीय महायुद्ध कालीन और युद्ध के तत्काल पश्चात् फ्रांस के साधारण मनोभाव का भी यह प्रतिबिम्ब स्वरूप है। 'ल मिथ् द सिसीफ' (सिसीफस का रूपक) भी इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। सिसीफस को देवताओं ने एक सुबृहत् प्रस्तर खण्ड को पहाड़ की चोटी पर पहुँचाने का काम दे रखा है। कुछ दूर वह पत्थर को चढ़ाता है, फिर पत्थर नीचे ढुलक जाता है। सिसीफस का काम फिर शुरू हो जाता है। मरस्योल और सिसीफस दोनों ही देवताओं से रुष्ट हैं, मृत्यु से घृणा करते हैं और जीवन के प्रति परमासक्त हैं। दुनिया की निरर्थकता एक विचित्र ढंग से सुख का आमन्त्रण भी है।

'ल मिथ् द सिसीफ' में उन्होंने लिखा—"जब कोई 'निरर्थक' को ढूँढ़ निकालता है तो सुख संबंधी पाठ्यपुस्तक की रचना का लोभ भी वह सँभाल नहीं सकता।" उनका प्रबन्धगुच्छ "नौस" यही पुस्तक है। लेकिन सुख का अनुभव निरर्थक की चेतना को ही और अग्ररूप देता है। अपने नाटक 'ल माल-आंतांदी' में उन्होंने "निरर्थक" में एक और विचार जोड़

दिया है। पर्यटक जें अपनी पत्नी से कहता है—"कोई सदा बाहरी नहीं बना रह सकता। मनुष्य को सुख की जरूरत है, यह सही है, लेकिन दुनिया में वह अपनी जगह भी चाहता है।" लेकिन जिस दुनिया में वह घर बनाना चाहता है वह काफूर हो जाता है। आत्मगोपन कर वह अपने घर को जाता है जहाँ उसकी मा और बहन होटल चला रही हैं। मा और बहन मिलकर रात को उसका कत्ल कर डालती हैं। जब पत्नी वहाँ जाकर पति का रहस्य खोलती है तो मा व्यथा में पुकार उठती है"...हे भगवन्, उन पर रहम करो जो प्रेम करते हैं और बिछुड़े हुए हैं।" यह जुदाई की भावना केमस् के विचारों की नयी कड़ी है। उनके नाटक 'ताऊन' में यह और स्पष्ट रूप धारण करती है। 'ताऊन' भी "निरर्थक" का मूर्त रूप है। अलजीरिया के तट पर ओरान नगर में उसने अपना राज्य कायम कर लिया है। इस "निरर्थक" के राज्य में निष्पाप लोग और मासूम बच्चे निरर्थक मर रहे हैं। लेकिन ओरान निवासियों को सब से अधिक पीड़ा जुदाई के कारण है। संक्रामक रोग फैलने के कारण उसे बाकी दुनिया से जुदा कर दिया गया है, यही हालत फ्रांस की थी जब जर्मनी ने उस पर कब्जा किया और बाकी सभ्य दुनिया से उसे पृथक् रखा। इसी नाटक में विद्रोह की उत्पत्ति होती है; कुछ लोग ताऊन के अन्याय का मुकाबला करने के लिए उठ खड़े होते हैं। इस विद्रोह का नेतृत्व करता है एक डाक्टर रिये। यह रिये विद्रोह के दर्शन का प्रतिनिधि है। जब पादरी पानलू उससे कहता है—"हम दोनों ही मनुष्य की मुक्ति के लिए साथ-साथ काम कर रहे हैं," तो रिये उत्तर देता है—"मानव की मुक्ति मेरे लिए बहुत बड़ा शब्द है, मेरा संबंध केवल उसके स्वास्थ्य से है।" स्वास्थ्य आपेक्षिक और पहुँच के अन्दर है, मुक्ति निरपेक्ष और अनिश्चित है। केमस् का चुनाव स्वास्थ्य है मुक्ति नहीं।

'लेता द सीज' और 'ले जस्त' दार्शनिक होने के साथ ही राजनीतिक नाटक भी हैं जिनमें उन्होंने कम्युनिस्ट सिद्धांतों की असंगतियों के विरुद्ध आक्रमण किया है।

१९५६, की मई में पेरिस में 'ला शूत' के प्रकाशन के साथ केमस् के विचारों का एक नया अध्याय शुरू हो गया है। इस उपन्यास के संबंध में काफी मतभेद भी है। कुछ लोग इसके मुख्य नायक जां-बात्रिस्त क्लामेंस में केमस् को ही देखते हैं। 'एत्रांजेर,' 'ला पेस्त' (ताऊन) या 'विद्रोही' (लॉम खोल्ते) में मनुष्य निर्दोष है, दुनिया अन्यायी है। 'ला शूत' (पतन) में मनुष्य आत्म-केन्द्रित, बेईमान, भीरु और ढोंगी है'। क्लामेंस ऐसा विचार करता जान पड़ता है कि मनुष्य को यदि कष्ट है तो वह उसकी अपनी करनी का परिणाम है। प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या केमस् अब मानवतावाद का विचार छोड़कर कैथलिक धर्म की स्वीकृति की ओर जा रहे हैं। लेकिन इसका दूसरा पहलू भी है। वह है श्लेष और व्यंग्य। क्लामेंस घमण्डी है, जब उसे अपनी दुर्बलता दिखाई देती है तो उसके घमंड को धक्का पहुँचता है। लेकिन लोगों के सामने अब वह अपनी दुर्बलता का ही बखान करता है। इसलिए नहीं कि वह अब विनयी हो गया है, बल्कि वह दूसरों को भी यह विश्वास दिलाना चाहता है कि वे भी पापी हैं, परन्तु क्लामेंस उनसे श्रेष्ठतर है क्योंकि वह खुले आम अपना पाप स्वीकार करता है।

उनकी छोटी कहानियों के संग्रह 'लेक्ज़ील ए ल रोयूम' का पहला खण्ड १९५७ के मार्च में प्रकाशित हो चुका है। लोग इस प्रतीक्षा में हैं कि केमस् अब क्या मोड़ लेते हैं। स्वयं उनका यह कहना है कि उन्होंने अभी तक कोई उपन्यास नहीं लिखा है। शायद उपन्यास लिखने वे अब जा रहे हैं।

उपसंहार

आधुनिक कवियों में पिएर एमानुएल (जन्म १९१६) का नाम उल्लेख योग्य है। १९४१ में जब उनका काव्य 'तोम्बो दॉरफे' प्रकाशित हुआ, वे जां पिएर् जूव्ह् के शिष्य गिने जाते थे। इस प्रतीकवादी काव्य में यौन और धार्मिक प्रतिमाएँ पास ही पास मिलती हैं। 'की एस् ऑम्' (१९४८) और 'बाबेल' (१९५१) में उन्होंने ईसाई और गैर-ईसाई पौराणिक कथाओं को समसामयिक प्रश्नों से जोड़ दिया है। १९५४ में उनकी पुस्तक 'लुव्हिएर द ला ऑं जिएम अर्' प्रकाशित हुई। आधुनिक फ्रेंच काव्य-रचना की विशेषता यह है कि कविताओं में नियमित छन्द होते हुए भी वे तुकान्त कतई नहीं हैं। द्वादशमात्रिक "आलेक्ज़ान्द्रीन" का प्रयोग अब भी होता है। यह है आज का फ्रेंच मुक्त छन्द। परन्तु यह भी ऊपरी तथ्य मात्र है। काव्य क्या है और क्या नहीं, इस मूल धारणा में इतना परिवर्तन हो रहा है कि अतीत में उसकी कोई तुलना नहीं मिलती।

परन्तु बीसवीं सदी में साहित्य की मुख्य अभिव्यक्ति उपन्यासों में ही मिलती है। वर्तमान शती के इस उत्तरार्ध में फ्रेंच उपन्यासों की विशिष्ट धारा या धाराओं का संकेत करना सम्भव नहीं जान पड़ता। आदर्श और विचारों के इस अस्तव्यस्तता के युग में प्रत्येक की अपनी-अपनी विशिष्टता ही दिखाई पड़ती है। एलबर्ट कैमस् को १९५७ में नोबेल पुरस्कार मिला। वे आज भी यशस्वी लेखक माने जाते हैं, परन्तु उनकी भी दिशा अभी अनिश्चित है। रोजार व्हेलां को 'ल लोआ' पर १९५७ में गॉन्कूर पुरस्कार मिला। विदेशी वातावरण में प्रस्तुत इस उपन्यास में प्रकृतिवादी तत्त्व भी मौजूद है। फ्रांसोआ रेज़ी बास्तीद प्रतिष्ठित औपन्यासिक हैं। १९५३ में उन्हें समालोचना संबंधी पुरस्कार (ग्रां प्री द ला क्रितीक) मिला।

१९५६ में 'ल आदिओ' (विदेशी) पर उन्हें "प्री फेमिना" पुरस्कार मिला। मोरिआक अब भी लिखते जा रहे हैं (१९५५ में 'लांयों' प्रकाशित हुआ) परन्तु उनका प्रभाव पहले जैसा ही अभी भी बना हुआ है यह कहना कठिन है। आंद्रे मोरोआ ने डूमा से ही अपने उपन्यास का नामकरण कर (तीन बन्दूकधारी, १९५८) एक पहेली की सृष्टि की है। कुल बाईस-तेईस वर्ष की उम्र में ही किशोर औपन्यासिक जां मार्क मांतगेर ने रोमान्टिक आदर्शवादी प्रवृत्ति के पुनरभ्युदय का प्रयास किया है। 'तुम्हें प्रेम करना होगा' में निष्पाप यौवन की व्यर्थता का चित्र आकर्षक ढंग से उपस्थित किया गया है। फ्रेंच साहित्य में महिलाओं की विशिष्ट देन है। मारगरित युरसेनार ने इस परम्परा को कायम रखा है। १९५२ में उन्हें प्री फेमिना का पुरस्कार मिला (आद्रिया की स्मृतियाँ)। फ्रांस के वर्तमान अस्थिर, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में यदि साहित्य भी दिशा ढूंढ़ रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु फ्रांस की साहित्यिक आत्मा आज भी बलशाली है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।
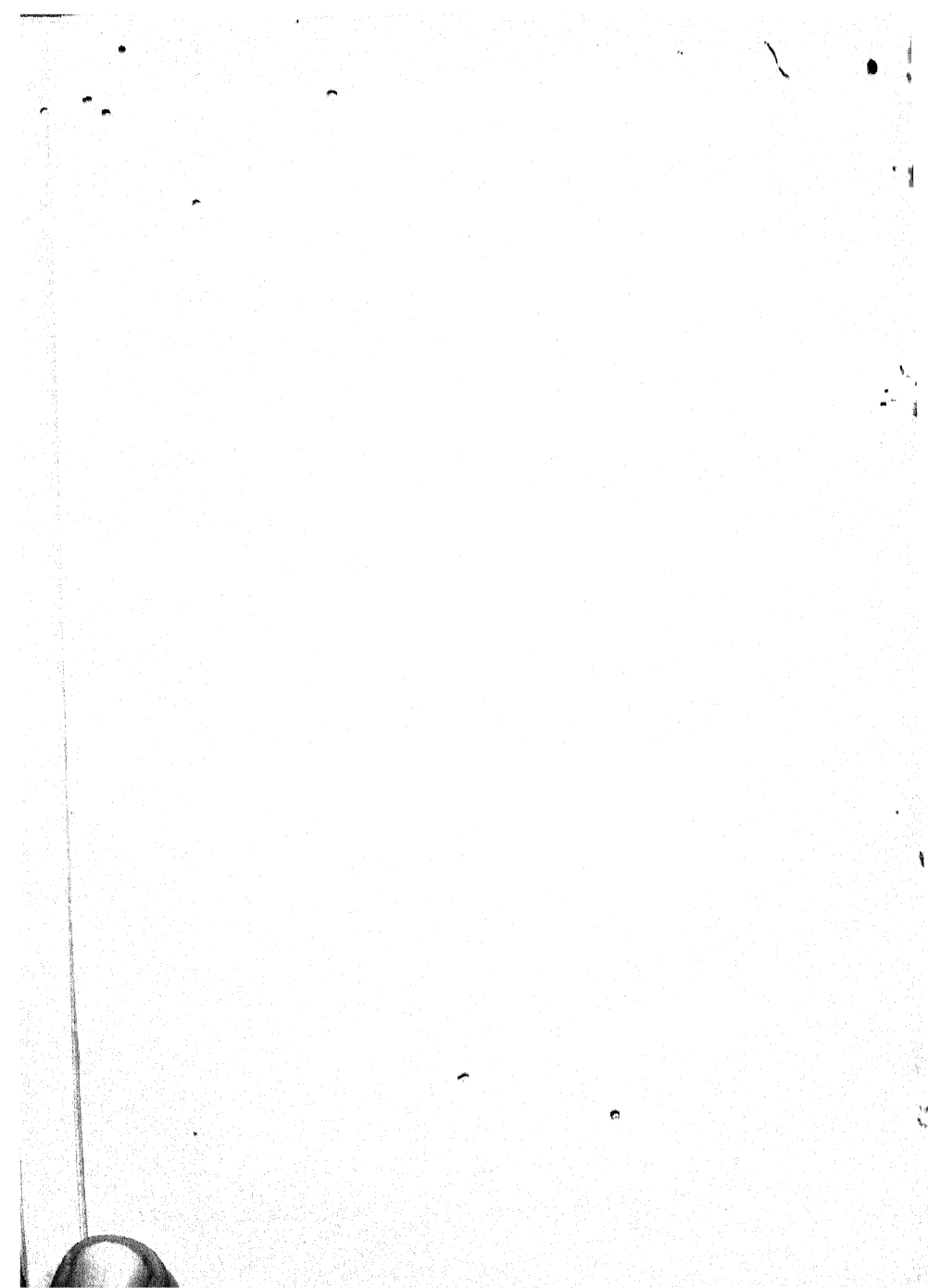
परिशिष्ट

(फ्रेंच साहित्य के सम्बन्ध में कुछ अंग्रेजी पुस्तकों की सूची)

सन्दर्भ साहित्य

1. A History of French Literature by L. Cazamian
2. ,, ,, ,, ,, ,, George Saintsbury
3. A Short ,, ,, ,, ,, Geoffrey Brereton
4. ,, ,, From 1870 to 1940 by Denis Saurat
5. Landmarks in French Literature—Lytton Strachey
6. The Outline of Literature by John Drinrwater Revised by Horace Shipp (Newnes)
7. The International Library of Famous Literature edited by Dr Richard Garnett.
8. A Dictionary of Modern European Literature by Smith (Oxford).
9. Studies in Modern European Literature and Thought (French authors-Baudelaire etc) (Bowes and Bowes Cambridge).
10. Style in the French Novel by S. Ullman.
11. Life and work in Medieval Europe—Routledge (Historical Background).
12. Medieval French Literature by Crossland.
13. The Troubadours—by H. J. Chaytor (Cambridge Manuals of Science and Literature).

14. Aucassin and Nicoolette—E. Mayson (Every Man's library).
15. French Medieval Romances—Every Man's Library.
16. The Langhing Philosopher (Rabelais) M. P. Willocks (Allen and Unwin).
17. La Fontaine—Monica Southerland.
18. Complete Works of Montaigne—Standard University Press, California.
19. Plays of Moiere (French-English) Translated by A. R. Waller-Introduction by George Saintsbury.
20. Works of Voltaire—Dingwal Rock Ltd (Cartique and biography by Lord Morley).
21. Victor Hugo—Selected Poems (From the Edition Definitive) George Barrie & Son (Philadelphia).
22. Balzac by Stephen Zweig.
23. Baudelaire—A self Portait-Lois Hyslop (Oxford).
24. Verlaine—Lawrence & Elizabeth Hanson.
25. Symbolism from Poe to Mallarme—Joseph Chiari.
26. Proust and Literature—by Walter A. Srauss.
27. Jean Giraudouz—Donald Inskip.
28. Malraux and the Tragic Imagination—by W. M. Frobock.
29. Albert Camus—A study of his work—Philip Thody.